हिंदी के कवि और काव्य—२

हिंदी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह

संपादक

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

श्री गुलाबराय

द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित

१९५३

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

उत्तर-प्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदी काव्यधारा की विशिष्ट परंपराओं को आधार मानते हुए कई भागों में हिंदी कविता के विस्तृत संकलन प्रकाशित करने की एक योजना हिंदुस्तानी एकेडेमी की थी। इस योजना के अंतर्गत 'हिंदी के कवि और काव्य' शीर्षक से तीन भागों में काव्य-संकलन प्रकाशित भी हुए थे। ये सभी संकलन स्वर्गीय श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने प्रस्तुत किये थे।

'हिंदी के कवि और काव्य', भाग ३, में प्रेमाश्रयी शाखा के हिंदी सूफ़ी कवियों की प्रेमगाथाओं से संकलन प्रस्तुत हुए थे। इस संग्रह का अच्छा स्वागत हुआ और कुछ ही वर्षों में उसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया।

इधर इस क्षेत्र का अध्ययन काफ़ी आगे बढ़ा है और नवीन सामग्री भी प्रकाश में आई है। अतएव नवीन संस्करण निकालने के पूर्व इसका पुनः संपादन और संशोधन करा लेना आवश्यक था। हमारे वयोवृद्ध साहित्य-सेवी बाबू गुलाबराय ने इस कार्य को संपन्न किया है और हमें आशा है कि यह नवीन संस्करण जो 'हिंदी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह' के शीर्षक से प्रकाशित हो रहा है पहले से भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

धीरेन्द्र वर्मा

२९-७-५१ मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

इलाहाबाद हिंदुस्तानी एकेडेमी

द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में भाव और शैली दोनों ही दृष्टियों से प्रेममार्गी कवियों का एक अपना विशिष्ट स्थान है। उनके महत्त्वपूर्ण योग की उपेक्षा नहीं की जा सकती, पर यह दुःख का विषय है कि अभी तक इस धारा के प्रमुख कवियों की कृतियाँ सुसंपादित रूप में हमारे समक्ष नहीं आ सकी हैं।

इसी कमी को ध्यान में रखकर संक्षेप में इस धारा के परिचय के लिए हिंदुस्तानी एकेडेमी ने आज से ११-१२ वर्ष पूर्व इसके प्रमुख पाँच कवियों की कृतियों का संक्षिप्त संग्रह 'हिंदी के कवि और काव्य', भाग ३, नाम से प्रकाशित किया था। पुस्तक के आरंभ में एक छोटी सी भूमिका भी थी जिसमें इन कवियों की संक्षिप्त जीवनियाँ तथा समीक्षाएँ थीं। हिंदी संसार ने पुस्तक का उचित स्वागत किया और कुछ ही वर्षों में उसका संस्करण समाप्त हो गया।

पुस्तक के संपादक श्री गणेशप्रसाद जी द्विवेदी का देहावसान हो जाने के कारण इसका दूसरा संस्करण तैयार करने का भार मेरे दुर्बल कंधों पर रक्खा गया था। अब यह दूसरा संस्करण हिंदी संसार के समक्ष जा रहा है।

पहले संस्करण में आरंभ के संग्रह में आनेवाले कवियों की संक्षिप्त आलोचनाएँ तो थीं पर इस काव्यधारा के विषय में कुछ नहीं दिया गया था। इस संस्करण में एक भूमिका जोड़ दी गई है जिसमें सूफ़ी संप्रदाय के नाम, उसके विकास एवं सिद्धांत आदि पर प्रकाश

डाला गया है और इस काव्यधारा की संक्षिप्त समीक्षा भी की गई है।

पहले संस्करण के आरंभ में दी गई कवियों की जीवनियाँ और समीक्षाएँ इस संस्करण में कुछ परिवर्तन और परिवर्धन के साथ अलग-अलग संकलनों के साथ रक्खी गई हैं। पाठकों के लिए यह परिवर्तन अधिक सुविधाजनक होगा।

पहले संस्करण में जायसी, नूर मुहम्मद, उसमान, आलम और फिर शेख निसार का क्रम था। कालक्रम की दृष्टि से यह त्रुटिपूर्ण था अतः नवीन संस्करण में क्रम परिवर्तित करके जायसी, उसमान, आलम, नूर मुहम्मद और शेख निसार कर दिया गया है।

पाठ की दृष्टि से इस संस्करण में कुछ बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। इधर डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कई वर्षों के परिश्रम के उपरांत अपनी पुस्तक 'जायसी ग्रंथावली' प्रकाशित की है जिसका पाठ अब तक के प्राप्त पाठों से अधिक प्रामाणिक है। इस संस्करण में 'पद्मावत' से संगृहीत भाग का पाठ उक्त डॉ० गुप्त की ग्रंथावली के अनुसार ही रक्खा गया है। लेखक ने डॉ० गुप्त के परिश्रम से लाभ उठाया है जिसके लिए उनका हृदय से कृतज्ञ है।

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में 'माधवानलकामकंदला' का पाठ बहुत भ्रष्ट था, स्थान-स्थान पर बिंदु देकर रिक्त स्थान भी छोड़ दिये गये थे। हिंदुस्तानी एकेडेमी के सहायक मंत्री श्री रामचंद्र टंडन ने कई प्रतियों के आधार पर इसका एक अच्छा संस्करण तैयार किया है जो अभी अप्रकाशित है। टंडन जी की पांडुलिपि के आधार पर इसके रिक्त स्थानों की पूर्ति कर दी गई है तथा स्थान-स्थान पर पाठ में भी कुछ सुधार कर दिये गये हैं।

शेष तीन पुस्तकों—'इंद्रावती', 'चित्रावली' और 'यूसुफ़-ज़ुलेखा'—के पाठों में साधारण परिवर्तन यत्र-तत्र कर दिये गये हैं। प्रामाणिक संस्करणों के अभाव में इन तीनों के पाठ में अपेक्षित परिवर्तन नहीं किया जा सका है।

इधर सूफ़ी काव्यधारा की कुछ और महत्त्वपूर्ण सामग्री भी प्रकाश में आ चुकी है जिसमें शेख़ कुतुबन की 'मृगावति', मंझन की 'मधुमालति' जान कवि की 'कनकावति', 'कामलता', 'छीता' और 'मधुकर मालति' आदि क़ासिमशाह का 'हंस-जवाहिर', नूर मुहम्मद की 'अनुराग बाँसुरी', ख्वाजा अहमद की 'नूरजहाँ' तथा कवि नसीर का 'प्रेमदर्पण' आदि प्रेमगाथाएँ; एवं ख़ुसरो, जायसी, शेख़ फ़रीद, यारीसाहब, बुल्लेशाह, नज़ीर, हाजी वली तथा वजहन आदि के फुटकर दोहे, पद और कुंडलियाँ आदि प्रधान हैं। इनमें से भी बानगी के लिए कुछ चीजें जोड़ने का मेरा विचार था पर पुस्तक के बड़ी हो जाने के भय से ऐसा न कर सका। इस नवीन सामग्री के कुछ प्रमुख ग्रंथों के नाम पाठकों की सुविधा के लिए सहायक ग्रंथ की सूची में जोड़ दिये गये हैं।

आशा है यह नवीन संस्करण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

गोमती निवास
दिल्ली-दरवाज़ा, आगरा
आषाढ़ शुक्ल ५
सं० २०१०

विनीत
गुलाबराय

सहायक ग्रंथ

मूल पाठ

हस्तलिखित

१—माधवानलकामकंदला (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
२—यूसुफ-जुलेखा (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग तथा श्री गोपालचंद्र सिंह, लखनऊ)
३—मृगावति (भारत कलाभवन, काशी)
४—जान-ग्रंथावली (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
५—रतनावति, जान-कृत (कुँवर संग्राम सिंह, नवलगढ़)
६—मधुमालति (श्री गोपालचंद्र सिंह, लखनऊ)
७—मधुकरमालति (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

प्रकाशित

१—जायसी-ग्रंथावली (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
२—जायसी ग्रंथावली (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
३—चित्रावली (का० ना० प्र० सभा, काशी)
४—इंद्रावती (का० ना० प्र० सभा, काशी)
५—अनुरागबाँसुरी (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
६—हंस-जवाहिर (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
७—मज-मूआ बर राहे हक़ (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

समीक्षा

१—डॉ० जे० ए० सुबहान : सूफ़िज़्म-इट्स सेंट्स ऐंड श्राइन्स (लखनऊ १९३८)

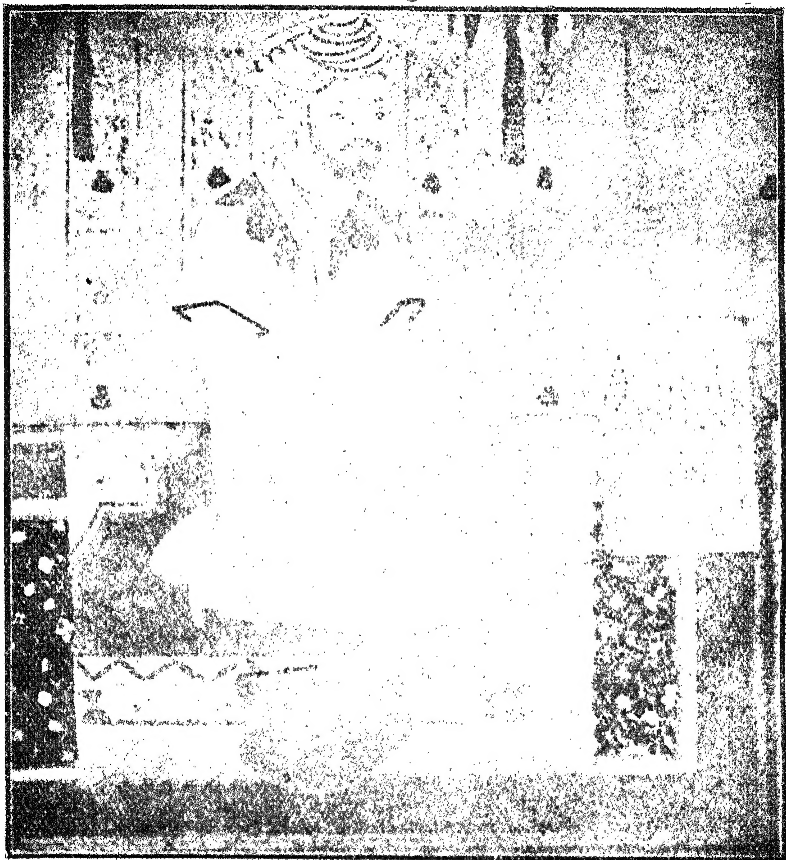
२—डॉ० ए० जे० अर्बरी : एन इंट्रोडक्शन टू द हिस्ट्री अव् सूफ़िज़्म (लंदन, १९४२)

३—पं० चंद्रबली पांडे : तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ी मत (बनारस, १९४५ ई०)

४—बाँकेबिहारी लाल : ईरान के सूफ़ी कवि (इलाहाबाद सं० १९९६)

५—पं० परशुराम चतुर्वेदी : सूफ़ी-काव्य-संग्रह (इलाहाबाद १९५१ ई०)

विषय-सूची



मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेममार्गी कवि

समझौते की वृत्ति

जायसी से क़रीब सौ-सवा सौ वर्ष पहले ही हिंदू और मुसलमान जनता साम्प्रदायिक विद्वेष को बहुत कुछ किनारे कर एक-दूसरे की संस्कृति, उपासना-पद्धति और विचार-परम्परा आदि को सहानुभूतिपूर्वक समझने और पारस्परिक आदान-प्रदान की ओर रुचि करने लगी थी। यद्यपि तत्कालीन मुसलमान शासकों का भाव हिंदू प्रजा के प्रति उतना सहानुभूतिपूर्ण नहीं था, तथापि हिंदू और मुसलमान प्रजा में एक प्रकार का भ्रातृभाव स्थापित हो चला था और वह उत्तरोत्तर दृढ़ से दृढ़तर होता चला जा रहा था। मुसलमान प्रजा यह समझने लगी थी कि यदि हमें हिंदुस्तान में रहना ही है तो हिंदुओं के विश्वास, संस्कृति तथा साहित्य आदि के प्रति छत्तीस होकर रहना असंभव है। शायद यही कारण था कि तत्कालीन कुछ मुसलमान विचारक, फ़क़ीर और कवि हिंदुओं के साहित्य और संस्कृति के अध्ययन की ओर तो झुके ही पर कुछने हिंदुओं की तत्कालीन काव्यभाषा में साहित्य निर्माण का भी श्रीगणेश किया। इन लोगों ने इस बात को ठीक-ठीक समझ लिया था कि दोनों सम्प्रदायों के लोगों में एक-दूसरे की संस्कृति और साहित्य के प्रचार और उनको लोकप्रिय बनाने से बढ़कर आपस में घनिष्ठता और सौहार्द्र स्थापित करने का दूसरा उपाय नहीं हो सकता। इसी विचार से प्रेरित होकर ख़ुसरो, कबीर और जायसी आदि कुछ दूरदर्शी कवियों ने इस दिशा की ओर पैर बढ़ाया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता भी मिली।

सबसे पहले ख़ुसरो ही इस कार्य में अग्रसर हुए। ख़ुसरो की कविता का एक बहुत बड़ा भाग लुप्त हो गया है, तो भी जो प्राप्त है उससे उनकी हिंदुओं के धर्मग्रंथ, संस्कृति तथा साहित्य आदि के प्रति

पूरी श्रद्धा और सहानुभूति स्पष्ट है। कबीर का मार्ग सबसे निराला था। इन्होंने दोनों की बुराइयों का खण्डन करते हुए ('इन दोउन राह न पाई') एक-दूसरे से पृथक् रखनेवाली गर्व की भावना को दूर करने का प्रयत्न करते हुए जनता को प्रेम के साधारण सूत्र में बाँधने की चेष्टा की। कबीर के प्रतिवाद प्रायः इतने तीव्र परंतु सच्चे हुआ करते थे कि दोनों ही सम्प्रदायों के कट्टर और धर्मान्ध लोग इनके घोर विरोधी हो गये। पर इतना होते हुए भी दोनों ही सम्प्रदायों की अधिकांश जनता पर इनकी शिक्षाओं का बड़ा प्रभाव पड़ा और दोनों ही जातियों की अधिकांश जनता, जो धार्मिक कट्टरपन की बहक से बरी थी, कबीर की अनुयायिनी हुई। कबीर की साधारण शिक्षाओं का लोहा मानते हुए भी जनता उनके खंडनात्मक कार्य से प्रसन्न न थी क्योंकि अपनी बुराई सुनना किसी को अभीष्ट नहीं होता। कबीर आदि ने जिनके साथ बहुत हिंदू संत भी थे, ज्ञान को प्रधानता दी और ये लोग ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि कहलाये। कबीर यद्यपि मुस्लिम घराने में पले थे तथापि वे सम्प्रदाय भेद से ऊपर उठे हुए थे। इसके बाद क़ुतबन और जायसी आदि का समय आता है। इन लोगों ने हिंदुओं की प्रचलित कथाओं के द्वारा प्रेम-तत्त्व की अभिव्यक्ति की, जिसमें जन-साधारण की वृत्ति अच्छी प्रकार रम सकती थी। यद्यपि इन लोगों का झुकाव मुसलमानी धर्म की ओर कुछ अधिक था तथापि ये खंडनात्मक कार्य से बहुत दूर रहे। कबीर की उद्दंड उक्तियों से जो बात नहीं हुई वह इनकी प्रेमगाथाओं से हुई।

सूफ़ी लोग उदार प्रकृति के थे। इन्होंने प्रेम की पीर को पहचाना और उसे अपनी साधना का प्रमुख अंग बनाया। इस प्रेम में कटुता के लिए स्थान नहीं रहता। ये लोग सूफ़ी सिद्धांत के माननेवाले थे और प्रेममार्गी कवियों के नाम से अभिहित हुए। सूफ़ी लोग साधारण मुसलमानों की अपेक्षा कुछ अधिक मुलायम तबीयत के होते थे। इनको न हिंदुओं से द्वेष था और न हिंदी से। इन्होंने हिंदुओं की भाषा को देश-भाषा और फलतः अपनी भाषा के रूप में अपनाया।

सूफ़ी सम्प्रदाय

व्युत्पत्ति

सूफ़ी शब्द की कई व्युत्पत्तियां बताई जाती हैं। कुछ लोग तो इसका सूफ़ (सफ़ेद ऊन) से संबंध जोड़ते हैं (ये लोग सादा फ़क़ीरी जीवन व्यतीत करने के कारण सफ़ेद ऊन के मोटे कपड़े पहनते थे) और कुछ लोग इस शब्द का संबंध सफ़ (पंक्ति) से जोड़ते हैं। ये लोग सदाचार के कारण एक पंक्ति में बिठलाये जाने के अधिकारी थे। इनकी बराबरी की भावना के कारण सूफ़ी शब्द इन पर लागू हो सकता है। मदीना शरीफ़ की मसजिद के आगे एक चबूतरा है जिसको सुफ़्फ़ा कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि जो फ़क़ीर लोग इस चबूतरे पर बैठते थे वे सूफ़ी कहलाते थे। इसकी व्युत्पत्ति यूनानी के 'सोफ़िया' शब्द से लगाना अधिक ठीक जान पड़ता है। 'सोफ़िया' का अर्थ है ज्ञान। यह शब्द अँगरेज़ी शब्द फ़िलासफ़ी के मूल में है। इस अर्थ के लगाने से शब्द में अधिक व्यापकता आ जाती है। यद्यपि सूफ़ियों का संबंध अधिकतर मुसलमान फ़क़ीरों से है तथापि सूफ़ी-सिद्धांतों की परम्परा बहुत पुरानी है।

रहस्यवाद की परम्परा

सूफ़ी लोग मर्मी या रहस्यवादियों के अंतर्गत ही माने जाते हैं। परात्पर सत्ता के साथ मनुष्य की निजी और भावात्मक संबंधजन्य मिलन और विरह की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति को रहस्यवाद कहते हैं। ससीम का असीम से मिलने का आनंद गूँगे के गुड़ की भाँति अव्यक्त रहता हुआ भी कबीर के शब्दों में 'सेना-बेना' और कुछ रूपकों और प्रतीकों द्वारा समझाया जाता है। इसमें दार्शनिक चिंतन की अपेक्षा मनोवेग का प्राधान्य रहता है। मनुष्य में जितनी तीव्रता, मधुरता और कोमलता दाम्पत्य और वात्सल्य-भाव की रहती है उतनी और किसी की नहीं। दाम्पत्य-भाव में एक निजीपन और आनंद-पूर्ण रहस्यमयता रहती है। उसी आनंदपूर्ण रहस्यमयता का जब साधक परात्पर सत्ता के सम्बन्ध में अनुभव करने लगता है, तभी वह रहस्यवाद

के क्षेत्र में प्रवेश करता है। यह भावात्मक संबंध भगवान के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों के साथ स्थापित किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल जी सगुण रूप के साथ नहीं मानते हैं और वे तो निर्गुण के साथ भी ऐसी संभावना में विश्वास नहीं करते। उनका कथन है कि 'अज्ञेय जिज्ञासा का विषय हो सकता है, प्रेम का नहीं'। यह विवाद का विषय है, इसमें पड़ने का यहाँ स्थान नहीं। किंतु यह दाम्पत्य-भाव का संबंध निर्गुण के विषय में कुछ अधिक आया है। श्री चद्रबली पांडे के शब्दों में दाम्पत्य-भाव की अपेक्षा मादन-भाव कहना अधिक ठीक होगा।

ईश्वर और जीव के संबंध में दाम्पत्य की भावना हमको उपनिषदों[1] में भी मिलती है। ईसाइयों की धर्मपुस्तक के प्राचीन और नवीन 'अहद्नामों' ('टेस्टामेंट्स') में इसकी झलक मिलती है। सुलेमान और दाऊद के गीतों में ऐसी भावना है। नये अहद्नामें में ईसामसीह को दूलहा और उनमें विश्वास करनेवाले समाज को दुलहिन बतलाया गया है।[2]

यहूदियों का यहोवा अधिकांश में एक शासक के रूप में आता है। उसमें एक जाति-विशेष (इसराइलियों) पर कृपा करने की भावना दिखाई गई है। वह उनका त्राता है। उसके अनुयायियों ने 'बाल' आदि देवताओं की पूजा का निराकरण कर दिया था और भय का साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था। ईसाइयों ने भी इस परंपरा को अपनाया किंतु

---

[1] तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरं, एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद, नान्तरम्, तद्वा अस्य एतदाप्तकामं आत्मकामं अकामं रूपम्॥ अर्थात् जिस तरह से प्रिया स्त्री द्वारा अच्छी तरह आलिंगन किया हुआ पुरुष न भीतर की किसी वस्तु का ज्ञान रखता है न बाहर का, उसी तरह से यह जीव ज्ञानवान परमात्मा से मिलकर न भीतर का जानता है और न बाहर का; क्योंकि वह आत्मकाम हो जाता है। अर्थात् उसकी सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। वास्तव में आत्मा की प्राप्ति में किसी चीज़ की प्राप्ति शेष नहीं रहती। बृहदारण्यक, ४।३।२१

[2] योहन ३-२४

उन्होंने अपने ईश्वर के साथ पिता-पुत्र का संबंध स्थापित कर ईश्वर और जीव के संबंध में कोमलता का विधान किया। हज़रत मुहम्मद साहब (सं० ६२८-६८८) के अनुयायी मुसलमान लोगों ने भी उसी भय के संबंध को, जो यहूदियों में था, अपनाया। यहूदियों की अपेक्षा ईसाइयों और मुसलमानों का ख़ुदा किसी जाति-विशेष के लिए नहीं है वरन् वह उन सब लोगों पर कृपा करता है जो प्रभु ईसामसीह या हजरत मुहम्मद साहब की शरण में जाते हैं। ये दोनों ही मत पैग़ंबर या मध्यस्थ के माननेवाले हैं।

भय के संबंध की तथा मूर्तिपूजा-विरोध की प्रतिक्रिया हुई। यहोवा के अनुयायियों इसराइलियों में ही नहीं मुसलमानों में भी यह प्रतिक्रिया हुई। ईसाइयों में प्रेम के लिए अधिक गुंजाइश थी। यूनानी दार्शनिकों और उनके अनुयायियों, विशेषकर प्लोटीनस आदि के विचारों, यूनान की गुप्त टोलियों तथा ईसाइयों के मध्ययुगीन संतों के सम्मिलित प्रभाव से रहस्यवाद को एक दृढ़ आधार-भूमि मिली। हिंदुओं और बौद्धों का प्रभाव मुसलिम देशों में फैल रहा था। अरब से तो भारत का आदान-प्रदान बहुत दिनों से चल रहा था। इन्हीं सब प्रभावों से मुसलमानों के सूफ़ी सम्प्रदाय को पोषण मिला। बसरा और बग़दाद उसके दो मुख्य केन्द्र बने।

यद्यपि शुद्ध इसलाम धर्म में प्रेम और मादन-भाव के लिए बहुत कम स्थान है तथापि लोग अपनी-अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल सभी बातों के लिए गुंजाइश निकाल लेते हैं। अरब के लोगों में सभी कठोर और उद्दंड न थे। वहां भी प्रेम और संगीत के उपासकों का अभाव न था। अरब के कवियों में अरबी और फ़ारिज़ ऐसे ही कवि थे। इन्होंने इश्क़ मजाज़ी से इश्क़ हक़ीक़ी पर जाने का प्रयत्न किया है।

मुस्लिम जगत में प्रेम की पुकार करनेवालों में राबिया (मृ० सं० ८०९) का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। यह बसरे की रहनेवाली थी। इसको हम इस्लाम की मीरा कह सकते हैं। प्रारंभ में तो इस्लाम के

कट्टरपंथियों, मुल्लाओं और ख़लीफ़ाओं का उदार वृत्तिवाले सूफ़ियों से विरोध रहा, क्योंकि ईश्वर से ऐक्यभाव रखने और गाने-बजाने आदि को वे एक प्रकार कुफ्र समझते थे। मंसूर (मृ० ८३१) को जिसका दूसरा नाम हल्लाज था 'अनलहक़' अर्थात् 'मैं सचाई हूँ' (अहं ब्रह्मास्मि) कहने के कारण सूली पर चढ़ना पड़ा था। यह बग़दाद का रहनेवाला था। जितनी खुलकर मंसूर ने इस सिद्धांत की घोषणा की थी उतनी स्पष्टता से किसी ने नहीं की थी। वह मुहम्मद साहब को नबी मानता था, फिर भी उसे कट्टरपंथियों का कोपभाजन बनना पड़ा। इसके बलिदान से सम्प्रदाय को बल मिला। जूलनून, यज़ीद, .जुनैन आदि इस्लाम के साथ समझौते का प्रयत्न करते रहे, किंतु पूर्णतया सफल न हो सके। इस्लाम को तसव्वुफ़ की .ज़रूरत थी और तसव्वुफ़ को इस्लाम की। इमाम ग़ज़्ज़ाली ने इस समझौते की पूर्ति कर द्वेषभाव को मिटाया। ये संवत् ११०० के क़रीब थे।

ईरान में मुस्लिम कट्टरता के कम हो जाने पर सूफ़ी कविता चेती। वहां मौलाना रूम, हाफ़िज़, अत्तार बड़े ऊँचे दर्जे के कवि हुए। उमर .ख़ैयाम ने अपनी रुबाइयों में सुरा और सुन्दरी-प्रेम की प्रतिष्ठा की। ये भाव-प्रतीक रूप से सूफ़ी भावनाओं की पुष्टि करते थे।

हिंदुस्तान में मुहम्मद-बिन-क़ासिम के साथ आये हुए कुछ अरब सिंध में बस गये। वे हिंदुओं के प्रभाव में आये। यहां के दार्शनिक वातावरण में सूफ़ी सम्प्रदाय .खूब पनपा। मुलतान सूफ़ियों का केन्द्र बना। अरबों के पश्चात् और मुसलमान जातियां भी आईं। वे लोग लड़ते-भिड़ते और मारकाट करते रहे किंतु सूफ़ी लोग अपने प्रेम का संदेश प्रसारित करने में तत्पर रहे। यहां के मुसलमानों में अबुलहसन हुज हज्विरी बहुत प्रसिद्ध सूफ़ी हुए हैं। उनका लिखा हुआ 'कश्फ़ुल महजूब' सूफ़ी सम्प्रदाय का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। यहां सूफ़ियों के कई सिलसिले चले। उनमें चिश्ती, सुहरावर्दी, क़ादिरी, शत्तारी और नक़्शबंदी प्रमुख माने जाते हैं। इनमें मुईउद्दीन चिश्ती १२४९ में शाहबुद्दीन गोरी के साथ आये थे। सलीम चिश्ती भी एक मशहूर

फ़क़ीर हो गये हैं। शाहजहां का लड़का दाराशिकोह भी सूफ़ी सम्प्रदाय का पोषक और बड़ी उदार प्रकृति का था। वह क़ादिरिया ख़ानदान का था। ख्वाजा वहीउद्दीन नक़्शबन्दियों में से थे। जायसी ने चिश्ती ख़ानदान का उल्लेख किया है।

सूफ़ी-सिद्धांत

यद्यपि सूफ़ी लोग स्वतंत्र प्रकृतिवाले और चिंतनशील थे तथापि वे इस्लाम के घेरे में ही रहना चाहते थे। वे और धर्मों के प्रति उदार थे, उनका आदर करते थे, किंतु निष्ठा और श्रद्धा इस्लाम में ही थी। जायसी जैसे उदार मुसलमान ने भी इस्लाम धर्म को ही महत्ता दी है ('सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा।') साधारण मुसलमान में क़ुरान की आज्ञाओं को विधिवाक्य के रूप में मानने की प्रवृत्ति रहती है। वह उसमें अक़्ल का दख़ल नहीं चाहता है। सूफ़ी लोगों का मत भावना-प्रधान है, किंतु उसमें स्वतंत्र चिंतन पर्याप्त मात्रा में है। वे अपने विचारों की पुष्टि के लिए क़ुरान शरीफ़ का पोषण ढूँढ़ निकालते हैं, ठीक उसी तरह से जिस तरह हमारे यहां के दार्शनिक श्रुति के अधिकार-क्षेत्र से बाहर नहीं जाते। हां शराब को लेकर प्रतीक रूप और कुछ-कुछ वास्तविक रूप से भी शरीयत की अवहेलना की गई है। वह एक आध्यात्मिक मस्ती और स्वतंत्रता का प्रतीक है। इसी प्रकार बुत उनके यहां प्रेमपात्र का प्रतीक है। शराब और बुतपरस्ती को, जो मुसलमानों के यहां वर्ज्य है, प्रतीक-रूप से अपनाकर शरीयत से स्वतंत्र होने का उन्होंने मानसिक तोष प्राप्त किया। वैसे तो दुनिया के दार्शनिक विषय तीन ही हैं—ईश्वर, जीव और जगत। इन तीनों की अन्विति ब्रह्म में हो जाती हैं। इन तीनों में जीव और ब्रह्म या ईश्वर का संबंध मुख्य है।

मुसलमानों के एकेश्वरवाद में अल्लाह की मुख्यता है, किंतु उसी के साथ मुहम्मद रसूल-अल्लाह को भी प्रधानता दी गई है। क़ुरान शरीफ़ में अल्लाह का वर्णन कई रूपों में आया है। (१) एक देश-विशेष (स्वर्ग या आसमान) में रहनेवाले व्यक्तित्व-प्रधान रूप में, जो रसूल से बातचीत भी करता है, और (२) सार्वदेशिक और व्यापक रूप में।

सूफ़ियों ने इस व्यापक रूप को अधिक अपनाया किंतु उसको अपने प्रेम का विषय बनाया। रसूल में व्यक्तित्व का प्राधान्य था। उनको भी उन्होंने अपने प्रेम का विषय बनाया।

जीव या सालिक अथवा साधक का मुख्य लक्ष्य है ईश्वरीय सत्ता के साथ तल्लीनता प्राप्त करना। इसके लिए हमको मनुष्य के चार विभागों को समझ लेना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं :

नफ़्स (इंद्रियां और चंचल चित्तवृत्तियां), रूह (आत्मा), क़ल्ब (हृदय, जिस पर ईश्वर का प्रतिबिंब पड़ता है) और अक़्ल (बुद्धि)। नफ़्स का निरोध ही साधक का परम लक्ष्य है। योग को भी पतञ्जलि ने चित्त-वृत्ति-निरोध कहा है। 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'। नफ़्स के प्रबल रहते हुए क़ल्ब की शुद्धि नहीं हो पाती। नीचे की पंक्तियों में जायसी ने इसी शुद्धि और परिमार्जन की ओर संकेत किया है।

तन दरपन कहँ साजु, दरसन देखा जो चहै।
मन सौं लीजिय माँजि, मुहम्मद निरमल होइ हिया।

क़ल्ब को अंतःकरण की भाँति भौतिक पदार्थ ही माना है, किंतु उसमें अल्लाह की छाया पड़ने से उसका रूप अभौतिक भी हो जाता है। क़ल्ब का एक सूक्ष्मतम अंश है जिसको सिर्र कहते हैं। सिर्र से मनुष्य में निष्कामता और संन्यास की भावना आ जाती है। वह ईश्वरीय जमाल (माधुर्य) का प्रसाद है। क़ल्ब पर पड़े हुए चित्र ही आत्मा में ज्ञान-रूप हो जाते हैं। क़ल्ब रूह की उन्नति का साधन है।

रूह इन्सान का शुद्धतम अंश है जिसमें अल्लाह की झलक पड़ती है। सूफ़ी लोग अक़्ल को नफ़्स से तो ऊँचा मानते हैं किंतु उसको तथा उसके द्वारा प्राप्त इल्म (ज्ञान) को ईश्वर-प्राप्ति में बाधक समझते हैं। वे अक़्ल की अपेक्षा 'म्वारिफ़' को अधिक महत्त्व देते हैं। यह म्वारिफ़ 'इंट्यूशन' (प्रातिभज्ञान) के निकट आ जाता है।

सूफ़ी लोग साधक की चार अवस्थाएं मानते हैं :—

शरीयत—अर्थात् धर्मग्रंथों के विधि-निषेध का विधिवत् पालन। इसमें बाहरी कर्मकांड रहता है।

तरीक़त—बाहरी कर्मकांड के विधि-निषेध से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा उस परमतत्त्व के साक्षात्कार की चेष्टा।

हक़ीक़त—सत्य या तत्त्वदृष्टि की प्राप्ति।

मारफ़त—अर्थात् सिद्धावस्था, जिसमें साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है और वह प्रेममय हो जाता है।

शरीयत यद्यपि पहली श्रेणी है तथापि सिद्ध लोगों ने उसका तिरस्कार नहीं किया है।

जायसी ने इनको ही चार मुक़ाम के रूप में कहा है—

चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरे पार।

'अखरावट' में भी चार बसेरों का उल्लेख है—

बाँक चढ़ाव, सात खँड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा।

इसी पुस्तक में इनका नाम भी गिनाया गया है।

कही तरीकत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरू।[1]

× × ×

राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बड़ूकी॥

सारांश यह है कि नफ़्स को वश में करके क़ल्ब की शुद्धि कर रूह को परमात्मा में लीन करना सालिक या साधक का मुख्य कार्य है। इस कार्य में ज़िक्र (स्मरण) और मुराक़बत (ध्यान) मुख्य साधन हैं। नाम-स्मरण का महत्त्व संतों और भक्तों दोनों में ही रहा है। जायसी ने रत्नसेन द्वारा पद्मावती के नाम का जाप कराया है।

बैठि सिंघ छाला होइ तपा। पदमावति पदमावति जपा॥

इससे .खुदी का नाश होता है। .खुदी का नाश परम मिलन के लिए अनिवार्य है। ध्यान या मुराक़बत द्वारा तल्लीनता आती है। इस तल्लीनता की ही अवस्था को हाल कहते हैं। इस अवस्था में साधक .खुदी का त्याग कर आनंद में झूमने लगता है। यह एक प्रकार के आवेश

---

[1] जायसी-ग्रंथावली, पृष्ठ ३२१

की अवस्था होती है। इस दशा का वर्णन जायसी ने इस प्रकार दिया है—

जेहि मद चढ़ा परा तेहि पाले। सुधि न रही ओहि एक पियाले॥
परी कया भुइँ लोटै, कहाँ रे जिउ बलि भीउँ।
को उठाइ बैठारै, बाज पियारे जीउँ॥

इस हाल की अवस्था की दो दशाएं होती हैं। एक फ़ना की जो अभावात्मक है और जिसमें ख़ुदी का नाश हो जाता है। दूसरी अवस्था बक़ा की है। बक़ा का अर्थ स्थायित्व है। यह भावात्मक परमानन्द की दशा है। व्यक्तित्व का क्या होता है? वह लोहे के गोले और अग्नि की भाँति परमात्मामय हो जाता है अर्थात् अपना व्यक्तित्व बनाये रखता हुआ भी परमात्मा के गुण प्राप्त कर लेता है, अथवा शराब और पानी की तरह मिल जाता है, किंतु अपनी ख़ासियत अलग रखता है (शराब और पानी मिलाकर जलाने से शराब जल जायगी पानी नहीं जलेगा) अथवा जैसे पानी की बूँद समुद्र या दरिया में समा जाती है फिर उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं रहता है। सूफ़ी फ़क़ीर पहले दो पक्षों की ओर अधिक झुके हैं। कबीर ने तीसरे पक्ष को अपनाया है।

सूफ़ी लोगों ने सर्वात्मवाद को माना तो है किंतु उसको प्रतिबिंब-वाद से मिलाया है। जगत् के संबंध में कई कल्पनाएं की जा सकती हैं। जगत् विवर्त है अर्थात् उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है, जैसे पानी का बुलबुला। जगत् परिणाम है जैसा सांख्यवाले मानते हैं। जगत् ईश्वर का प्रतिबिंब है। प्रतिबिंबवाद का उदाहरण जायसी से दिया जाता है—

नयन जो देखे कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखे हंस भा दसन जोति नग हीर॥

पद्मावती के नखशिख-वर्णन में भी ऐसी ही बात कही गई है, देखिए—

जेहिं दिन दसन जोति निरमई। बहुतैन्ह जोति-जोति ओहि भई॥

उपनिषदों में भी कहा गया है—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'।

सर्वात्मवाद के उदाहरणों की भी कमी नहीं है। 'अखरावट' में जायसी लिखते हैं—

सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा॥

× × ×

आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहिं सो रस चाखनहारा।

× × ×

आपुहि कागद आप मसि, आपुहि लेखनहार।
आपुहि लेखनी आखर, आपुहिं पँडित अपार॥

हिंदी के सूफ़ी कवियों पर भारतीय सर्वात्मवाद के अतिरिक्त हठ-योग का काफ़ी प्रभाव था। जायसी तथा अन्य सूफ़ी कवियों ने हठ-योग के मूल सिद्धांत 'जो पिंड में वही ब्रह्मांड में है' पूर्णरूपेण माना है। देखिए—

सातौं दीप नवौ खंड, आठौ दिसा जो आहि।
जो बरम्हंड सौ पिंड है, हेरत अंत न जाहि॥

जायसी ने प्राणायाम को भी माना हैं, देखिए—

चाँद सुरुज दूनौ सुर चलहीं। सेत लिलार नखत झलमलहीं॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सूफ़ी कवि भारतीय जीवन में घुल-मिल गये थे। इन्होंने भारतीय कहानियों के साथ भारतीय विचार-धारा और परंपराओं को अपनाया था। साथ ही सच्चे मुसलमान भी बने रहे थे।

प्रेमगाथा-साहित्य

प्रेममार्गी कवियों ने अपनी प्रेमगाथाओं द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि सभी मनुष्यों के हृदय में, चाहे वे हिंदू हों और चाहे मुसलमान अथवा और किसी सम्प्रदाय के, प्रेम-भावना के बीज वर्तमान रहते हैं, जो समय पाकर अंकुरित हो उठते हैं। इन लोगों ने आख्यानक काव्य द्वारा यह दिखलाया कि किसी के रूप गुण से आकर्षित होकर उससे एक होने की

प्रेममार्गी कवियों का लक्ष्य

इच्छा करना, इस कार्य की सिद्धि के लिए नाना प्रकार के असह्य कष्ट झेलना, अन्त में उसकी प्राप्ति से सुख, फिर उसके वियोग के दुख और प्रेम की पीर आदि हृदय के विविध भाव और उसकी तरङ्गें, क्या हिंदू क्या मुसलमान सभी के हृदय में समान रूप से उठती हैं। इन लोगों ने मुसलमान होकर हिंदू घरानों में प्रचलित प्राचीन प्रेम-कहानियों को उन्हीं की भाषा में कहा, पर अपने ढंग से; और इस प्रकार यह सिद्ध कर दिया कि जहां प्रेम है वहां जाति, सम्प्रदाय या मत-मतांतर का भेद कोई अर्थ नहीं रखता। प्रेमकथाओं की परम्परा तो संस्कृत और अपभ्रंश से चली आ रही थी, वीरगाथा काल में राजाओं की विजय-यात्राओं के अङ्ग रूप प्रेमकथाएं आई हैं। पद्मावती की कथा 'पृथ्वीराजरासो' में भी है। किंतु हिंदी में स्वतंत्र रूप से प्रेमगाथाओं को अपनानेवाले मुसलमान कवि ही थे। इस परम्परा में पहला नाम मुल्ला दाऊद का आता है। ये अलाउद्दीन खिलजी के समय में थे। इनका कविता-काल सं० १३७५ के आस-पास माना जाता है। इन्होंने 'नूरक और चन्दा' नाम की प्रेम-कथा लिखी थी किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार की प्रेम-गाथा लिखने-वालों में सबसे पहले कवि जिनकी रचना प्राप्य है, शेख क़ुतुबन हैं। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और इनकी रचित 'मृगावती' (निर्माण-काल ९०९ हि० अर्थात् १५५९ वि०) इस प्रकार का पहला आख्यानक-काव्य है। इसमें अवधी बोली में दोहा चौपाइयों में चन्द्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचन-नगर के राजा रूपमुरारि की राज्यकन्या मृगावती की प्रेम-कहानी वर्णित है। मृगावती उड़ने की विद्या में निपुण थी। एक दिन राजा को धोखा देकर वह उड़ गई। राजा उसकी खोज में निकल पड़ा। रास्ते में उसने रुक्मिणी नाम की एक रूपवती कन्या को एक राक्षस से बचाया। उसके पिता ने उसका राजकुमार के साथ विवाह कर दिया। किंतु राजकुमार मृगावती की खोज में तत्पर रहा। वह उस नगर में पहुँच गया जहां मृगावती अपने पिता के देहावसान के पश्चात् उसकी गद्दी पर राज कर रही थी। वहां वह बारह वर्ष रहा। राज-कुमार के पिता को खबर लगी तब उसने उसको बुलवाया। राजकुमार

मृगावती को तथा रुक्मिणी को साथ लेकर अपने नगर पहुँचा। वहां आखेट में हाथी से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। इसमें प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है और बीच में सूफ़ी सिद्धान्तों की भी झलक दिखाई गई है। इस परम्परा में मंझन, जायसी, उसमान ('चित्रावली' के रचयिता), नूर मुहम्मद ('इन्द्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के रचयिता) तथा शेख निसार ('यूसुफ़ जुलेखा' के रचयिता) आदि कई कवि हुए। कुछ हिन्दुओं, जैसे पंजाबी कवि सूरदास, तथा कुशललाभ आदि ने भी इसी शैली में प्रेमाख्यान लिखे हैं।

गाथाओं की विशेषताएं

हम ऊपर कह चुके हैं कि कहीं तो इन्होंने हिन्दुओं की कहानियां अपने ढंग से कहीं। ढंग से यहां मतलब है इनकी रचनाओं के ढाँचे और वर्णन-शैली से। भारतीय साहित्य में प्रबंध-काव्यों की जो सर्गबद्ध प्रथा पुरातन काल से चली आ रही थी उससे इन्होंने काम नहीं लिया। इन्होंने फ़ारसी की मसनवियों को आदर्श बनाया। इनमें विस्तार के अनुसार कथा सर्गों या अध्यायों में विभक्त नहीं होती। एक सिरे से इनका क्रम अखंड-रूप से बराबर चला जाता है, केवल कहीं-कहीं घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षकों के रूप में दे दिया जाता है, जैसे—'सात समुद्र खंड', 'राजा गढ़ छेंका खंड', या 'राजा बादशाह युद्ध खंड' इत्यादि। मसनवियों की रचना के संबंध में कुछ विशेष साहित्यक परम्पराओं के पालन का प्रतिबंध नहीं होता। इनमें केवल इतना ही आवश्यक होता है कि सारी रचना केवल एक ही छंद में हो, पर कथावस्तु के संबंध में एक परम्परा का पालन अवश्य करना पड़ता था। आरंभ में परमेश्वर, नबी और तत्कालीन बादशाह की स्तुति मसनवियों में अनिवार्य समझी जाती थी। प्राय: सभी ने अपने गुरुओं का तथा अपने जन्मस्थान आदि का भी उल्लेख किया है। इस परम्परा का पालन जायसी और क़ुतुबन आदि सभी प्रेमगाथाकारों ने नियम से किया है। छंद भी इन लोगों ने आद्योपांत दोहा-चौपाई ही (सात-सात या कहीं-कहीं नौ-नौ

चौपाइयों के बाद एक-एक दोहा) रक्खा है। जायसी के पूर्व के कवियों ने पाँच-पाँच चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा रक्खा है। चौपाइयों की विषम संख्या देख कर यह धारणा होती है कि ये लोग दो ही चरणों से चौपाई पूरी मानते रहे होंगे, पर जैसा कि 'चौपाई' शब्द ही से स्पष्ट है, चारों चरणों में एक चौपाई पूरी होती है। तुलसीदासजी ने ऐसा ही किया है। ये तो बाहरी विशेषताएं रहीं। सूफ़ियों की प्रेमगाथा की एक आन्तरिक विशेषता यह है कि पुरानी कथाओं में एक नया अर्थ भरा गया है इस बात को कुतबन ने अपनी 'मृगावती' में लिखा है। 'पुनि हम अरथ खोल सब कहा' यह आध्यात्मिक संकेत ही इनकी विशेषता है। इनमें रूपवर्णन के अन्तर्गत नखशिख-वर्णन बहुत अच्छा हुआ, उसी के साथ ही विरह-निवेदन भी बड़ा मार्मिक हुआ है।

प्रेमगाथाओं का रूप और विषय

सबसे मार्के की बात इन प्रेमगाथाओं के संबंध में यह है कि ये सभी अवधी में और दोहा-चौपाई छंद में ही लिखी गई हैं। अब तक प्रायः दस प्रेमगाथाओं का पता लग चुका है, पर उनमें के प्रकाशित संस्करण केवल तीन ही हमारे देखने में आये हैं। पर सभी की भाषा, शैली तथा विषय-निर्वाह आदि के संबंध में आश्चर्यजनक समानता पाई गई है। यहां तक कि लेखकों के भिन्न-भिन्न नाम यदि न बताये जायँ तो पाठक यही समझेगा कि ये सब एक ही लेखक की लिखी हुई हैं। विषय प्रायः सभों में कुछ-कुछ इसी ढङ्ग का होता है—कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुन या प्रत्यक्ष या स्वप्न या चित्र में देखकर आकर्षित होता है। उधर भी यही हालत होती है। अंत में वह कुछ विश्वस्त साथियों को साथ लेकर उसकी खोज में चल पड़ता है। प्रायः उसे कोई मार्गप्रदर्शक भी मिल जाता है। यह अधिकतर राजकुमारी का भेजा हुआ कोई दूत अथवा दूत का काम करनेवाला कोई पक्षी या तोता हुआ करता है। राह में उसे बड़ी विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार फलागम होते-होते कोई ऐसा विघ्न आ जाता है या उससे कोई ऐसी भूल हो जाती है जिससे

उसकी उद्देश्य सिद्धि फिर एक अनिश्चित काल तक के लिए रुक जाती है। वर्णन भी इन आख्यायिकाओं का एक आवश्यक अंग होता है। इनके संबंध में यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि इन कहानियों का आधार प्रायः ऐतिहासिक होता है और बहुत सी घटनाएं भी ऐतिहासिक होती हैं, यद्यपि कवि उसमें अपनी आवश्यकतानुसार हेर-फेर किए रहता है। पर इन इतिहासमूलक कथानकों के अतिरिक्त कवि अपनी इच्छा या आवश्यकता के अनुसार एक या अधिक काल्पनिक कथानक भी मिला देता है। यह प्रायः चरितनायक के उत्कर्ष को बढ़ाने और कथा में अलौकिक या आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट करने के उद्देश्य से होता है।

प्रेमगाथाओं में रहस्यवाद

इन प्रेमगाथाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण वह अंश होता है जिसका संबंध अध्यात्म या रहस्यवाद से होता है। लौकिक कथा के द्वारा कवि जो परोक्ष की ओर संकेत करता है वही शायद रचना का प्रधान उद्देश्य रहता था। कथा के अंत में कवि स्पष्ट रूप से कह देता है कि वह सारी कथा अन्योक्ति रूप में कही गई है और उसी रूप में कथा को समझने के लिए वह पाठक से अनुरोध करता है। उदाहरणार्थ पद्मावत में नायक रतनसेन को साधक समझना चाहिए। पद्मावती को प्राप्त करने की इच्छा से जो उसके हृदय में प्रेम की पीड़ उठती है उसे ईश्वरोन्मुख प्रेम या लगन समझना चाहिए। पद्मावती तक पहुँचने की राह बतानेवाले सुआ को गुरु, राघव दूत को शैतान, रानी नागमती को सांसारिक बंधन, तथा सुलतान अलाउद्दीन को माया का प्रतिनिधि या शैतान बताया गया है। निम्नलिखित चौपाइयां देखिए—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा?
नागमती यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥

राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥

इस प्रकार अंतिम चौपाई में कवि एक प्रकार से चुनौती सी दे देता है कि यदि उक्त रीति से कथा को समझ सको तो समझ लो।

इस रूपक या अन्योक्ति का सब स्थानों में पूरा-पूरा निर्वाह नहीं हुआ है। नागमती दुनिया का धन्धा अप्रस्तुत में चाहे कह लिया जाय प्रस्तुत में उसका चरित्र बहुत अच्छा है। उसमें स्त्रीसुलभ असूया भाव तो है किंतु उसका विरह बड़ा मार्मिक है और उसमें मानसिक पक्ष की प्रधानता है। उसका त्याग अनुपम है। वह पद्मावती को संदेशा भेजती है—'मोहि भोग सो काज न बारी। सौंह दिस्ट कै चाहनहारी'। ऐसी सती-साध्वी नारी को दुनिया-धन्धा कहना उसके साथ अन्याय करना है।

सुआ को गुरु बनाया यह ठीक है किंतु उसके गुरु बनाने के कारण रत्नसेन के प्रारम्भिक प्रेम में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है जिसके कारण आचार्य शुक्लजी ने उसे प्रेम न कहकर लोभ कहा है। गुरु का उपदेश मौखिक ही होता है। भौतिक पक्ष में केवल वर्णन सुन कर बेहोश हो जाना अस्वाभाविक अवश्य है किन्तु आध्यात्मिक पक्ष में यह गुरु की महत्ता का द्योतक होता है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से भाव जो रहस्यवाद से संबंधित हैं प्रेमगाथाओं में मिलते हैं। प्रेममार्गी कवियों पर हठयोग का भी प्रभाव है। यह प्रभाव हमको जायसी के और नूर मुहम्मद के गढ़-वर्णन में मिलते हैं।

जायसी—

नवौ खंड नव पँवरी, औ तहँ बज्र केवार।
चार बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार॥
नव पौरी पर दसम दुवारा। तेहि पर बाज राज घरियारा।
घरी सो बैठि गनै घरियारी। पहर पहर सो आपन बारी॥
जबहीं घरी पूज तेहि मारा। घरी घरी घरियार पुकारा।

नूरमुहम्मद—

राजै गढ़ नौ खंड बनावा। ऊँच गगन लग ताहि उठावा ॥

....

गढ़ के ऊपर ठीक ही, घड़ियाली घड़ियाल ॥
निसिदिन बैठे साधै, घड़ी मुहूरत काल ॥

जायसी के उद्धरण में दशम द्वार और अनहद नाद के साथ सूफ़ियों के माने हुए शरीयत आदि चार मुक़ाम या श्रेणियों का वर्णन आ गया है। नूरमुहम्मद में नौ खंडों के ऊपर गढ़ का वर्णन है, वहां पर अनहद शब्द होता है और मनुष्य की आयु की ओर भी संकेत है।

सिंहलगढ़ और आगमपुर का वर्णन प्रायः एक सा ही है। आगमपुर भी सिंधु के पार है। यह नाम भी सार्थक है। नूरमुहम्मद ने चंद्र और सूर्य को शरीर के भीतर ही माना है, किंतु उनका क्रम कुछ उलटा है। उन्होंने पहले खंड में चंद्रमा माना है, चौथे में सूर्य।

नैहर से पतिगृह जाने का रूपक और सरोवर में स्नान की बात भी जायसी और नूरमुहम्मद दोनों ने ही कही है। इसमें भगवान् को पति-रूप से मानने की व्यंजना है।

जायसी—

ऐ रानी मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
जौलहि अहे पिता कर राज। खेलि लेहु जो खेलहु आज ॥
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित यह सरवर पाली ॥

नूरमुहम्मद—

खेलि लेहु नइहर मों, सब मिलि परमद खेल।
पुनि नइहर के छाड़तै, सासुर होब अकेल ॥
हम अज्ञात न सासुर चीन्हा। यह नइहर ऊपर चित दीन्हा ॥

सूफ़ियों के प्रतिबिंबवाद की भी झलक जायसी, उसमान, नूरमुहम्मद में समान रूप से मिलती है।

जायसी—

बिगसे कुमुद देखि ससिरेखा। मैं तेहिं रूप जहां जो देखा॥
पावा रूप-रूप जस चहे। ससिमुख सब दरपन हुइ रहे॥
नैन जो देखे कँवल भए, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखे हंस भए, दसन जोति नग हीर॥

उसमान—

चित्र देखि...तैं जाना। तामहँ अहा सो नहिं पहिचाना॥
चित्रहि महँ सो आहि चितेरा। निर्मल दिष्टि पाउ सो हेरा॥

चित्र को संसार कहा है और असली बिंब को परमात्मा। जो चित्र में मन लगाते हैं वे असलियत से दूर रहते हैं।

मूरख सो चित्र मन लावा। सेमर सुआ जैस पछतावा॥

इन आध्यात्मिक व्यंजनाओं के अतिरिक्त पद्मावत की भाँति चित्रावली में भी गुरुमहिमा गाई गई है। वहां भी एक पक्षी ही गुरु का रूप धारण करता है।

कुँअर कहा अब सुनहु परेवा। मैं तोर सीख मोर तैं देवा॥
मैं तजि पंथ जात बौराना। तै गहि बांह पंथ पर आना॥
बूड़त मोर नाउ मँझ नीरा। तू खेवक होइ लाइस तीरा॥
सोअत हौं जो अहा सो जागा। मन तजि चित्र चितेरहि लागा॥

नखशिख-वर्णन, बारहमासा और विरह-वर्णन के संबन्ध में सभी में समान भाव पाये जाते हैं। सूफियों की प्रेम की पीर जो विरह-वर्णन का मुख्य अंग है यूसुफ-जुलेखा और मधुमालती में भी पाई जाती है। इस से इस संग्रह में उनकी सार्थकता है।

मलिक मुहम्मद जायसी

जीवन-वृत्त

निवास-स्थान

हिंदी और संस्कृत के अधिकांश प्राचीन कवियों की भाँति जायसी की भी जन्म-मरण-तिथि, जन्मस्थान तथा माता-पिता आदि के संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। इतना तो इनके उपनाम 'जायस' से ही प्रकट है कि ये अवध प्रांत के अंतर्गत 'जायस' नामक स्थान के रहने-वाले थे। प्रकृत मातृभूमि या जन्मस्थान चाहे जायस न रहा हो पर इनके क्रिया-कलाप का केन्द्र यही रहा होगा। पद्मावत में आई हुई इस पंक्ति से भी यही धारणा पुष्ट होती है—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू॥

इस पंक्ति से यह स्पष्ट है कि कहीं से आकर ('तहां आइ') यह जायस में बस गये थे;[1] कहाँ से आकर इसका कुछ पता नहीं। कुछ लोग गाजीपुर से आया बतलाते हैं लेकिन यह बात बहुत संदिग्ध मानी गई है। 'आखिरी कलाम' में भी ऐसा ही लिखा है, देखिए—

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर नावँ आदि उद्यानू॥

जायस नगर का प्राचीन नाम 'उद्यान' था। इसका संबंध उद्दालक ऋषि से बताया जाता है। संभव है कि नगर की शोभा के कारण भी उसका नाम 'उद्यान' पड़ा हो और फिर उसका ही अनुवाद जायस शुद्ध रूप 'जैश' (पड़ाव) अथवा 'जाए ऐश' (ऐश-आराम की जगह) रख दिया गया हो। मूल में इस नगर का संबंध उद्दालक ऋषि से रहा हो फिर इसे 'उद्यान' कहने लगे हों। फिर 'उद्यान' शब्द बगीचे के अर्थ में लिया जाने लगा हो।

---

[1] ऐसी ही बात 'आखिरी कलाम' में भी कही गई है :—

तहां दिवस दस पहुने आएउं। भा बैराग बहुत सुख पाएउं॥

व्यक्तित्व

इनकी उत्पत्ति के संबंध में यह किंवदंती बहुत दिनों से चली आ रही है कि इनका जन्म गाजीपुर जिले के एक बड़े दरिद्र परिवार में हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें चेचक की बीमारी हुई, जिसमें इनके प्राण तो बच गये पर इनकी एक आँख जाती रही। कहते हैं इस बीमारी से जायसी की रक्षा करने के लिए इनकी माता ने मकनपुर के पीर मदार शाह की मनौती मानी थी और उन्हीं की दुआ से इनकी जान बची। पर मनौती पूरी करने के पहले ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया और इनके पिता तो पहले ही मर चुके थे। कवि के एकाक्षी होने का प्रमाण पद्मावत की इस पंक्ति से मिलता है—

एक नयन कबि महमद गुनी।

एक दोहे में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि बीमारी में इनकी बाईं आँख तो फूटी थी ही, साथ ही बायाँ कान भी बहरा हो गया था। वह दोहांश नीचे दिया जाता है—

मुहम्मद बाईं दिसि तजा एक सरवन एक आँखि।

इन किंवदंतियों तथा अन्य ऐतिहासिक वृत्तांतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शीतला देवी ने इनके शरीर और स्वरूप के साथ मनमाना अत्याचार किया था। इनके अत्यंत कुरूप होने का प्रमाण इस कथा से मिलता है। एक बार अवध का कोई राजा जो इन्हें पहचानता नहीं था, इनके कुरूप चेहरे को देखकर हँसा। इस पर जायसी ने इनसे केवल इतना ही कहा "मोंहि का हँसेसि कि कोहरहिं" अर्थात् तू मुझ पर हँसा कि उस कुम्हार (निर्माता, ईश्वर) पर? कहते हैं कि इस पर वह बड़ा लज्जित हुआ; बाद में इनका परिचय जानने पर बहुत तरह से इनसे क्षमा माँगी।

इनके जीवन-काल का कुछ अनुमान पद्मावत के रचनाकाल से लगता है जो कि इन्होंने उक्त ग्रंथ में दे दिया है—

सन् नव सै सैंतालिस अहा। कथा आरंभ बैन कबि कहा॥

रचना-काल

इस ग्रंथ का आरम्भ सन् ९४७[1] हिजरी अथवा तदनुसार संवत् १५९७ में हुआ था। यह शेरशाह का राजत्वकाल था और ग्रंथारंभ में कवि ने इसकी प्रशंसा में भी बहुत से पद्य लिखे हैं। बस इसी से जायसी के आविर्भाव और कविताकाल का स्थूल अनुमान किया जा सकता है।

आचार्य शुक्लजी ने 'आख़िरी कलाम' के आधार पर

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरखि ऊपर कवि बदी ॥

उनका जन्म ९०० हिजरी के लगभग (अर्थात् संवत् १५५० के लगभग) माना है। नौ सदी का अर्थ जायसी नौ से ही लगाते होंगे। ३०वर्ष की अवस्था में उन्होंने कविता करना आरंभ किया होगा। नौ सौ छत्तीस में उन्होंने 'आख़िरी कलाम' लिखा।

नौ से बरस छत्तीस जो भए। तब ये कविता आखर बए ॥

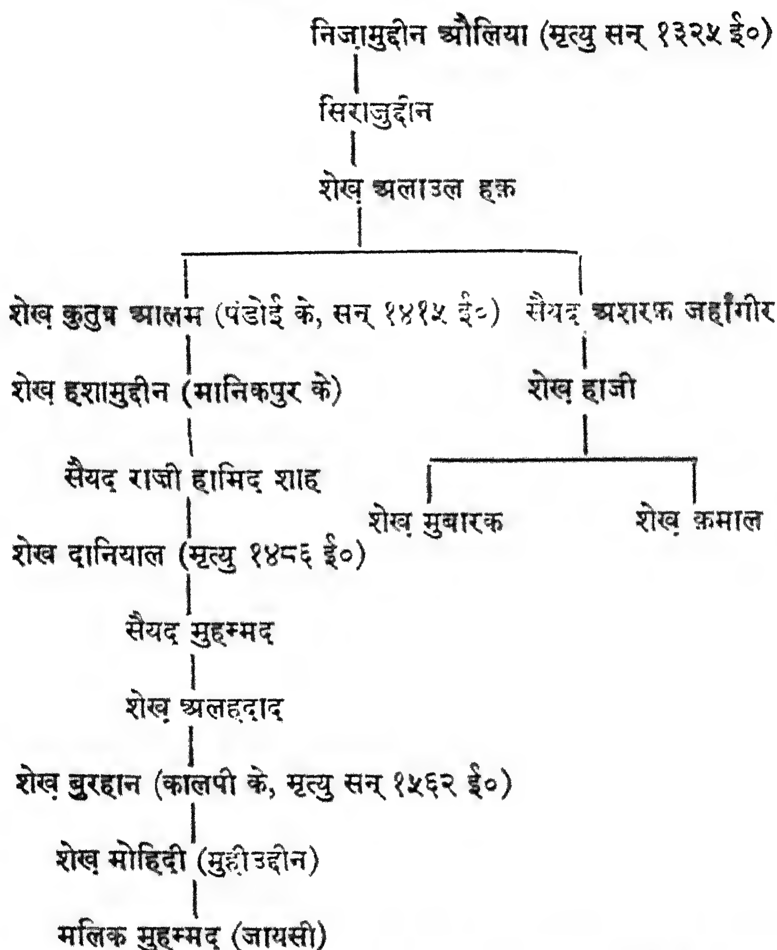
उनके जन्म के बाद कुछ प्राकृतिक उत्पात (भूकंप आदि) भी हुए जिनका उल्लेख जायसी ने 'आखिरी कलाम' में किया है—'भा भूकंप जगत् अकुलाना'। उसी के आस पास सूर्यग्रहण भी पड़ा था।

गा अलोप होइ भा अँधियारा। दीखहि दिनहि सरग मां तारा ॥

गुरु-परम्परा

जायसी के गुरु शेख़ मोहिदी (मुहीउद्दीन) थे। इनकी गुरुपरम्परा का वर्णन जायसी की 'पद्मावत' और 'अखरावट' दोनों में मिलता है। यह परम्परा निज़ामुद्दीन औलिया से आरंभ होती है। इसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

[1] कुछ लोगों ने इसको ६२७ माना है। फ़ारसी अक्षरों में लिखा हुआ नौ सौ सैंतालिस, नौ सौ सत्ताइस भी पढ़ा जा सकता है किंतु नौ सौ सत्ताइस में शेरशाह का शासन काल न था। जो लोग 'पद्मावत' का रचनाकाल ६२७ मानते हैं उनका कहना है कि कथा ६२७ में ही आरंभ की। उसकी भूमिका पुस्तक समाप्त होने पर शेरशाह के समय में लिखी। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने नौ सौ सैंतालीस ही पाठ दिया है।



उपर्युक्त परंपरा जायसी के अनुयायी मुसलमानों में अब तक प्रचलित है। 'पद्मावत' में दी हुई वंशावली इससे कुछ भिन्न है। 'अखरावट' में इन्होंने अपनी गुरु-परंपरा का इस प्रकार वर्णन किया है—

पाएउं गुरु मोहदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥
नाँव पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानू॥

आलोचना

'पद्मावत' की कथा

अब यहां पर पद्मावत की कथा भी संक्षेप से दे देना आवश्यक है। सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती रूप-गुण में अद्वितीय थी, यहाँ तक कि उसके योग्य वर कहीं नहीं मिलता था। उसके पास हीरामन नाम का एक तोता था जो कि बड़ा विद्वान् और वाक्पटु था। पद्मावती के वर न मिलने के संबंध में वह एक दिन अपने विचार प्रकट कर रहा था पर संयोग से राजा ने उसके विचारों को सुन लिया जिससे उसे बड़ा क्रोध आया और उसने तोते को अपने यहाँ से निकलवा दिया। इधर-उधर कुछ दिनों तक भटकने के बाद हीरामन रतनसेन के यहाँ पहुँचा और उसने उसे अपने यहाँ रख भी लिया। एक दिन जब राजा कहीं शिकार खेलने गया तब उसकी रानी नागमती ने हीरामन से पूछना आरंभ किया 'हे हीरामन तू तो दुनिया में बहुत घूमा-फिरा है, बता तो तूने कहीं मेरे समान कोई और भी सुंदरी देखी है?' हीरामन ने सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की चर्चा करते हुए कहा कि 'उसमें और तुममें दिन और अँधेरी रात का अंतर है।' यह सुनकर रानी ने बड़े क्रोध में आकर उसे मरवा डालने की आज्ञा दे दी। पर चेरियों ने राजा के भय से उसे मारा नहीं, केवल एक जगह छिपाकर रख दिया। शिकार से लौटने पर अपने प्यारे तोते को न पाकर रतनसेन का मिज़ाज बहुत बिगड़ा, यहाँ तक कि अंत में उसके गुस्से से डर कर बाँदियों ने हीरामन को उसके सामने लाकर रख दिया। पूछने पर उसने सब वृत्तांत कह सुनाया और प्रसंगवश पद्मावती के सौंदर्य का भी वर्णन किया। राजा के हृदय पर तोते के द्वारा सुनी हुई सुंदरता का ही इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह मूर्छित होकर गिर ही पड़ा और होश में आने पर योगी-वेश में सिंहलगढ़ की ओर चल पड़ा। उसके साथी सोलह हज़ार राजकुमार भी योगी का बाना धारण कर उसके साथ हो लिये। इन योगियों की पलटन का नेता और मार्ग-प्रदर्शक वही हीरामन तोता था।

अंत में अनेक विघ्न-बाधाएं झेलते हुए दुर्गम समुद्र पार कर यह विचित्र दल सिंहलद्वीप पहुँचा और रतनसेन ने एक मंदिर में, जहां कभी पद्मावती पूजन करने आया करती थी, पड़ाव डाला और वहीं पद्मावती की मानसिक पूजा में लीन हो गया। कुछ समय के उपरांत श्री पंचमी के पर्व के दिन पद्मावती वहां पूजन के निमित्त आई पर रतनसेन ऐन मौके पर चूक गया। वह उसे देखते ही मूर्छित हो गया। तोते ने महल में जाकर उसकी करुण कहानी पद्मावती को कह सुनाई। पद्मावती ने कहला भेजा कि वक्त पर तो तुम चूक गये अब इस दुर्गम सिंहलद्वीप तक चढ़ो तभी मुझे देख सकते हो। राजा अपने सभी जोगियों सहित किले में घुसा पर गढ़ में पहुँचते पहुँचते सबेरा हो गया और वह वहीं पकड़ा गया। राजा के सामने उसका विचार हुआ और उसे सूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी गई। पर यह हाल देखकर उसके साथी योगियों ने गढ़ घेर लिया और उनकी सहायता के लिए शिव, हनुमान आदि सारे देवता भी उनके दल में मिल गये। फल यह हुआ कि गंधर्वसेन की सारी सेना हार गई। उसने जोगियों के बीच जब साक्षात् शिव को लड़ते हुए देखा तो वह दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला, 'महाराज पद्मावती आपकी है जिसे चाहिए उसे दीजिए।' अब रतनसेन के मार्ग में कोई रुकावट न थी। उसका विवाह पद्मावती से हो गया और वह उसे लेकर चित्तौर गढ़ लौट भी आया।

रतनसेन के दरबार में राघवचेतन नामक एक पंडित रहता था। वह बड़ा तांत्रिक था और उसे यक्षिणी सिद्ध थी। उसने अपनी माया से दरबार के अन्य पंडितों को बड़ा नीचा दिखाया। राजा को इस पर बड़ा क्रोध आया और उसने उसे देश-निकाले का दण्ड दे दिया। राघव इस अपमान का बदला लेने की नीयत से दिल्ली के तत्कालीन बादशाह अलाउद्दीन के पास पहुँचा और उससे पद्मावती के रूप की बड़ी प्रशंसा की। अलाउद्दीन ने उसे प्राप्त करने के अनेक उपाय किये, रतनसेन से कई बार युद्ध हुआ पर प्रत्येक बार उसे नीचा देखना पड़ा। अंत में

संधि हुई और धोखे से उसने रतनसेन को पकड़ लिया और कहवा दिया कि जब पद्मावती मेरे पास आएगी तभी रतनसेन छूट सकेंगे। इस पर रानी ने कहलवा दिया कि मैं सात सौ बाँदियों के साथ तुम्हारे पास आ रही हूँ और एक बार राजा से अंतिम साक्षात कर उन्हें चित्तौर रवाना कर तुमसे आ मिलूँगी। इसमें सुलतान ने कोई आपत्ति नहीं की। पर इन सात सौ पालकियों के अंदर और उनके ढोने वाले कहार सब वीर राजपूत योद्धा थे। उन्होंने सुलतान के खेमों में पहुँच कर इधर तो रतनसेन को छुड़ा कर एक घोड़े पर बैठा कर वीर बादल के साथ चित्तौर रवाना कर दिया गया और उधर गोरा इन राजपूत वीरों के साथ यवनों को रोके रहा। चित्तौर पहुँचने पर पद्मावती ने कुंभलनेर के राजा देवपाल द्वारा अपने पास दूती भेजी जाने की बात कही। इस पर राजा ने कुंभलनेर जा घेरा और दोनों एक दूसरे से लड़ते हुये वीर गति को प्राप्त हुए। इधर जब नागमती और पद्मावती के पास यह समाचार पहुँचा तो दोनों सहर्ष अपने पति के शव के साथ सती हो गईं। बाद में जब अलाउद्दीन गढ़ में पहुँचा तो उसे जलती हुई चिताओं को छोड़ कर और कुछ नहीं दिखाई पड़ा।

इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो प्रायः पूरा कल्पित है किन्तु उसका भी बहुत अंश प्रचलित लोक कथाओं पर अवलम्बित है। उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर है। इसके नायक-नायिका दोनों ही इतिहास प्रसिद्ध पात्र हैं और जायसी यद्यपि मुख्य-मुख्य स्थलों पर ऐतिहासिक आधार का अनुसरण करते हुये चले हैं तथापि अपनी अपूर्व कल्पना और अनुभूति के सहारे से वे पूरी कथा को एक ऐसा रूप देने में सफल हुये हैं जो जनता के हृदय में परंपरा से अवस्थित था और यही कारण है कि यह कथा इतनी लोकप्रिय हुई।

कथा में कल्पना और इतिहास का सम्मिश्रण

जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। अवधी में इतनी बड़ी और व्यापक प्रबंध-रचना सबसे पहले इन्हीं की मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की

भाषा

रचना के समय इनकी पद्मावती को बहुत सी बातों में आदर्श बनाया होगा। कम से कम 'मानस' का बाह्य रूप और विशेषतः उसकी भाषा तो पद्मावती से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, अंतर केवल इतना ही है कि 'मानस' में हम अवधी का परिमार्जित, सुसंस्कृत और सर्वथा साहित्यिक रूप देखते हैं पर 'पद्मावत' में यह अपने ठेठ रूप में है और प्रायः ग्रामीणता लिये हुये है। जायसी उतने काव्यकला-कुशल तो थे नहीं पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जिस भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है उस पर उन्हें पूरा अधिकार था। तुलसी की भाषा जो इतनी सुसज्जित या साहित्यिक कही जाती है उसका कारण है उनका संस्कृत का गंभीर पांडित्य। मानस की चौपाइयों का माधुर्य, उनका ओज तथा उनकी साहित्यिकता बहुत कुछ उनमें प्रयुक्त संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली पर निर्भर करती है। जायसी में यह कमी है, या यों कहिए कि यही उनकी ख़ूबी है। अवधी का स्वाभाविक माधुर्य जायसी की ही भाषा में प्रस्फुटित हो पाया है। यह कहना कठिन है कि तुलसी ने अपने चुने हुये संस्कृत के तत्सम शब्दों या वाक्यांशों के आभूषण भार से उस की शोभा को सचमुच और प्रदीप्त करके दिखाया है या उस की नैसर्गिक शोभा को ढाँक दिया है।

रस और अलंकार

यों तो जायसी ने अपने काव्य में प्रायः सभी रसों का समावेश किया है पर उनकी स्वाभाविक रुचि विप्रलंभ-शृंगार की ओर जान पड़ती है। संभोग-शृङ्गार, वीर और करुणा में भी इन्हें अच्छी सफलता मिली है। यद्यपि जायसी का रस-वर्णन भारतीय कवि परंपरा-प्रणाली के अनुसार ही हुआ है, तथापि कुछ बातों में इनका ढङ्ग सबसे निराला है। उर्दू कवियों के वियोग-वर्णन में प्रायः जो एक प्रकार की वीभत्सता पाई जाती है उसकी प्रचुरता पद्मावत में भी है, और शृंगार के संभोग पक्ष के संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि वह बहुत परिष्कृत अथवा कोमल नहीं है। उसमें मिठास या प्रेमनिर्भरता की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि कुछ लोगों को उसमें ग्रामीणता या अश्लीलता की बू भी मिल सकती

है। वीर-रस का वर्णन इनका सर्वत्र शृङ्गार की आड़ लिये हुए है और उसी के आधार पर स्थित जान पड़ता है। वीर के साथ ही उचित अवसरों पर रौद्र, भयानक और वीभत्स भी अपनी-अपनी छटा दिखाते हैं। 'राजा-बादशाह युद्ध खंड' में वीर, और 'लक्ष्मी-समुद्र खंड' में भयानक रस का बड़ा सुंदर समावेश हुआ है। परंतु एक बार फिर कहना पड़ेगा कि ये सभी ग्रंथ के स्थायी रस शृङ्गार के आधार पर स्थित हैं। ग्रंथ के स्थायी रस पर विचार करते समय एक बात और स्मरण रखनी पड़ेगी। यह सारा ग्रंथ एक प्रकार से अन्योक्ति के रूप में है। कवि ने अंत में स्पष्ट कर दिया है कि इसमें वर्णित नायक-नायिका के प्रेम को साधारण लौकिक प्रेम न समझकर साधक का ईश्वरोन्मुख प्रेम समझना चाहिए। इस दृष्टि से ग्रंथ का स्थायी रस शांत मानना पड़ेगा।

'पद्मावत' को अन्योक्ति कहने में कथा भाग गौण हो जाता है। अन्योक्ति में व्यंग्यार्थ को महत्ता दी जाती है। 'माली आवत देखि के कलियन करी पुकार' में अथवा 'बाज पराये पान पर तू पच्छीनु न मार' में माली और कली का इतना महत्त्व नहीं है जितना कि उनसे व्यञ्जित होनेवाले अर्थ का, अर्थात् जीव और मृत्यु का अथवा मुसलमानों के आश्रित होकर हिंदुओं को सताने की बात का। 'पद्मावत' में कथा का भी इतना ही महत्त्व है जितना कि उससे व्यञ्जित होनेवाले आध्यात्मिक अर्थ का। इसीलिए आचार्य शुक्ल जी ने उसे समासोक्ति कहा है। समासोक्ति में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों को समान रूप से महत्ता मिलती है।

अन्योक्ति का कहीं तो बड़ा सुंदर निर्वाह हुआ है और कहीं-कहीं इस निर्वाह में कथा की वस्तु-स्थिति के साथ अन्याय हो जाता है। कथा के सब भागों में यह अन्योक्ति बैठती भी नहीं है किंतु जहाँ बैठती है वहाँ बहुत ठीक बैठती है।

अलंकारों के संबंध में भी जायसी ने अधिकतर कवि-कुलागत पद्धति का ही अनुसरण किया है। इनके अलंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का ही एक प्रकार से साम्राज्य है। यद्यपि अलंकारों के प्रयोग में इन्होंने अधिकतर

भारतीय काव्य-पद्धति को ही आदर्श माना है तथा स्थान-स्थान पर फ़ारसी कवित्व की भी झलक स्पष्ट है, विशेषकर करुण रस और विरह वर्णन के अवसरों पर। अलङ्कारों का समावेश दो उद्देश्यों से होता है। प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करने और भाव को प्रदीप्त करने के लिए। और भी उद्देश्य हो सकते हैं पर मुख्य यही दोनों होते हैं। इसके साथ ही भावुक कवि अलङ्कारों के प्रयोग के समय इस बात का बड़ा ध्यान रखता है कि कहीं उसके द्वारा प्रयुक्त अलंकार से रस के परिपाक में बाधा न पड़े। प्रायः लोग वर्णन को स्पष्ट करने के लिए ऐसी उपमा या उत्प्रेक्षा आदि रख देते हैं जिससे एक प्रकार से वर्णन तो स्पष्ट हो जाता है पर साथ ही रंग में भंग भी हो जाता है। जायसी भी स्थान स्थान पर इस दोष के भागी हुए हैं। विरह-वर्णन के समय शृंगार को वीभत्स के आधारभूत करना इनके लिये साधारण बात है। नख-सिख वर्णन के समय इनकी उपमा और उत्प्रेक्षाएं, विशेषतः हेतूत्प्रेक्षाएं, भिन्न-भिन्न वर्णनीय अंगों की विशेषताओं का तो बहुत स्पष्ट परिचय देती हैं पर साथ ही हँसी भी आती है। शृंगार रस के लिए अलङ्कार भी वैसे ही होने चाहिए जिनसे सौंदर्य भावना में व्याघात न पड़े। पर जायसी की उड़ान तो कहीं-कहीं उपहासास्पद सी जान पड़ने लगती है। अलङ्कार द्वारा भाव की स्पष्टता और दीप्ति के अतिरिक्त चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी जायसी में कम नहीं। जायसी में मुद्रा अलङ्कार के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। मुद्रा अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ किसी चीज के वर्णन में उस वस्तु के संबंध से बाहर के नाम बन जायं। नीचे के उदाहरण चिड़ियों के नाम बन जाते हैं :

आहि का होइ गिउकंठ लगा। करै मेराव सोइ गौरवा ॥

जाकर जो सँदेसा ले आवे जिससे प्रियतम कंठ लगें। जो मिलाप कराये वही गौरवास्पद है।

कदम सेवती चंप चमेली।

इस चरणों की सेवा के वर्णन में कदंब और सेवती फूलों के नाम आ गये हैं।

प्रत्यनीक का एक उदाहरण लीजिए। प्रत्यनीक अलङ्कार वहां होता है जहां बलवान से तो बस न चले परंतु उसकी जाति के लोगों से या उसके साथियों से बदला लिया जाय। बर को पतली कमर के कारण नायिका से हार माननी पड़ती है। नायिका से तो बस नहीं चलता है वह और मनुष्यों को काटती फिरती है :—

बसा लङ्क बरनै जग झीनी। तेहि ते अधिक लङ्क वह खीनी॥
परिहस पियर भए तेहि बसा। लिये डङ्क लोगन्ह कहं डसा॥

परिकरांकुर का एक उदाहरण लीजिए। परिकरांकुर अलङ्कार वहां होता है जहां विशेष्य सार्थक होते हैं।

रतन चला भा घर अँधियारा।

यहां पर रतन शब्द सार्थक है क्योंकि रतन से प्रकाश होता है रतनसेन के जाने से घर में अँधियारा होगया।

प्रबंध-कौशल

'पद्मावत' एक वृहत् प्रबंध-काव्य है। इसमें कवि को थोड़े से ऐतिहासिक आधार पर एक बहुत बड़ी इमारत खड़ी करनी पड़ी है। किसी भी इमारत का सर्वांग-सुंदर बनना असंभव है और फिर जायसी के सामने ऐसे आदमी भी नहीं थे जिनसे वे कोई विशेष लाभ उठा सकते। 'मधुमालती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', तथा 'प्रेमावती' आदि कुछ प्रेमगाथाओं का उल्लेख 'पद्मावत' में मिलता है और इससे यह स्पष्ट है कि जायसी के पहले कुछ कवि इस प्रकार की प्रेमगाथा-काव्यों की रचना कर चुके थे पर इससे यह निष्कर्ष निकालना कि इन्हीं को आदर्श मान कर जायसी ने अपने ग्रंथ की रचना की होगी, भूल है। पहले तो उक्त-गाथाओं में से 'मुग्धावती' और 'प्रेमावती' का अभी तक पता ही नहीं लगा। 'मधुमालती' और 'मृगावती' की खंडित प्रतियां नागरी प्रचारिणी सभा को देखने में मिली हैं। इनका जो भाग देखने में आया है उनसे यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि जायसी ने अपनी प्रबन्ध-कल्पना में इनको आदर्श बनाया होगा। सारांश यह कि इतने विस्तृत और व्यापक रूप से एक प्रबंधकाव्य की रचना में जायसी का प्रयास बहुत

कुछ मौलिक था। अब यहां पर देखना यह है कि इनको इस काम में कहां तक सफलता मिली है। किसी भी प्रबंध-काव्य की सफलता की विवेचना के पहले यह देखना चाहिए कि कवि का दृष्टिकोण क्या रहा है। क्या अपनी कथा के परिणाम द्वारा कवि किसी विशेष आदर्श को स्थापित करना चाहता है अथवा उसका उद्देश्य कथा के रूप में कोई सुंदर वस्तु पाठकों के सामने उपस्थित करना है। यह तो हम तुरंत कह सकते हैं कि इस रचना में किसी आदर्श विशेष को सामने रखकर उसे स्थापित करने के उद्देश्य से पात्रों के स्वाभाविक विकास अथवा घटनाओं के नैसर्गिक प्रवाह को किसी खास दिशा की ओर नहीं मोड़ा गया है, फिर जायसी और भारतीय काव्य-परम्परा के प्राचीन आदर्श 'अंत भले का भला और बुरे का बुरा',—के भी क़ायल नहीं थे। इसके प्रमाण में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि इस कथा का अंत बड़ा करुण और अत्यंत दुखांत है, सब आपत्तियों के टलने के बाद नायक नायिका आदि सभी मुख्य पात्र मृत्यु-मुख में पतित होते हैं और सारे फ़साद की जड़ उस राघवचेतन, या अलाउद्दीन ही का, कोई परिणाम-दुखद या सुखद दिखलाना कवि ने आवश्यक नहीं समझा। कथा के इतने करुण अंत को कवि ने उपसंहार में एक विचित्र रूप से शांत रस में परिणत कर दिया है। पर्यवसान के समय कवि इस चातुरी से अपना दृष्टिकोण दार्शनिक बना लेता है जिससे यह स्पष्ट भासित होने लगता है कि मनुष्य के वास्तविक जीवन का वास्तविक अंत दुःखमय नहीं बल्कि सांसारिक माया-मोह से उदासीन और पूर्ण रूप से शांत होना चाहिए। इस धारणा का कारण यही है कि जहां कवि ने कथा के बीच-बीच में नागमती और पद्मावती को प्रिय-वियोग में अत्यंत खिन्न और विषाद-पूर्ण दिखलाया है वहां प्रिय के निधन के अवसर पर भी विषादपूर्ण करुण क्रंदन अपेक्षित था। पर ऐसा नहीं हुआ। हम देखते हैं कि रतनसेन के मरने पर दोनों महिषियां विलाप में रत न हो शोक से उदासीन होकर एक शांतिमय आनंद के साथ मृतपति के साथ सती हो जाती हैं। यही हाल वीरगति को प्राप्त अन्य पुरुषों की स्त्रियों का भी दिख-

लाया गया है। सब कुछ शेष हो जाने पर अलाउद्दीन जब बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधता हुआ गढ़ में घुसा तो इसके सामने एक ऐसा दृश्य आया जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा न थी। वह दृश्य इस लोक का नहीं था। उसके हृदय पर भी इस दृश्य का गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। सतियों की चिताओं की एक मुट्ठी भस्म उसने उठाई और दुनिया को इसी (भस्म) की भाँति झूठी समझा—

छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उठाइ पिरिथिवी झूँठी ॥

पदमावत

सिंहलद्वीप-वर्णन खंड

सिंघल दीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनि बरनि सुनावौं।
बरनक दरपन भाँति बिसेखा। जेहिं जस रूप सो तैसेइ देखा।
धनि सो दीप जहँ दीपक नारी। औ सो पदुमिनि दइअँ अवतारी।
सात दीप बरनहिं सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू।
दिया दीप नहिं तस उजियारा। सराँ दीप सरि होइ न पारा।
जंबू दीप कहौं तस नाहीं। पूज न लंक दीप परिछाहीं।
दीप कुसस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा।

सब संसार परथमैं आए सातौं दीप।
एकौ दीप न उत्तिम सिंघल दीप समीप॥

गंध्रपसेन सुगंध नरेसू। सो राजा वह ताकर देसू।
लंका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि बड़ ताकर साजू।
छप्पन कोटि कटक दर साजा। सबै छत्रपति औरँगन्ह राजा।
सोरह सहस घोर घोरसारा। सावँकरन बालका तुखारा।
सात सहस हस्ती सिंघली। जिमि कबिलास एरापति बली।
असुपति क सिरमौर कहावा। गजपती क आँकुस गज नावा।
नरपति क कहाव नरिंदू। भुअपती क जग दोसर इंदू।

अइस चक्कवै राजा चहूँ खंड भै होइ।
सबै आइ सिर नावहिं सरबरि करै न कोइ॥

जबहि दीप निअरावा जाई। जनु कबिलास निअर भा आई।
घन अँबराउँ लाग चहुँ पासा। उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।
तरिवर सबै मलैगिरि लाए। भै जग छाँह रैनि होइ छाए।
मलै समीर सोहाई छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।
ओही छाँह रैनि होइ आवै। हरिअर सबै अकास दिखावै।
पंथिक जौं पहुँचै सहि घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।

जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। बहुरि न आइ सही यह धूपा।
अस अगराउँ सघन घन बरनि न पारौं अंत।
फूलै फरै छहूँ रितु जानहु सदा बसंत॥
फरे आँब अति सघन सोहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पींड सो पाके। बड़हर सोउ अनूप अति ताके।
खिरनी पाकि खाँड असि मीठी। जांबु जो पाकि भँवर असि डीठी।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी। फुरी जानु इंद्रासन पुरी।
पुनि महु चुवै सो अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।
और खजहजा आव न नाऊँ। देखा सब रावन अँबराऊँ।
लाग सबै जस अंब्रित साखा। रहै लोभाइ सोइ जोइ चाखा।
गुआ सुपारी जायफर सब फर फरे अपूरि।
आस पास घनि इँबिली औ घन तार खजूरि॥
बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाषा। करहिं हुलास देखि कै साखा।
भोर होत बासहिं चुहचुही। बोलहिं पाँडुक एकै तुहीं।
सारौ सुवा सो रहचह करहीं। गिरहिं परेवा औ करबरहीं।
पिउ पिउ लागे करै पपीहा। तुही तुही कह गुडुरू खीहा।
कुहू कुहू कोइल करि राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाषा।
दहो दही कै महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपनि हारा।
कुहकहिं मोर सोहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।
जावँत पंखि कहे सब बैठे भरि अँबराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दइअ कर नाउँ॥
पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक औ पाँवरी।
औरु कुंड बहु ठाँवहि ठाँऊ। सब तीरथ औ तिन्ह के नाऊँ॥
मढ़ मंडप चहुँ पास सँवारे। जपा तपा सब आसन मारे।
कोइ रिखेस्वर कोइ सन्यासी। कोई रामजन कोइ मसवासी।
कोई ब्रह्मचर्ज पँथ लागे। कोई दिगंबर आछहिं नाँगे।
कोइ सरसुती सिद्ध कोइ जोगी। कोइ निरास पँथ बैठ बियोगी।
कोइ महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देबी सती।

सेवरा खेवरा बानपरस्ती सिद्ध साधक अवधूत ।
आसन मारि बैठ सब जारि आतमा भूत ॥

मानसरोदक देखिअ काहा । भरा समुँद अस अति अवगाहा ।
पानि मोति अस निरमर तासू । अंब्रित बानि कपूर सुबासू ।
लंक दीप कै सिला अनाई । बाँधा सरवर घाट बनाई ।
खँडखँड सीढ़ी भईं गरेरी । उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी ।
फूला कँवल रहा होइ राता । सहस सहस पंखुरिन्ह कर छाता ।
उलथहिं सीप मोति उतिराहीं । चुगहिं हंस औ केलि कराहीं ।
कनक पंखि पैरहिं अति लोने । जानहु चित्र सँवारे सोने ।

ऊपर पाल चहूँ दिसि अंब्रित फर सब रूख ।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस औ भूख ॥

पानि भरइ आवहिं पनिहारी । रूप सुरूप पदुमिनी नारीं ।
पदुम गंध तेन्ह अंग बसाहीं । भँवर लागि तेन्ह संग फिराहीं ।
लंक सिंघिनी सारँग नैनी । हंसगामिनी कोकिल बैनी ।
आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती । गवन सोहाइ सो भाँतिहि भाँती ।
केस मेघावरि सिर ता पाईं । चमकहिं दसन बीज की नाईं ।
कनक कलस मुख चंद दिपाहीं । रहस कोड सों आवहिं जाहीं ।
जासौं वै हेरहिं चख नारीं । बाँक नैन जनु हनहिं कटारी ।

मानहु मैन मुरति सब अछरीं बरन अनूप ।
जेन्हिकी ये पनिहारी सो रानी केहि रूप ॥

ताल तलावरि बरनि न जाहीं । सूझइ वारपार तेन्ह नाहीं ।
फूले कुमुद केत उजिआरे । जानहुँ उए गगन महँ तारे ।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लै पानी । चमकहिं मंछ बीजु कै बानी ।
पैरहिं पंखि सो संगहि संगा । सेत पीत राते बहु रंगा ।
चकई चकवा केलि कराहीं । निसि बिछुरहिं औ दिनहिं मिलाहीं ।
कुरलहिं सारस भरे हुलासा । जिअन हमार मुअहिं एक पासा ।
कैवा सोन ढेक बग लेदी । रहे अपूरि मीन जल भेदी ।

नग अमोल तेन्ह तालन्ह दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मरजिआ होइ तहँ सो पावइ वह सीप॥

पुनि जो लाग बहु अंब्रित बारी। फरीं अनूप होइ रखवारी।
नवरँग नीबू सुरँग जँभीरा। औ बादाम बेद अंजीरा।
गलगल तुरँज सदाफर फरे। नारँग अति राते रस भरे।
किसमिस सेब फरे नौ पाता। दारिवँ दाख देखि मन राता।
लागि सोहाई हरपारेउरी। ओनइ रही केरन्ह की घउरी।
फरे तूत कमरख औ निउँजी। राय करौंदा बैरि चिरउँजी।
संखदराउ छोहारा डीठे। औरु खजहजा खाटे मीठे।

पानी देहिं खँडवानी कुआँहि खाँड बहु मेलि।
लागीं घरी रहट की सींचहिं अंब्रित बेलि॥

पुनि फुलवारी लागि चहुँ पासा। बिरिख बेधि चंदन भै बासा।
बहुत फूल फूलीं घन बेली। केवरा चंपा कुंद चँबेली।
सुरँग गुलाल कदम औ कूजा। सुगँध बकौरी गंध्रप पूजा।
नागेसरि सद बरग नेवारी। औ सिंगारहार फुलवारी।
सोन जरद फूलीं सेवती। रूप मंजरी औ मालती।
जाही जूही बकचुन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सोहावा।
बोलसिरी बेइलि औ करना। सबहि फूल फूले बहु बरना।

तेन्ह सिर फूल चढ़हिं वै जेन्ह माथें मनि भागु।
आछहिं सदा सुगंध भे जनु बसंत औ फागु॥

सिंघल नगर देखु पुनि बसा। धनि राजा असि जाकरि दसा।
ऊँची पँवरी ऊँच अवासा। जनु कबिलास इंद्र कर बासा।
राऊ राँक सब घर घर सुखी। जो देखिअ सो हँसता मुखी।
रचि रचि राखे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ केवरा।
सब चौपारिन्ह चंदन खँभा। ओठँधि सभापति बैठे सभा।
जनहुँ सभा देवतन्ह कै जुरी। परी द्रिस्टि इंद्रासन पुरी।
सबै गुनी पंडित औ ग्याता। संसकिरत सब के मुख बाता।

ऐहिक पंथ सवाँरहिं जस सिवलोक अनूप।
घर घर नारि पदुमिनी मोहहिं दरसन रूप॥

पुनि देखिअ सिंघल की हाटा। नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा।
कनक हाट सब कुँहकुँह लीपी। बैठ महाजन सिंघल दीपी।
रचे हथौड़ा रूपहँ ढारी। चित्र कटाउ अनेग सँवारी।
रतन पदारथ मानिक मोती। हीर पँवार सो अनबन जोती।
सोन रूप सब भण्ड पसारा। धवलसिरी पोतहिं घर बारा।
औ कपूर बेना कस्तूरी। चंदन अगर रहा भरिपूरी।
जेइँ न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा।

कोई करै बेसाहना काहू केर बिकाइ।
कोई चला लाभ सौं कोई मूर गवाँइ॥

पुनि सिंगार हाट धनि देसा। कइ सिंगार तहँ बैठी बेसा।
मुख तँबोर तन चीर कुसुंभी। कानन्ह कनक जराऊ खुंभी।
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं। नर मोहहिं सुनि पैगु न जाहीं।
भौंह धनुक तह नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौं फेरी।
अलक कपोल डोल हसि देहीं। लाइ कटाख मारि जिउ लेहीं।
कुच कंचुकि जानहुँ जुग सारी। अंचल देहिं सुभावहिं ढारी।
केत खेलार हारि तेन्ह पासा। हाथ झारि होइ चलहिं निरासा।

चेटक लाइ हरहिं मन जौ लहि गथ है फेंट।
साँठि नाठि उठि भए बटाऊ ना पहिचान न भेंट॥

लै लै बैठ फूल फुलहारी। पान अपूरब धरे सँवारी।
सोंधा सबै बैठु लै गाँधी। बहुल कपूर खिरौरी बाँधी।
कतहूँ पंडित पढ़हिं पुरानू। धरम पंथ कर करहिं बखानू।
कतहूँ कथा कहै कछु कोई। कतहूँ नाच कोड भलि होई।
कतहुँ छरहटा पेखन लावा। कतहूँ पाखँड काठ नचावा।
कतहुँ नाद सबद होइ भला। कतहूँ नाटक चेटक कला।
कतहुँ काहु ठग विद्या लाई। कतहुँ लेहिं मानुस बौराई।

चरपट चोर धूत गँठिछोरा मिले रहहि तेहि नाँच ।
जो तेहि नाँच सजग भा अगुमन गथ ताकर पै बाँच ॥

पुनि आइअ सिंघल गढ़ पासा । का बरनौं जस लाग अकासा ।
तरहिं कुरुँम बासुकि कै पीठी । ऊपर इन्द्रलोक पर डीठी ।
परा खोह चहुँ दिसि तस बाँका । काँपै जाँघि जाइ नहिं झाँका ।
अगम असूझ देखि डर खाई । परै सो सप्त पतारन्ह जाई ।
नव पँवरीं बाँकी नव खंडा । नवहुँ जो चढ़ै जाइ ब्रह्मंडा ।
कंचन कोट जरे नग सीसा । नखतन्ह भरा बीजु अस दीसा ।
लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका । निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका ।

हिअ न समाइ दिस्टि नहिं पहुँचै जानहु ठाढ़ सुमेरु ।
कहँ लगि कहौं उँचाई ताकरि कहँ लगि बरनौं फेरु ॥

निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू । नाहि त बाजि होइ रथ चूरू ।
पँवरी नवौ बज्र कइ साजी । सहस सहस तहँ बैठे पाजी ।
फिरहिं पाँच कोटवार सो भँवरी । काँपै पाँव चँपत वै पँवरी ।
पँवरिहि पँवरि सिंघ गढ़ि काढ़े । डरपहिं राय देखि तेन्ह ठाढ़े ।
बहु बनान वै नाहर गढ़े । जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढ़े ।
टारहिं पूँछि पसारहिं जीहा । कुंजर डरहिं कि गुजरिं लीहा ।
कनक सिला गढ़ि सीढ़ी लाईं । जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं ।

नवौ खंड नव पँवरीं औ तहँ बज्र केवार ।
चारि बसेरें सों चढ़ै सत सौं चढ़ै जो पार ॥

नवौं पँवरि पर दसौं दुआरू । तेहि पर बाज राज घरिआरू ।
घरी सो बैठि गनै घरिआरी । पहर पहर सो आपनि बारी ।
जबहिं घरी पूजी वह मारा । घरी घरी घरिआर पुकारा ।
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निचिंत माँटी कर भाँड़ा ।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े होइ काँचे । आएहु फिरै न थिर होइ बाँचे ।
घरी जो भरै घटै तुम आऊ । का निचिंत सोवहि रे बटाऊ ।
पहरहि पहर गजर नित होई । हिआ निसोगा जाग न सोई ।

मुहमद जीवन जल भरन रहँट घरी की रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति ॥

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पानी भरहिं जैसे दुरुपदी।
औरु कुंड एक मोतीचूरू। पानी अंब्रित कीच कपूरू।
ओहि क पानि राजा पै पिआ। बिरिध होइ नहिं जौलहि जिआ।
कंचन बिरिख एक तेहि पासा। जस कलपतरु इंद्र कबिलासा।
मूल पतार सरग ओहि साखा। अमर बेलि को पाव को चाखा।
चाँद पात औ फूल तराईं। होइ उजिआर नगर जहँ ताईं।
वह फर पावै तपि कै कोई। बिरिध खाइ नव जोबन होई।

राजा भए भिखारी सुनि वह अंब्रित भोग।
जेइँ पावा सो अमर भा ना किछु ब्याधि न रोग ॥

गढ़ पर बसहिं चारि गढ़पती। असुपति गजपति औरु नरपती।
सब क धौरहर सोने साजा। औ अपने अपने घर राजा।
रूपवंत धनवंत सभागे। परस पखान पँवरि तेन्ह लागे।
भोग बेरास सदा सब माना। दुख चिंता कोइ जरम न जाना।
मँदिर मँदिर सबकें चौपारी। बैठि कुँवर सब खेलहिं सारी।
पाँसा ढरै खेल भलि होई। खरग दान सरि पूज न कोई।
भाँट बरनि कहि कीरति भली। पावहिं हस्ति घोर सिंघली।

मँदिर मँदिर फुलवारी चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बसंत भा छहु रितु बारहु मास ॥

पुनि चलि देखा राज दुआरू। महि धूँधिअ पाइअ नहिं बारू।
हस्ति सिंघली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।
कवनौ सेत पीत रतनारे। कवनौ हरे धूम औ कारे।
बरनहि बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठ जनु ठेगा।
सिंघल के बरने सिंघली। एकेक चाहि सो एकेक बली।
गिरि पहार पब्बै गहि पेलहिं। बिरिख उचारि झारि मुख मेलहिं।
मात निमत सब गरजहिं बाँधे। निसि दिन रहहिं महाउत काँधे।

धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हालि।
कुरुँम टूट फन फाटे तिन्ह हस्तिन्ह की चालि।

पुनि बाँधे रजबार तुरंगा। का बरनौं जस उन्हके रंगा।
लील समुंद चाल जग जानै। हाँसुल भँवर किआह बखानै।
हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गुर्र कोकाह बलाह सो पाँती।
तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। तरपहिं तबहि तायन बिनु हाँके।
मन तें अगुमन डोलहिं बागा। देत उसास गगन सिर लागा।
पावहिं साँस समुँद पर धावहिं। बूढ़ न पाँव पार होइ आवहिं।
थिर न रहहिं रिस लोह चबाहीं। भाँजहि पूँछि सीस उपराहीं।

अस तुखार सब देखे जनु मन के रथवाह।
नैन पलक पहुँचावहिं जहँ पहुँचा कोउ चाह॥

राज सभा पुनि दीख बईठी। इंद्रसभा जनु परि गइ डीठी।
धनि राजा असि सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।
मुकुट बंध सब बैठे राजा। दर निसान नित जेन्ह के बाजा।
रूपवंत मनि दिपै लिलाटा। माँथें छात बैठ सब पाटा।
मानहु कँवर सरोवर फूले। सभा क रूप देखि मन भूले।
पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगँध बास भरि रही अपूरी।
माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंध्रपसेनि बैठ जहँ राजा।

छत्र गगन लहि ताकर सूर तवै जसु आपु।
सभा कँवल जिमि बिगसै माँथे बड़ परतापु॥

साजा राजमँदिर कविलासू। सोने कर सब पुहुमि अकासू।
सात खंड धौराहर साजा। उहै सँवारि सकै अस राजा।
हीरा ईंट कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा।
जाँवत सबै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उबेहे।
भा कटाव सब अनबन भाँती। चित्र होत गा पाँतिहि पाँती।
लागे खँभ मनि मानिक जरे। जनहु दिया दिन आछत बरे।
देखि धौरहर कर उँजियारा। छपि गे चाँद सूर औ तारा।

सुनै सात बैकुंठ जस तस साजे खँड सात ।
बेहर बेहर भाउ तेन्ह खँड खँड ऊपर जात ॥

बरनौं राज मँदिर रनिवासू । अछरिन्ह भरा जानु कबिलासू ।
सोरह सहस पदुमिनी रानी । एक एक तें रूप बखानी ।
अति सुरूप औ अति सुकुवारा । पान फूल के रहहिं अधारा ।
तिन्ह ऊपर चंपावति रानी । महा सुरूप पाट परधानी ।
पाट बैसि रह किए सिंगारू । सब रानी ओहि करहिं जोहारू ।
निति नव रंग सुरंगम सोई । प्रथमैं बैस न सरवरि कोई ।
सकल दीप महँ चुनि चुनि आनी । तेन्ह महँ दीपक बारह बानी ।

कुअँरि बतीसौ लक्खनी अस सब माँह अनूप ।
जाँवत सिंघल दीपइ सबै बखानइ रूप ॥

मानसरोदक खंड

एक देवस कौनिउं तिथि आई । मानसरोदक चली अन्हाई ।
पदुमावति सब सखीं बोलाईं । जनु फुलवारि सबै चलि आईं ।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली । कोइ सुकेत करना रस बेली ।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती । कोइ बकौरि बकचुन बिहँसाती ।
कोइ सु बोलसरि पुहुपावती । कोइ जाही जूही सेवती ।
कोइ सोनजरद जेउँ केसरि । कोई सिंगारहार नागेसरि ।
कोइ कूजा सदबरग चँबेली । कोइ कदम सुरस रस बेली ।

चलीं सबै मालति संग फूले कँवल कमोद ।
बेधि रहे गन गंध्रप बास परिमलामोद ॥

खेलत मानसरोवर गईं । जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं ।
देखि सरोवर रहसहिं केली । पदुमावति सौं कहहिं सहेली ।
ऐ रानी मन देखु बिचारी । एहि नैहर रहना दिन चारी ।
जौ लहि अहै पिता कर राजू । खेलि लेहु जौं खेलहु आजू ।
पुनि सासुर हम गौनब काली । कित हम कित एहु सरवर पाली ।

कित आवन पुनि अपने हाथाँ। कित मिलिकै खेलब एक साथाँ।
सासु नँनद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न आवै देहीं।

पिउ पिआर सब ऊपर सा पुनि करै दहुँ काह।
कहुँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जरम निबाहु।

सरवर तीर पदुमिनीं आई। खोंपा छोरि केस मोकराईं।
ससि मुख अंग मलैगिरि रानी। नागन्ह झाँपि लीन्ह अरधानी।
ओनए मेघ परी जग छाहाँ। ससि की सरन लीन्ह जनु राहाँ।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा। लै निसि नखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा। मेघ घटा महँ चाँद देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाखीं। भौंहैं धनुक गगन लै राखीं।
नैन खँजन दुइ केलि करेहीं। कुच नारँग मधुकर रस लेहीं।

सरवर रूप बिमोहा हिएँ हिलोर करेइ।
पाय छुअइ मकु पावौं तेहि मिसु लहरै देइ॥

धरीं तीर सब छीपक सारीं। सरवर महँ पैठी सब बारी।
पाएँ नीर जानु सब बेलीं। हुलसीं करहिं काम कै केलीं।
नवल बसंत सँवारहि करीं। होइ परगट चाहहिं सर भरीं।
करिल केस बिसहर बिसभरे। लहरैं लेहिं कँवल मुख धरे।
उठे कोंप जनु दारिवँ दाखा। भई ओनंत प्रेम कै साखा।
सरवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लिए तारा।
धनि सो नीर ससि तरईं उईं। अब कत दिस्टि कँवल औ कुईं।

चकईं बिछुरि पुकारै कहाँ मिलहु हो नाँह।
एक चाँद निसि सरग पर दिन दोसर जल माँह॥

लागीं केलि करै मँझ नीरा। हंस लजाइ बैठ होइ तीरा।
पदुमावति कौतुक करि राखी। तुम्ह ससि होहु तराइन साखी।
बादि मेलि कै खेल पसारा। हारु देइ जौं खेलत हारा।
सँवरिहि साँवरि गोरिहि गोरी। आपनि-आपनि लीन्हि सो जोरी।
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारु न होइ पराएँ हाथा।

आजुहि खेल बहुरि कित होई। खेल गएँ कत खेलै कोई।
धनि सो खेल खेलहि रस पेमा। रौताई औ कूसल खेमा।
मुहमद बारि परेम की जेउँ भावै तेउँ खेलु।
तीलहि फूलहि संग जेउँ होइ फुलाएल तेल॥

सखी एक तेइँ खेल न जाना। चित अचेत भइ हार गँवाना।
कँवल डार गहि भै बेकरारा। कासों पुकारौं आपन हारा।
कत खेलै आइउँ एहि साथाँ। हार गँवाइ चलिउँ सैं हाथाँ।
घर पैठत पूँछब एहि हारू। कौनु उतर पाउबि पैसारू।
नैन सीप आंसुन्ह तस भरे। जानहु मोति गिरहिं सब ढरे।
सखिन्ह कहा भोरी कोकिला। कौनु पानि जेहि पौनु न मिला।
हारु गँवाइ सो ऐसेहिं रोवा। हेरि हेराइ लेहु जौं खोवा।
लागीं सब मिलि हेरै बूड़ि बूड़ि एक साथ।
कोई उठी मोति लै घोंघा काहू हाथ॥

कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमर तेन्ह पायन्ह परसें। पावा रूप रूप कै दरसें।
मलै समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।
न जनौं कौनु पौन लै आवा। पुन्नि दसा भै पाप गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।
बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा। भै तेहिं रूप जहाँ जो देखा।
पाए रूप-रूप जस चहे। ससि मुख सब दरपन होइ रहे।
नैन जो देखे कँवल भए निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखे हंस भए दसन जोति नग हीर॥

नखशिख खंड

का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहि क सिंगार ओहि पै छाजा।
प्रथम ही सीस कस्तुरी केसा। बलि बासुकि को औरु नरेसा।

भंवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी।
बेनी छोरि झारु जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे।
बेधे जानु मलैगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा।
घुँघुँरवारि अलकैं बिख भरीं। सिंकरीं पेम चहहिं गियँ परीं।

अस फँदवारे केस वै राजा परा सीस गियँ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्हि के बांद॥

बरनौं माँग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा तेहि नाहीं।
बिनु सेंदुर अस जानहुँ दिया। उजिअर पंथ रैनि मह किया।
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी।
सुरुज किरिनि जस गगन बिसेखी। जमुना माँझ सरसुती देखी।
खाँडे धार रुहिर जनु भरा। करवत लै बेनी पर धरा।
तेहि पर पूरि धरे जौं मोंती। जमुना माँझ गाँग कै सोती।
करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लै देइ सेंदूरू।

कनक आदस बानि होइ चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत औ तरई उअै गगन निसि गाँग॥

कहौं लिलाट दुइजि कै जोती। दुइजिहि जोति कहाँ जग ओती।
सहस करां जो सुरुज दिपाई। देखि लिलाट सोउ छपि जाई।
का सरबरि तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी वह निकलंकू।
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु सदा परगासा।
तेहि लिलाट पर तिलक बईठा। दुइजि पाट जानहुँ ध्रुव डीठा।
कनक पाट जनु बैठेउ राजा। सबै सिंगार अत्र लै साजा।
ओहि आगें थिर रहै न कोऊ। दहुँ काकह अस जुरा सँजोऊ।

खरग धनुक औ चक्र बान दुइ जग मारन तिन्ह नाउँ।
सुनि कै परा मुरुछि कै राजा मो कहँ भए एक ठाउँ॥

भौंहैं स्याम धनुकु जनु ताना। जासौं हेर मार बिख बाना।
उहै धनुक उन्ह भौहन्ह चढ़ा। केइ हतियार काल अस गढ़ा।

उहै धनुक किरसुन पहँ अहा । उहै धनुक राघौ कर गहा ।
उहै धनुक रावन संघारा । उहै धनुक कंसासुर मारा ।
उहै धनुक बेधा हुत राहू । मारा ओहीं सहस्सर बाहू ।
उहै धनुक मैं ओपहँ चीन्हा । धानुक आपु बेझ जग कीन्हा ।
उन्ह भौंहन्हि सरि केउ न जीना । आछरि छपीं छपीं गोपीना ।

भौंह धनुक धनि धानुक दोसर सरि न कराइ ।
गगन धनुक जो ऊगवै लाजन्ह सो छपि जाइ ॥

नैन बाँक सरि पूज न कोऊ । मान समुंद अस उलथहिं दोऊ ।
राते कवल करहिं अलि भवाँ । घूमहिं माँति चहहिं उपसवाँ ।
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा । चाहहिं उलथि गगन कहँ लागा ।
पवन झकोरहिं देहिं हलोरा । सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा ।
जग डोलै डोलत नैनाहाँ । उलटि अडार चाह पल माहाँ ।
जबहिं फिराव गँगन गहि बोरा । अस वै भवर चक्र के जोरा ।
समुद हिंडोर करहिं जनु झूले । खंजन लुरहिं मिरिग जनु भूले ।

सुभर समुँद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग ।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भवर तेन्ह संग ॥

बरुनी का बरनौं इमि बनी । साधे बान जानु दुइ अनी ।
जुरीं राम रावण कै सेना । बीच समुंद भए दुइ नैना ।
बारहिं पार बनावरि साधी । जासौं हेर लाग बिख बांधी ।
उन्ह बानन्ह अस को को न मारा । बेधि रहा सगरौं संसारा ।
गँगन नखत जस जाहिं न गने । हैं सब बान ओहि के हने ।
धरती बान बेधि सब राखी । साखा ठाढ़ि देहिं सब साखी ।
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े । सोतहि सोत बेधि तन काढ़े ।

बरुनि बान सब ओपहँ बेधे रन बन ढंख ।
सउजन्ह तन सब रोवाँ पंखिन्ह तन सब पंख ॥

नासिक खरग देउँ कोहि जोगू । खरग खीन ओहि बदन सँजोगू ।
नासिक देखि लजानेउ सूआ । सूक आइ बेसरि होइ ऊआ ।

सुआ सो पिअर हिरामनि लाजा । औरु भाउ का बरनौं राजा ।
सुआ सो नाँक कठोर पँवारी । वह कौंवलि तिल पुहुप सँवारी ।
पुहुप सुगंध करहिं सब आसा । मकु हिरगाइ लेइ हम बासा ।
अधर दसन पर नासिक सोभा । दारिवँ देखि सुआ मन लोभा ।
खंजन दुहुँ दिसि केलि कराहीं । दहुँ वह रस को पाव को नाहीं ।

देखि अमिअ रस अधरन्हि भएउ नासिका कीर ।
पवन बास पहुँचावै अस रम छाँड़ न तीर ॥

अधर सुरंग अमिअ रस भरे । बिंब सुरग लाजि बन फरे ।
फूल दुपहरी मानहुँ राता । फूल झरहिं जब जब कह बाता ।
हीरा गहै सो बिद्रुम धारा । बिहँसत जगत होइ उजिआरा ।
भए मँजीठ पानन्ह रंग लागें । कुसुम रंग थिर रहा न आगें ।
अस कै अधर अमिअ भरि राखे । अबहिं अछत न काहूँ चाखे ।
मुख तँबोल रंग धारहिं रसा । केहि मुख जोग सो अंब्रित बसा ।
राता जगत देखि रँग राते । रुहिर भरे आछहिं बिहँसाते ।

अमिअ अधर अस राजा सब जग आस करेइ ।
केहि कहँ कँवल बिगासा को मधुकर रस लेइ ॥

दसन चौक बैठे जनु हीरा । औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा ।
जनु भादौं निसि दामिनि दीसी । चमकि उठी तसि भीनि बतीसी ।
वह जो जोति हीरा उपराहीं । हीरा दीपहिं सो तेहि परिछाहीं ।
जेहि दिन दसन जोति निरमई । बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई ।
रवि ससि नखत दीन्हि ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी । तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ।
दामिनि दमकि न सरवरि पूजा । पुनि वह जोति औरु को दूजा ।

बिहँसत हँसत दसन तस चमके पाहन उठे झरक्कि ।
दारिवँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि ॥

रसना कहौं जो कह रस बाता । अंब्रित बचन सुनत मन राता ।
हरै सो सुर चात्रिक कोकिला । बीन बंसि वह बैनु न मिला ।

चात्रिक कोकिल रहहिं जो नाहीं। सुनि वह बैन लाजि छपि जाहीं।
भरे पेम मधु बोलै बोला। सुनै सो माति घुमि कै डोला।
चतुर बेद मति सब ओहि पाहां। रिग जजु साम अथर्बन माहां।
एक एक बोल अरथ चौगुना। इंद्र मोह बरम्हा सिर धुना।
अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पंडित नहिं जीता।

भानसती ब्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान।
बेद भेद सें बात कह तस जनु लागहिं बान॥

पुनि बरनौं का सुरँग कपोला। एक नारँग के दुऔ अमोला।
पुहुप पंक रस अंब्रित साँधे। केइँ ये सुरंग खिरौरा बाँधे।
तेहि कपोल बाएँ तिल परा। जेइँ तिल देख सो तिल तिल जरा।
जनु घुंघुची वह तिल करमुहां। बिरह बान साँधा सामुहां।
अगिनि बान तिल जानहुँ सूझा। एक कटाख लाख दुइ जूझा।
सो तिल काल मेंटि नहिं गएऊ। अब वह गाल काल जग भएऊ।
देखत नैन परी परिछाहीं। तेहिं तें रात स्याम उपराहीं।

सो तिल देखि कपोल पर गँगन रहा धुव गाड़ि।
खिनहि उठै खिन बूड़ै डोलै नहिं तिल छाँड़ि॥

स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे। कुंडल कनक रचे उँजिआरे।
मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनु कौंधा लौकहिं दुहुँ कोने।
दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाहीं। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाहीं।
तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे। दुइ धुव दुऔ खूँट बैसारे।
पहिरे खुंभी सिंघल दीपी। जानहुँ भरी कचपची सीपी।
खिन-खिन जबहिं चीर सिर गहा। काँपत बीजु दुहूँ दिसि रहा।
डरपहिं देव लोक सिंघला। परै न बीजु टूटि एहि कला।

करहिं नखत सब सेवा स्रवन दिपहिं अस दोउ।
चाँद सुरुज अस गहने औरु जगत का कोउ॥

बरनौं गीवँ कूँज कै रीसी। कंज नार जनु लागेउ सीसी।
कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी। हरी पुछारि ठगी जनु ठाढ़ी।

जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा। तेहि तें अधिक भाउ गिउ बाढ़ा।
चाक चढ़ाइ साँच जनु कीन्हा। बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा।
गिउ मँजूर तँवचुर जो हारा। वहै पुकारहिं साँझ सँकारा।
पुनि तिहि ठाउँ परी तिरि रेखा। घूँटत पीक लीक सब देखा।
धनि सो गीव दीन्हेउ विधि भाऊ। दहुँ कासौं लै करै मेराऊ।

कंठ सिरी मुकुताहल माला सोहै अभरन गीवँ।
को होइ हार कंठ ओहि लागै केइँ तपु साधा जीवँ॥

कनक दंड दुइ भुजा कलाई। जानहुँ फेरि कुँदेरैं भाईं।
कदलि खाँभ की जानहुँ जोरी। औ राती ओहि कँवल हथोरी।
जानहुँ रकत हथोरीं बूड़ीं। रवि परभात तात वह जूड़ीं।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथाँ। रकत भरी अँगुरी तेहिं साथाँ।
औ पहिरें नग जरी अँगूठी। जग बिनु जीव-जीव ओहि मूठी।
बाँहू कंगन टाड़ सलोनी। डोलति बाँह भाउ गति लोनी।
जानहुँ गति बेड़िनि देखराई। बाह डोलाइ जीउ लै जाई।

भुज उपमा पँवनारि न पूजी खीन भई तेहि चिंत।
ठाँवहिं ठाँव बेह भे हिरदैं ऊभि साँस लेइ निंत॥

हिया थार कुच कंचन लाडू। कनक कचोर उठे करि चाडू।
कुंदन बेल साजि जनु कूँदे। अंब्रित भरे रतन दुइ मूँदे।
बेधे भँवर कंट केतुकी। चाहहिं बेध कीन्ह कँचुकी।
जोबन बान लेहिं नहिं बागा। चाहहिं हुलसि हिएँ हठि लागा।
अगिनि बान दुइ जानहु साँधे। जग बेधिहिं जौं होहिं न बाँधे।
उतग जँभीर होइ रखवारी। छुइ को सकै राजा कै बारी।
दारिवँ दाख फरे अनचाखे। अस नारग दहुँ का कहँ राखे।

राजा बहुत मुए तपि लाइ-लाइ भुइँ माथ।
काहूँ छुऐ न पारे गए मरोरत हाथ॥

पेट पत्र चँदन जनु लावा। कुंकुह केसरि बरन सोहावा।
खीर अहार न कर सुकुवाँरा। पान फूल के रहै अधारा।

स्याम भुअंगिनि रोमावली । नाभी निकसि कँवल कहँ चली ।
आइ दुहूँ नारंग बिच भई । देखि मँजूर ठमकि रहि गई ।
जनहुँ चढ़ी भँवरन्हि कै पाँती । चंदन खांभ वास कै माँती ।
कै कालिंद्री बिरह सताई । चलि पयाग अरइल बिच आई ।
नाभी कुंडर बानारसी । सौंहँ को होइ मीचु तहँ बसी ।

सिर करवत तन करसी लै-लै बहुत सीझे तेहि आस ।
बहुत धूम घूंटत मैं देखे उतरु न देइ निरास ॥

बैरिनि पीठि लीन्ह ओहँ पाछें । जनु फिरि चली अपछरा काछें ।
मलयागिरि कै पीठि सँवारी । बेनी नाग चढ़ा जनु कारी ।
लहरैं देत पीठि जनु चढ़ा । चीर ओढ़ावा कंचुकि मढ़ा ।
दहुँ का कहँ असि बेनी कीन्ही । चंदन बास भुअंगन्ह दीन्ही ।
किस्न के करा चढ़ा ओहि माथें । तब सो छूट अब छूट न नाथें ।
कारी कँवल गहे मुख, देखा । ससि पाछें जस राहु बिसेखा ।
को देखै पावै वह नागू । सो देखै माथें मनि भागू ।

पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ ।
छात सिंघासन राज धन ता कहँ होइ जो डीठ ॥

लंक पुहुमि अस आहि न काहूँ । केहरि कहौं न ओहि सरि ताहूँ ।
बसा लंक बरनै जग झीनी । तेहि तें अधिक लंक वह खीनी ।
परिहँस पिअर भए तेहिं बसा । लीन्हे लंक लोगन्ह कहँ डँसा ।
जानहुँ नलिनि खंड दुइ भई । दुहुँ बिच लंक तार रहि गई ।
हिय सों मोरि चलै वह तागा । पैग देत कत सहि सक लागा ।
छुद्र घंटि मोहहिं नर राजा । इंद्र अखार आइ जनु साजा ।
मानहुँ बीन गहे कामिनी । रागहिं सबै राग रागिनी ।

सिंघ न जीता लंक सर हारि लीन्ह बन बासु ।
तेहिं रिसि रकत पिऔ मनई कर खाइ मारि कै मांसु ॥

नाभी कुंडर मलै समीरू । समुँद भँवर जस भँवै गँभीरू ।
बहुतै भँवर बौंडरा भए । पहुँचि न सके सरग कहँ गए ।

चंदन माँझ कुरंगिनि खोजू। दहुँ को पाव को राजा भोजू।
को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहँ लिखी ऐस को रीझा।
तीवइ कँवल सुगंध सरीरू। समुँद लहरि सोहै तन चीरू।
झूलहिं रतन पाट के झोंपा। साजि मदन दहुँ का कहँ कोपा।
अबहिं सो आहि कवल कै करी। न जनौं कवन भँवर कहँ धरी।

बेधि रहा जग बासना परिमल मेद सुगन्ध।
देहि अरघानि भँवर सब लुबुधे तजहिं न नीवी बंध ॥

बरनौं नितँब लंक के सोभा। औ गज गवन देखि सब लोभा।
जुरे जंघ सोभा अति पाए। केरा खाँभ फेरि जनु लाए।
कँवल चरन अति रात बिसेखे। रहहिं पाट पर पुहुमि न देखे।
देवता हाथ-हाथ पगु लेही। पगु पर जहाँ सीस तहँ देहीं।
माँथें भाग को दहुँ अस पावा। कँवल चरन लै सीस चढ़ावा।
चूरा चाँद सुरुज उजिआरा। पायल बीच करहिं झनकारा।
अनवट बिछिआ नखत तराईं। पहुँचि सकै को पावन्हि ताईं।

बरनि सिंगार न जानेउँ नखसिख जैस अभोग।
तस जग किछौ न पावौं उपमा देउँ ओहि जोग ॥

प्रेम खंड

सुनतहि राजा गा मुरुछाई। जानहुँ लहरि सुरुज कै आई।
पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।
परा सो पेम समुंद अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसँभारा।
बिरह भँवर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई।
खिनहि निसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहि उठै निसँसै बौराई।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहि चेत खिन होइ अचेता।
कठिन मरन तें पेम बेवस्था। ना जिऔं जिवन न दसइँ अवस्था।

जनु लेनिहारन्ह लीन्ह जिउ हरहिं तरासहिं ताहि।
एतना बोल न आव मुख करहि तराहि तराहि ॥

जहँ लगि कुटुंब लोग औ नेगी। राजा राय आए सब बेगी।
जौंवत गुनी गारुरी आए। ओझा बैद सयान बोलाए।
चरचहिं चेष्टा परिखहिं नारी। नियर नाहिं ओषद तेहि बारी।
है राजहिं लछमन कै करा। सकति बान मोहा है परा।
नहिं सो राम हनिवँत बड़ि दूरी। को लै आव सजीवनि मूरी।
बिनौ करहिं जेते गढ़पती। का जिउ कीन्ह कवनि मति मती।
कहहु सो पीर काह बिनु खाँगा। समुँद सुमेरु आव तुम्ह माँगा।

धावन तहाँ पठावहु देहिं लाख दस रोक।
है सो बेलि जेहि बारी आनहि सबै बरोक॥

जौं भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनहुँ सोइ अस जागा।
आवत जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा।
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ।
केइँ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।
सोवत अहा जहाँ सुख साखा। कस न तहाँ सोवत बिधि राखा।
अब जिउ तहाँ इहाँ तन सूना। कब लगि रहै परान बिहूना।
जौं जिउ घटहिं काल के हाथाँ। घटन नीक पै जीउ निसाथाँ।

अहुठ हाथ तन सरवर हिया कँवल तेहि माँह।
नैनन्हि जानहु निअरें कर पहुँचत अवगाह॥

सयन्हि कहा मन समझहु राजा। काल सतैं कै जूझि न छाजा।
तासौं जूझि जात जौं जीता। जात न किरसुन तजि गोपीता।
औ नहिं नेहु काहु सौं कीजै। नाउँ मीठ खाएँ जिउ दीजै।
पहिलेहिं सुक्ख नेहु जब जोरा। पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा।
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू। पहुँचि न जाइ परा तस फेरू।
गंगन दिस्टि सौं जाइ पहूँचा। पेम अदिस्ट गँगन सौं ऊँचा।
धुव तें ऊँच पेम धुव उवा। सिर दै पाउ देइ सो छुवा।

तुम्ह राजा औ सुखिआ करहु राज सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुँचै सहै जो दुक्ख बियोग॥

सुत्रैं कहा मन समुझहु राजा। करत पिरीत कठिन है काजा।
तुम्ह अबहीं जेईं घर पोईं। कँवल न बैठि बैठ हहु कोईं।
जानहि भँवर जो तेहि पँथ लूटे। जीउ दीन्ह श्रौ दिएँ न छूटे।
कठिन आहि सिंघल कर राजू। पाइअ नाहिं राज के साजू।
ओहिं पँथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती तपा संन्यासी।
भोग जोरि पाइत वह भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू।
तुम्ह राजा चाहहु सुख पावा। जोगहिं भोगहि कत बनि आवा।

साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौ लहि साध न तप्प।
सोईं जानहिं बापुरे जो सिर करहिं कलप्प॥

का भा जोग कहानी कथें। निकसै न घिउ बाजु दधि मथे।
जौं लहि आपु हेराइ न कोईं। तौ लहि हेरत पाव न सोईं।
पेम पहार कठिन बिधि गढ़ा। सो पै चढ़ै सीस सों चढ़ा।
पंथ सूरिन्ह कर उठा अँकूरू। चोर चढ़ै कि चढ़ै मंसूरू।
तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरें घटहि माँह दस पंथा।
काम क्रोध तिस्ना मद माया। पाँचौ चोर न छाड़हिं काया।
नव सेंधे ओहि घर मंझिआरा। घर मूसहिं निसि कै उजिआरा।

अबहूँ जागु अयाने होत आव निसु भोर।
पुनि किछु हाथ न लागिहि मूसि जाहिं जब चोर॥

सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार पेम चित लागा।
नैनन्ह ढरहिं मोति श्रौ मूँगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा।
हिएँ की जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधिअर भा बूझा।
उलटि दिस्टि माया सौं रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी।
जौ पै नाहीं अस्थिर दसा। जग उजार का कीजै बसा।
गुरू बिरह चिनगी पै मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला।
अब कै फनिग भृंगि कै करा। भँवर होउँ जेहि कारन जरा।

फूल फूल फिरि पूछौं जौं पहुँचौं ओहि केत।
तन नेवछावर कै मिलौं ज्यौं मधुकर जिउ देत॥

जोगी खंड

तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेंउ बियोगी।
तन बिसँभर मन बाउर रटा। अरुझा पेम परी सिर जटा।
चंद बदन औ चंदन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा।
मेखल सिंगी चक्र धँधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी।
कंथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।
मुंद्रा स्रवन कंठ जपमाला। कर उदपान काँध बघछाला।
पाँवरि पाँव लीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस कै राता।

चला भुगुति माँगै कहँ साजि कया तप जोग।
सिद्ध होउँ पदुमावति पाएँ, हिरदै जेहि क बियोग ॥

गनक कहहिं करु गवन न आजू। दिन लै चलहिं फरै सिधि काजू।
पेम पंथ दिन घरी न देखा। तब देखै जब होइ सरेखा।
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू। कया न रकत न नयनन्हि आँसू।
पँडित भुलान न जानै चालू। जीउ लेत दिन पूँछ न कालू।
सती कि बौरी पूँछै पाँड़े। औ घर पैठि समेटै भाँड़े।
मरि जो चलै गाँग गति लेई। तेहि दिन घरी कहाँ को देई।
मैं घर बार कहाँ कर पावा। घर काया पुनि अंत परावा।

हौं रे पँखेरू पंखी जेहि बन मोर निबाहु।
खेलि चला तेहि बन कहँ तुम्ह आपन घर जाहु ॥

चहुँ दिसि आन साँटिअन्ह फेरी। भै कटकाई राजा केरी।
जोंयत अहै सकल ओरगाना। साँबर लेहु दूरि है जाना।
सिंघल दीप जाइ सब चाहा। मोल न पाउब जहाँ बेसाहा।
सब निबाहहि तहँ आपनि साँठी। साँठी बिना रहब मुख माँटी।
राजा चला साजि कै जोगू। साजहु बेगि चलौ सब लोगू।
गरब जो चढ़े तुरै की पीठी। अब सो तजहु सरग सौं डीठी।
मंत्रा लेहु होहु सँग लागू। गुदरि जाइ सब होइहि आगू।

का निचिंत रे मनुसे आपनि चिंता आछु।
लेहि सजग होइ अगुमन फिरि पछिताहि न पाछु ॥

बिनवै रतनसेनि कै माया। माँथें छत्र पाट निति पाया।
बेरसहु नव लख लच्छि पिआरी। राज छाँड़ि जनि होहु भिखारी।
निति चंदन लागै जेहि देहा। सो तन देखु भरब अब खेहा।
सब दिन रहेउ करत तुम्ह भोगू। सो कैसे साधब तप जोगू।
कैसें धूप सहब बिनु छाहाँ। कैसें नींद परिहि भुइँ माहाँ।
कैसें ओढ़ब काँवरि कंथा। कैसें पाउँ चलब तुम्ह पंथा।
कैसें सहब खिनहि खिन भूखा। कैसें खाएब कुरकुटा रूखा।

राज पाट दर परिगह सब तुम्ह सौं उजिआर।
बैठि भोग रस मानहु कै न चलहु अँधिआर ॥

मोहिं यह लोभ सुनाउ न माया। काकर सुख काकरि यह काया।
जौं निआन तन होइहि छारा। माँटी पोखि मरै को भारा।
का भूलहु एहि चंदन चोवाँ। बैरी जहाँ आँग के रोवाँ।
हाथ पाउ सरवन औ आँखी। ये सब ही भरिहैं पुनि साखी।
सोत-सोत बोलिहिं तन दोखू। कहु कैउँ होइहि गति मोखू।
जौं भल होत राज औ भोगू। गोपिचंद कस साधत जोगू।
ओनहूँ सिस्टि जौं देख परेवा। तजा राज कजरी बन सेवा।

देखु अंत अस होइहि गुरू दीन्ह उपदेस।
सिंघल दीप जाब मैं माता मोर अदेस ॥

रोवै नागमती रनिवासू। केइँ तुम्ह कंत दीन्ह बन बासू।
अब को हमहिं करिहि भोगिनी। हमहूँ साथ होइब जोगिनी।
कै हम लावहु अपने साथाँ। कै अब मारि चलहु सैं हाथाँ।
तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहवाँ राम तहाँ सँग सीता।
जौ लहि जिउ सँग छाड़ न काया। करिहौं सेव पखरिहौं पाया।
भलेहिं पदुमिनी रूप अनूपा। हमतें कोइ न आगरि रूपा।
भवै भलेहिं पुरुषन्ह कै डीठी। जिन्ह जाना तिन्ह दीन्हि न पीठी।

देहिं असीस सबै मिलि तुम्ह माथें निति छात।
राज करहु गढ़ चितउर राखहु पिय अहिवात॥

तुम्ह तिरिआ मति हीन तुम्हारी। मूरुख सो जो मतै घर नारी॥
राघौ जों सीता सँग लाई। रावन हरी कवन सिधि पाई॥
यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानहु नहिं देखा॥
राजा भरथरि सुनि रे अयानी। जेहि के घर सोरह सै रानी॥
कुचन्ह लिहें तरवा सहराईं। भा जोगी कोइ साथ न लाईं॥
जोगिहिं काह भोग सों काजू। चहै न मेहरी चहै न राजू॥
जूड़ कुरकुटा पै भखु चाहा। जोगिहि तात भात दहु काहा॥

कहा न मानै राजा तजी सबाईं भीर।
चला छाँड़ि सब रोवत फिरि कै देइ न धीर॥

रोवै मता न बहुरै नारा। रतन चला जग भा अँधियारा॥
बार मोर रजियाउर रता। सो लै चला सुआ परवता॥
रोवहिं रानी तजहिं पराना। फोरहिं बलय करहिं खरिहाना॥
चूरहिं गिव अभरन औ हारू। अब काकहँ हम करब सिंगारू॥
जाकहँ कहहिं रहसि कै पीऊ। सोइ चला काकर यह जीऊ॥
मरै चहहिं पै मरै न पावहिं। उठै आग सब लोग बुझावहिं॥
घरी एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पाछें बीता होइ रोरा॥

टूटे मनै नव मोती फूटे मनै दस काँच।
लीन्ह समेटि ओबरिन होइगा दुख कर नाँच॥

निकसा राजा सिंगी पूरी। छाँड़ि नगर मेला होइ दूरी॥
राय राने सब भए बियोगी। सोरह सहस कुँवर भए जोगी॥
माया मोह हरा सै हाथा। देखेन्हि बूझि निआन न साथा॥
छाड़ेन्हि लोग कुटुँब घर सोऊ। भे निनार दुख सुख तजि दोऊ॥
सँवरै राजा सोइ अकेला। जेहि रे पंथ खेलै होइ चेला॥
नगर नगर औ गावँहिं गाऊँ। चला छाँड़ि सब ठावँहि ठाऊँ॥
काकर घर काकर मढ़ माया। ताकर सब जाकर जिउ काया॥

चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेषु ।
कोस बीस चारिहुँ दिसि जानहुँ फूला टेसु ॥

आगें सगुन सगुनिआँ ताका । दहिउ मच्छ रूपे कर टाका ।
भरें कलस तरुनी चलि आई । दहिउ लेहु ग्वालिनि गोहराई ।
मालिनि आउ मौर लै गाँथें । खंजन बैठ नाग के माँथें ।
दहिनें मिरिग आइ गौ धाई । प्रतीहार बोला खर बाईं ।
बिरख सँवरिआ दाहिन बोला । बाएँ दिसि गादुर नहिं डोला ।
बाएँ अकासी धोबिनि आई । लोवा दरसन आइ देखाई ।
बाएँ कुरारी दाहिन कूचा । पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा ।

जाकहँ होहि सगुन अस औ गवनै जेहि आस ।
अस्टौ महासिद्धि तेहि जस कबि कहा बिआस ॥

भएउ पयान चला पुनि राजा । सिंघनाद जोगिन्ह कर बाजा ।
कहेन्हि आजु कछु थोर पयाना । काल्हि पयान दूरि है जाना ।
ओहिं मेलान जब पहुँचिहि कोई । तब हम कहब पुरुष भल सोई ।
एहि आगे परबत की पाटी । बिषम पहार अगम सुठि घाटी ।
बिच बिच खोह नदी औ नारा । ठाँवहिं ठाँव उठहिं बटपारा ।
हनिवँत केर सुनब पुनि हाँका । दहुँ को पार होइ को थाका ।
अस मन जानि सँभारहु आगू । पगुआ केर होहु पछलागू ।

करहिं पयान भोर उठि नितहि कोस दस जाहिं ।
पंथी पंथाँ जे चलहिं ते का रहन ओनाहिं ॥

करहु दिस्टि थिर होहु बटाऊ । आगू देखि धरहु भुइँ पाऊ ।
जौं रे ऊबट होइ परे भुलाने । गए मारे पँथ चलै न जाने ।
पावन्ह पहिरि लेहु सब पँवरी । काँट न चुभै न गड़ै अँकरवरी ।
परे आइ अब बनखँड माहाँ । डंडक आरन बीझ बनाहाँ ।
सघन ढाँख बन चहुँ दिसि फूला । बहु दुख मिलिहि इहाँ कर भूला ।
झाँखर जहाँ सो छाड़हु पंथा । हिलगि मकोइ न फारहु कंथा ।
दहिने बिदर चँदेरी बाएँ । दहुँ कहँ होब बाट दुहुँ ठाएँ ।

एक बाट गौ सिंघल दोसर लंक समीप।
इहिं आगे पँथ दोऊ दहूँ गवनब कोहि दीप॥

ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पंथ जेहँ देखा।
सो का उड़ै न जेहि तन पाँखू। लै सो परासहिं बूड़े साखू।
जस अंधा अंधे कर संगी। पंथ न पाव होइ सहलंगी।
सुनु मति काज चहसि जौं साजा। बीजानगर बिजैगिरि राजा।
पूँछु न जहाँ कुंड औ गोला। तजु बाएँ अँधियार खटोला।
दक्खिन दहिने रहै तिलंगा। उत्तर माँझ गढ़ा खटंगा।
माँझ रतनपुर सौंह दुआरा। झारखंड दै बाउँ पहारा।

आगें पाउँ ओड़ैसा बाएँ देहु सो बाट।
दहिनावर्त लाइकै उतरु समुंद्र के घाट॥

होत पयान जाइ दिन केरा। मिरगारन महँ भएउ बसेरा।
कुस साँथरि भै सौर सुपेती। करवट आइ बनी भुइँ सेती।
कया मलै तेहि भसम मलीजा। चलि दस कोस ओस निति भीजा।
ठाँवहिं ठाँव सोवहिं सब चेला। राजा जागै आपु अकेला।
जेहि कें हिएँ पेम रँग जामा। का तेहि भूख नींद बिसरामा।
बन अँधिआर रैनि अँधियारी। भादौं बिरह भएउ अति भारी।
किंगरी हाथ गहें बैरागी। पाँच तंतु धुनि उठै लागी।

नैन लागु तेहि मारग पदुमावति जेहि दीप।
जैस सेवाती सेवहिं बन चातक जल सीप॥

बोहित खंड

सत न डोल देखा गजपती। राजा दत्त सत्त दुहूँ सती।
आपन नाहिं कया पै कंथा। जीउ दीन्ह अगुमन तेहि पंथा।
निस्चैं चला भरम डर खोई। साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई।
निस्चैं चला छाड़ि कै राजू। बोहित दीन्ह दीन्ह नै साजू।

चढ़े बेगि और बोहित पेले। धनि ओइ पुरुष पेम पँथ खेले।
तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासू। जहाँ न मीचु सदा सुख बासू।
पेम पंथ जौं पहुँचै पाराँ। बहुरि न आइ मिलै एहि छाराँ।

एहि जीवन कै आस का जस सपना तिल आधु।
मुहमद जिअतहि जे मरहिं तेइ पुरुष कहु साधु॥

जस रथ रेंगि चलै गज ठाटी। बोहित चले समुँद गा पाटी।
धावहिं बोहित मन उपराहीं। सहस कोस एक पल महँ जाहीं।
समुँद अपार सरग जनु लागा। सरग न घालि गनै बैरागा।
ततखन चाल्हा एक देखावा। जनु धौलागिरि परबत आवा।
उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइँ बाजी।
राजा सेंति कुँवर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुँद महँ रहहीं।
तेहि रे पंथ हम चाहहिं गवना। होहु सँजूत बहुरि नहिं अवना।

गुरु हमार तुम्ह राजा हम चेला औ नाथ।
जहाँ पाँव गुरु राखै चेला राखै माँथ॥

केवट हँसे सो सुनत गवेंजा। समुँद न जान कुँआ कर मेंजा।
यह तौ चाल्ह न लागै कोहू। काह कहौ जौ देखहु रोहू।
अबहीं तौ तुम्ह देखे नाहीं। जेहि मुख ऐसे सहस समाहीं।
राज पंखि तिन्ह पर मँडराहीं। सहस कोस जिन्ह की परिछाहीं।
ते ओइ मच्छ ठोर गहि लेहीं। सावक मुख चारा लै देहीं।
गरजै गँगन पंखि जौं बोलहिं। डोलै समुँद डहन जौ खोलहिं।
तहाँ न चाँद न सुरुज असूझा। चढ़ै सो जो अस अगुमन बूझा।

दस महँ एक जाइ कोइ करम धरम सत नेम।
बोहित पार होइ जौं तौ कूसल औ खेम॥

राजैं कहा कीन्ह सो पेमा। जेहिं रे कहाँ कर कूसल खेमा।
तुम्ह खेवहु खेवै जौं पारहु। जैसें आपु तरहु मोहिं तारहु।
मोहिं कूसल कर सोच न ओला। कूसल होत जौं जनम न होला।
धरती सरग जाँत पर दोऊ। जो तेहि बिच जिय राख न कोऊ।

हौं अब कुसल एक पै माँगौं। पेम पंथ सत बाँधि न खाँगौं।
जौं सत हिएँ तो नैनन्ह दिया। समुँद न डरै पैठि मरजिया।
तहँ लगि हेरौं समुँद ढँढोरी। जहँ लगि रतन पदारथ जोरी।

सत पतार खोजि जस काढ़े बेद गरंथ।
सात सरग चढ़ि धावौं पदुमावति जेहि पंथ॥

सात समुद्र खंड

सायर तिरै हिएँ सत पूरा। जौं जिअँ सत कायर पुनि सूरा।
तेहिं सत बोहित पूरि चलाए। जेहिं सत पवन पंख जनु लाए।
सत साथी सत कर संसारू। सत्त खेइ लै लावै पारू।
सतै ताक सब आगू पाछू। जहँ जहँ मगर मच्छ औ काछू।
उठै लहरि नहिं जाइ सँभारा। चढ़ै सरग औ परै पतारा।
डोलहिं बोहित लहरैं खाहीं। खिन तर खिनहिं होहिं उपराहीं।
राजै सो सतु हिरदैं बाँधा। जेहि सत टेकि करै गिरि काँधा।

खार समुँद सो नाँघा आए समुँद जहँ खीर।
मिले समुँद वै सातौं बेहर बेहर नीर॥

खीर समुँद का बरनौं नीरू। सेत सरूप पियत जस खीरू।
उलथहिं मोती मानिक हीरा। दरब देखि मन धरै न धीरा।
मनुआँ चाह दरब औ भोगू। पंथ भुलाइ बिनासै जोगू।
जोगी मनहिं ओहि रिस मारहिं। दरब हाथ कै समुँद पवारहिं।
दरब लेइ सो अस्थिर राजा। जो जोगी तेहि के केहि काजा।
पंथहि पंथ दरब रिपु होई। ठग बटपार चोर सँग सोई।
पंथिक सो जो दरब सौं रूसै। दरब समेटि बहुत अस मूसै।

खीर समुँद सो नाँघा आए समुँद दधि माँह।
जो इहिं नेह कै बाउर ना तिन्ह धूप न छाँह॥

दधि समुँद्र देखत मन डहा। पेम क लुबुध दगध पै सहा।
पेम सों दाधा धनि वह जीऊ। दही माहिं मथि काढ़ै घीऊ।
दधि एक बूँद जाम सब खीरू। काँजी बुँद बिनसि होइ नीरू।
स्वाँस दहेंड़ि मन मँथनी गाढ़ी। हिएँ चोट बिनु फूट न साढ़ी।
जेहि जियँ पेम चँदन तेहि आगी। पेम बिहून फिरहिं डरि भागी।
पेम कि आगि जरै जौं कोई। ताकर दुख न अँबिरथा होई।
जो जानै सत आपुहि जारै। निसत हिएँ सत करै न पारै।

दधि समुँद्र पुनि पार भे पेमहिं कहाँ सँभार।
भावै पानी सिर परौ भावै परौ अँगार॥

आए उदधि समुँद अपाराँ। धरती सरग जरै तेहि झाराँ।
आगि जो उपनी ओहि समुंदा। लंका जरी ओहि एक बुंदा।
बिरह जो उपना वह हुत गाढ़ा। खिन न बुझाइ जगत तस बाढ़ा।
जेहिं सो बिरह तेहिं आगि न डीठी। सौंह जरै फिरि देइ न पीठी।
जग महँ कठिन खरग कै धारा। तेहिं तें अधिक बिरह कै झारा।
अगम पंथ जौं अैस न होई। साध किएँ पावत सब कोई।
तेहिं समुंद महँ राजा परा। चहै जरै पै रोवँ न जरा।

तलफै तेल कराह जिम इमि तलफै तेहि नीर।
वह जो मलैगिरि पेम का बुंद समुंद समीर॥

सुरा समुँद पुनि राजा आवा। महुआ मद छाता देखरावा।
जो तेहि पिअै सो भाँवरि लेई। सीस फिरै पँथ पैगु न देई।
पेम सुरा जेहि के जिय माहाँ। कत बैठै महुआ की छाहाँ।
गुरु के पास दाख रस रसा। बैरि बबूर मारि मन कसा।
बिरहैं दगध कीन्ह तन भाठी। हाड़ जराइ दीन्ह जस काठी।
नैन नीर सो पोती किया। तस मद चुआ बरै जनु दिया।
बिरह सरागन्हि भूँजै माँसू। गिर गिरि परहिं रकत के आँसू।

मुहमद मद जो परेम का किएँ दीप तेहि राख।
सीस न देइ पतंग होइ तब लगि जाइ न चाख॥

पुनि किलकिला समुँद महँ आए। किलकिल उठा देखि डरु खाए।
गा धीरज वह देख हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा।
उठै लहरि परवत की नाईं। होइ फिरै जोजन लख नाईं।
धरती लेत सरग लहि बाढ़ा। सकल समुँद जानहु भा ठाढ़ा।
नीर होइ तर ऊपर सोई। महनारंभ समुँद जस होई।
फिरत समुँद जोजन लख ताका। जैसें फिरै कुम्हार क चाका।
भा परलौ निअरानेउ जबहीं। मरै सो ताकर परलौ तबहीं।

गै अवसान सबहिं कै देखि समुँद कै बाढ़ि।
निअर होत जनु लीलै रहा नैन अस काढ़ि॥

हीरामनि राजा सौं बोला। एही समुँद आइ सत डोला॥
एहि ठाउँ कहँ गुरु सँग कीजै। गुरु सँग होइ पार तौ लीजै।
सिंघल दीप जो नाहिं निबाहू। एही ठावँ साँकर सब काहू।
यह किलकिला समुंद गँभीरू। जेहि गुन होइ सो पावै तीरू।
एही समुँद पंथ मँझधारा। खाँडे कै असि धार निनारा।
तीस सहस्र कोस कै पाटा। अस साँकर चलि सकै न चाँटा।
खाँडै चाहि पैनि पैनाई। बार चाहि पातरि पतराई।

मरन जिअन एही पंथ एही आस निरास।
परा सो गया पतारहि तिरा सो गा कबिलास॥

कोइ बोहित जस पवन उड़ाहीं। कोई चमकि बीजु बर जाहीं।
कोई भल जस धाव तुखारा। कोई जैस बैल गरिआरा।
कोई हरुव जनहु रथ हाँका। कोई गरुव भार तें थाका।
कोई रेंगहिं जानहुँ चाँटी। कोई टूटि होहिं सिर माँटी।
कोई खाहिं पवन कर झोला। कोई करहि पात जेउँ डोला।
कोई परहिं भँवर जल माहाँ। फिरत रहहिं कोइ देहिं न बाहाँ।
राजा कर अगुमन भा खेवा। खेवक आगें सुवा परेवा।

कोइ दिन मिला सबेरे कोइ आवा पछिराति।
जाकर साज जैस हुत सो उतरा तेहि भाँति॥

सतएँ समुँद मानसर आए। सत जो कीन्ह साहस सिध पाए।
देखि मानसर रूप सोहावा। हियँ हुलास पुरइनि होइ छावा।
गा अँधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रबि फूटी।
अस्तु अस्तु साथी सब बोले। अंध जो अहे नैन बिधि खोले।
कँवल बिगस तहँ बिहँसी देही। भँवर दसन होइ होइ रस लेहीं।
हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा। चुनहिं रतन मुकताहल हीरा।
जौं अस साधि आव तप जोगू। पूजै आस मान रस भोगू।
भँवर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवल रस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका भूर काठ तस खाइ॥

पद्मावती-वियोग खंड

पदुमावति तेहि जोग सँजोगाँ। परी पेम बस गहें बियोगाँ।
नींद न परै रैनि जौं आवा। सेज केवाँछ जानु कोइ लावा।
दहै चाँद औ चंदन चीरू। दगध करै तन बिरह गँभीरू।
कलप समान रैनि हठि बाढ़ी। तिल-तिल मरि जुग-जुग बर गाढ़ी।
गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि बाहन तब रहै ओनाई।
पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै। ऐसी बिथा रैनि सब जागै।
कहाँ सो भँवर कँवल रस लेवा। आइ परहु होइ घिरिनि परेवा।
सो धनि बिरह पतंग होइ जरा चाह तेहि दीप।
कंत न आवहु भृंगि होइ को चंदन तन लीप॥

परी बिरह बन जानहुँ घेरी। अगम असूझ जहाँ लगि हेरी।
चतुर दिसा चितवै जनु भूली। सो बन कवन जो मालति फूली।
कँवल भँवर ओही बन पावै। को मिलाइ तन तपनि बुझावै।
अंग अनल अस कँवल सरीरा। हिय भा पियर पेम की पीरा।
चहै दरस रबि कीन्ह बिगासू। भँवर दिस्टि महँ कै सो अकासू।
पूँछै धाइ बारि कहु बाता। तूँ जस कँवल करी रँग राता।
केसरि बरन हिया भा तोरा। मानहुँ मनहिं भएउ कछु फोरा।

पवनु न पावै संचरै भँवर न तहाँ बईठ।
भूलि कुरंगिनि कसि भई मनहुँ सिंघ तुइ डीठ॥

धाइ सिंघ बरु खातेउ मारी। कै तसि रहति अही जसि बारी।
जोबन सुनेउँ कि नवल बसंतू। तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू।
अब जोबन बारी को राखा। कुंजर बिरह बिधंसै साखा।
मैं जाना जोबन रस भोगू। जोबन कठिन सँताप बियोगू।
जोबन गरुअ अपेल पहारू। सहि न जाइ जोबन कर भारू।
जोबन अस मैमंत न कोई। नवै हस्ति जौं आँकुस होई।
जोबन भर भादौं जस गंगा। लहरैं देइ समाइ न अंगा।

परी अथाह धाइ हौं जोबन उदधि गँभीर।
तेहि चितवौं चारिउँ दिसि को गहि लावै तीर॥

पदुमावति तूँ सुबुधि सयानी। तोहि सरि समुँद न पूजै रानी।
नदी समाहिं समुँद महँ आई। समुँद डोलि कहु कहाँ समाई।
अबहीं कँवल करी हिय तोरा। आइहि भँवर जो तो कहँ जोरा।
जोबन तुरै हाथ गहि लीजै। जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजै।
जोबन जौ रे मतँग गज अहै। गहु सिखावन जिमि [illegible] रहै।
अबहिं बारि तूँ पेम न खेला। का जानसि कस होइ दुहेला।
गँगन दिस्टि करु जाइ तराहीं। सुरुज देखि कर आवै नाहीं।

जब लगि पीउ मिलै तोहिं साधु पेम कै पीर।
जैसें सीप सेवाति कहँ तपै समुँद मँझ नीर।

दहै धाइ जोबन औ जीऊ। होइ न बिरह आगिनि महँ घीऊ।
करवत सहौं होत दुइ आधा। सही न जाइ बिरह कै दाधा।
बिरहा सुभर समुँद असँभारा। भँवर मेलि जिउ लहरन्हि मारा।
बिरह नाग होइ सिर चढ़ि डसा। औ होइ अगिनि चँदन महँ बसा।
जोबन पँखी बिरह बिआधू। केहरि भयो कुरंगिनि खाधू।
कनक बान जोबन कत कीन्हा। औ तन कठिन बिरह दुख दीन्हा।
जोबन जलहिं बिरह मसि छुवा। फूलहिं भँवर फरहिं भा सुवा।

जोबन चाँद उवा जस बिरह भएउ सँग राहु।
घटतहि घटत खीन भा कहै न पारौं काहु॥

नन जो चक्र फिरै चहुँ ओराँ। चरचै धाइ समाइ न कोराँ।
कहेसि पेम जौं उपना बारी। बाँधु सत्त मन डोल न भारी।
जेहि जिय महँ सत होइ पहारू। परै पहार न बाँकै बारू।
सती जो जरै पेम पिय लागी। जौं सत हिएँ तौ सीतल आगी।
जोबन चाँद जो चौदसि करा। बिरह कि चिनगि चाँद पुनि जरा।
पवन बंध होइ जोगी जती। काम बंध होइ कामिनि सती।
आउ बसंत फूल फुलवारी। देव बार सब जैहहिं बारी।

पुनि तुम्ह जाहु बसंत लै पूजि मनावहु देव।
जिउ पाइअ जग जनमे पिउ पाइअ कै सेव॥

जब लगि अवधि चाह सो आई। दिन जुग बर बिरहिनि कहँ जाई।
नींद भूख अह निसि गै दोऊ। हिएँ माझ जस कलपै कोऊ।
रोवँहिं रोवँ लागे जनु चाँटे। सोतहि सोत बेधे बिख काँटे।
दगध कराह जरै सब जीऊ। बेगि न आउ मलैगिरि पीऊ।
कवन देव कहँ जाइ परासौं। जेहि सुमेरु हिय लाइ गरासौं।
गुपुत जो फल साँसहि परगटै। अब होइ सुभर चहहिं पुनि घटै।
भए सँजोग जौं रे अस मरना। भोगी भएँ भोग का करना।

जोबन चंचल ढीठ है करै निकाजहिं काज।
धनि कुलवंति जो कुल धरै करि जोबन महँ लाज॥

पद्मावती सुआ भेंट खंड

तेहि वियोग हीरामनि आवा। पदुमावति जानहुँ जिउ पावा।
कंठ लागि सो हीसुर रोई। अधिक मोह जो मिलै बिछोई।
आगि बुझी दुख हियँ जो गँभीरू। नैनन्ह आइ चुवा होइ नीरू।
रही रोइ जब पदुमिनि रानी। हँसि पूँछहिं सब सखी सयानी।

मिले रहस चाहिअ भा दूना। कत रोइअ जौं मिलै बिछूना।
तेहि क उतर पदुमावति कहा। बिछुरन दुक्ख हिएँ भरि रहा।
मिला जो आइ हिएँ सुख भरा। वह दुख नैन नीर होइ ढरा।

बिछुरंता जब भेंटिऔ सो जानै जेहि नेहु।
सुक्ख सुहेला उग्गवइ दुक्ख झरै जेउँ मेहु॥

पुनि रानी हँसि कूसल पूँछा। कत गवनेहु पिंजर कै छूँछा।
रानी तुम्ह जुग जुग सुख पाहू। छाज न पंखिहि पिंजर ठाहू।
जौं भा पंख कहाँ थिर रहना। चाहै उड़ा पंखि जौं डहना।
पिंजर महँ जो परेवा घेरा। आइ मँजारि कीन्ह तहँ फेरा।
देवसेक आइ हाथ पै मेला। तेहि डर बनोबास कहँ खेला।
तहाँ बिआध आइ नर साँधा। छूट न पाँव मीचु कर बाँधा।
ओइँ धरि बेचा बाँभन हाथाँ। जंबू दीप गएउँ तेहि साथाँ।

तहाँ चित्रगढ़ चितउर चित्रसेनि कर राज।
टीका दीन्ह पुत्र कहँ आपु लीन्ह सिव साज॥

बैठ जो राज पिता के ठाऊँ। राजा रतनसेनि ओहि नाऊँ।
का बरनौं धनि देस दियारा। जहँ अस नग उपना उजियारा।
धनि माता धनि पिता बखाना। जेहि के बंस अंस अस आना।
लखन बतीसौ कुल निरमरा। बरनि न जाइ रूप औ करा।
ओइँ हौं लीन्ह अहा अस भागू। चाहै सोनहि मिला सोहागू।
सो नग देखि इंछा भै मोरी। है यह रतन पदारथ जोरी।
है ससि जोग इहै पै भानू। तहाँ तुम्हार मैं कीन्ह बखानू।

कहाँ रतन रतनाकर कंचन कहाँ सुमेरु।
दैय जौं जोरी दुहुँ लिखी मिलै सो कवनेहु फेर॥

सुनि कै बिरह चिनगि ओहि परी। रतन पाव जौं कंचन करी।
कठिन पेम बिरहा दुख भारी। राज छाड़ि भा जोगि भिखारी।
मालति लागि भँवर जस होई। होइ बाउर निसरा बुधि खोई।
कहेसि पतंग होइ धँसि लेऊँ। सिंघल दीप जाइ जिउ देऊँ।

पुनि ओहि कोउ न छाड़ अकेला। सोरह सहस कुँवर भए चेला।
औरु गनै को संग सहाई। महादेव मढ़ मेला जाई।
सूरुज परस दरस की ताईं। चितवै चाँद चकोर कि नाईं।

तुम्ह बारीं रस जोग जेहि कँवलहि जस अरघानि।
तस सूरुज परगासि कै भँवर मिलाएउँ आनि॥

हीरामनि जौं कही रस बाता। सुनि कै रतन पदारथ राता।
जस सूरुज देखत होइ ओपा। तस भा बिरह काम दल कोपा।
पै सुनि जोगी केर बखानू। पदुमावति मन भा अभिमानू।
कंचन जौं कसिऔ कै ताता। तब जानिअ दहुँ पीत कि राता।
कंचन करी न काँचहि लोभा। जौं नग होइ पाव तब सोभा।
नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।
को अस हाथ सिंघ मुख घाला। को यह बात पिता सौं चाला।

सरग इंद्र डरि काँपै बासुकि डरै पतार।
कहाँ अैस बर प्रिथिमी मोहिं जोग संसार॥

तूँ रानी ससि कंचन करा। वह नग रतन सूर निरमरा।
बिरह बजागि बीच का कोई। आगि जो छुवै जाइ जरि सोई।
आगि बुझाइ ढोइ जल काढ़े। यह न बुझाइ आगि असि बाढ़े।
बिरह कि आगि सूर नहिं टिका। रातिहुँ दिवस जरा औ धिका।
खिनहिं सरग खिन जाइ पतारा। थिर न रहै तेहि आगि अपारा।
धनि सो जीव दगध इमि सहा। तैस जरै नहिं दोसर कहा।
सुलुगि सुलुगि भीतर होइ स्यामा। परगट होइ न कहा दुख नामा।

काह कहौं मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेंट।
तेहि दिन आगि करौं यह बाहर होइ जेही दिन भेंट॥

हीरामनि जौं कही रस बाता। पाएउ पान भएउ मुख राता।
चला सुआ रानी तब कहा। भा जो परावा सो कैसें रहा।
जो निति चलै सँवारै पाँखा। आजु जो रहा काल्हि को राखा।
न जनौं आजु कहाँ दिन उवा। आएहु मिलै चलेहु मिलि सुवा।

मिलि कै बिछुरन मरन की आना। कत आएहु जौं चलेहु निदाना।
अनु रानी हौं रहतेउ रांधा। कैसें रहौं बचा कर बाँधा।
ताकरि दिस्टि अैस तुम्ह सेवा। जैस कूंज मन सहज परेवा।

बसै मीन जल धरती अंबा बिरिख अकास।
जौं रे पिरीति दुहुन महँ अंत होहिं एक पास॥

आवा सुवा बैठ जहँ जोगी। मारग नैन बियोग बियोगी।
आइ पेम रस कहा सँदेसू। गोरख मिला मिला उपदेसू।
तुम्ह कहँ गुरू मया बहु कीन्हा। लीन्ह अदेस आदि कहँ दीन्हा।
सबद एक होइ कहा अकेला। गुरु जस भृंगि फनिग जस चेला।
भृंगि ओहि पंखिहि पै लेई। एकहिं बार छुएँ जिउ देई।
ताकहँ गुरू करै असि माया। नव अवतार देइ नै काया।
होइ अमर अस मरि कै जिया। भँवर कँवल मिलि कै मधु पिया।

आवै रितू बसंत जब तब मधुकर तब बासु।
जोगी जोग जो इमि करहि सिद्धि समापति तासु॥

पार्वती-महेश खंड

ततखन पहुँचा आइ महेसू। बाहन बैल कुस्टि कर भेसू।
काँथरि कया हड़ावरि बाँधे। रुंडमाल औ हत्या काँधे।
सेस नाग औ कंठै माला। तन बिभूति हस्ती कर छाला।
पहुँची रुद्र कँवल के गटा। ससि माथें औ सुरसरि जटा।
चँवर घंट औ डँवरू हाथा। गौरा पारबती धनि साथा।
औ हनिवंत बीर सँग आवा। धरे बेष जनु बंदर छावा।
औतहिं कहेन्हि न लावहु आगी। ताकरि सपथ जरहु जेहि लागी।

कै तप करै न पारेहु कै रे नसाएहु जोग।
जियत जीय कस काढ़हु कहहु सो मोहिं बियोग॥

कहेसि को मोहि बातन्ह बेलवावा। हत्या केर न तोहिं डर आवा।
जरै देहु दुख जरौं अपारा। निस्तरि परौं जरौं एक बारा।

जस भर्तहरि लागि पिंगला। मो कहँ पदुमावति सिंघला।
मैं पुनि तजा राज औ भोगू। सुनि सो नाउँ लीन्हा तप जोगू।
यह मढ़ सेएउँ आइ निरासा। गै सो पूजि मन पूजि न आसा।
तेइँ यह जिउ दाधे पर दाधा। आधा निकसि रहा घट आधा।
जो अधजरत सो बेलंब न लावा। करत बेलँब बहुत दुख पावा।

एतना बोल कहत मुख उठी बिरह की आगि।
जौं महेस नहिं आइ बुझावत सकल जगत हुति लागि॥

पारबती मन उपना चाऊ। देखौं कुँवर केर सत भाऊ।
दहुँ यह बीच कि पेमहि पूजा। तन मन एक कि मारग दूजा।
भै सुरूप जानहुँ अपछरा। बिहसि कुँवर कर आँचर धरा।
सुनहु कुँवर मोसों एक बाता। जस रँग मोर न औरहि राता।
औ बिधि रूप दीन्ह है तोकाँ। उठा सो सबद जाइ सिव लोकाँ।
तब हौं तो कहँ इंद्र पठाई। गै पदुमिनि तैं आछरि पाई।
अब तजु जरन मरन तप जोगू। मो सों मानु जनम भरि भोगू।

हौं आछरि कबिलास की जेहि सरि पूजि न कोइ।
मोहि तजि सँवरि जो ओहि सरसि कौन लाभु तोहि होइ॥

भलेहिं रंग तोहि आछरि राता। मोहि दोसरें सौं भाव न बाता।
मोहि ओहि सँवरि मुएँ अस लाहा। नैन सो देखसि पूँछसि काहा।
अबहीं तेहि जिउ देइ न पावा। तोहि असि आछरि ठाढ़ मनावा।
जौं जिउ देहुँ ओहि कि आसाँ। न जनौं काह होइ कबिलासाँ।
हौं कबिलास काह लै करऊँ। सोइ कबिलास लागि ओहि मरऊँ।
ओहि के बार जीवनहिं बारौं। सिर उतारि नेवछावरि डारौं।
ताकरि चाह कहै जो आई। दुऔ जगत तेहि देउँ बड़ाई।

ओहि न मोरि कछु आसा हौं ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास प्रीतम कहँ जिउ न देउ का देउँ॥

गौरैं हँसि महेस सों कहा। निस्चै यहु बिरहानल दहा।
निस्चैं यह ओहि कारन तपा। परिमल पेम न आछे छपा।

निस्त्रें पेम पीर यह जागा। कसत कसौटी कंचन लागा।
बदन पियर जल डभकहिं नैनाँ। परगट दुओौ पेम के बैनाँ।
यह ओहि लागि जरम एहि रीझा। चहै न औरहि ओहीं रीझा।
महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हरी सरन राम रन जिता।
एहू कहँ तसि मया करेहू। पुरवहु आस कि हत्या लेहू।

हत्या दुइ जो चढ़ाएहु काँधे अबहूँ न गे नाग नाग।
तीसरि लेहु एहु के माँथें जौं रे लेइ के साथ॥

सुनि कै महादेव कै भाखा। सिद्ध पुरुष राजैं मन लखा।
सिद्ध अंग नहिं बैठै माखी। सिद्ध पलक नहिं लागै आँखी।
सिद्धहि संग होइ नहिं छाया। सिद्धहि होइ न भूख औ माया।
जौं जग सिद्धि गोसाईं कीन्हा। परगट गुपुत रहै को चीन्हा।
बैल चढ़ा कुस्टी के भेसू। गिरिजापति सत आहि महेसू।
चीन्है सोइ रहै तेहि खोजा। जस बिक्रम औ राजा भोजा।
कै जियँ तंत मंत सो हेरा। गएउ हेराइ जबहि भा मेरा।

बिनु गुरु पंथ न पाइअ भूलै सोइ जो मेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौं भेंट॥

ततखन रतनसेनि गहबरा। छाड़ि डफार पाउ लै परा।
माता पितैं जनमि कत पाला। जौं पै फाँद पेम गियँ घाला।
धरती सरग मिले हुत दोऊ। कत निरार कै दीन्ह बिछोऊ।
पदिक पदारथ कर हुँति खोवा। टूटहिं रतन रतन तस रोवा।
गँगन मेघ जस बरिसहिं भले। पुहुमि अपूरि सलिल होइ चले।
साएर उपटि सिखर गा पाटी। जरै पानि पाहन हिय फाटी।
पवन पानि होइ होइ सब गिरईं। पेम के फाँद कोउ जनि परईं।

तस रोवै जस जरै जिउ गरै रकत औ माँसु।
रोवँ रोवँ सब रोवहिं सोत सोत भरि आँसु॥

रोवत बूड़ि उठा संसारू। महादेव तब भएउ मयारू।
कहेसि न रोव बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।

जो दुख सहै होइ सुख ओकाँ। दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोकाँ।
अब तूँ सिद्ध भया सिधि पाई। दरपन कया छूटि गै काई।
कहौं बात अब होइ उपदेसी। लागु पंथ भूले परदेसी।
जौं लहि चोर सेंध नहिं देई। राजा केर न मूँसै पेई।
चढ़ै तौ जाइ बार वह खूँदी। परै तौ सेंधि सीस सौं मूँदी।

कहौं तोहि सिंघल गढ़ है खँड सात चढ़ाउ।
फिरा न कोई जिअत जिउ सरग पंथ दै पाउ॥

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। परखि देखु तैं ओहि की छाया।
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे। जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझिआरा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।
भेदी कोइ जाइ ओहि घाटी। जौं लै भेद चढ़ै होइ चाँटी।
गढ़ तर सुरँग कुंड अवगाहा। तेहि महँ पंथ कहौं तोहिं पाहाँ।
चोर पैठि जस सेंधि सँवारी। जुआ पैंत जेउँ लाव जुआरी।

जस मरजिया समुँद धँसि मारै हाथ आव तब सीप।
ढूँढ़ि लेहिं ओहिं सरग दुवारी औ चढु सिंघल दीप॥

दसवँ दुवार तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।
जाइ सो जाइ साँस मन बंदी। जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।
तूँ मन नाँथु मारि कै स्वाँसा। जौं पै मरहि आपुहि करु नाँसा।
परगट लोकचार कहु बाता। गुपुत लाउ जासौं मन राता।
हौं हौं कहत मंत सब कोई। जौं तूँ नाहिं आहि सब सोई।
जियतहिं जौ रे मरै एक बारा। पुनि कत मीचु को मारै पारा।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब सो आपु अकेला।

आपुहि मीचु जियन पुनि आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहै कहाँ क दोसर कोइ॥

पद्मावती-रतनसेन-भेंट खंड

सात खंड ऊपर कबिलासू। तहँ सोवनारि सेज सुखबासू।
चारि खंभ चारिहुँ दिसि धरे। हीरा रतन पदारथ जरे।
मानिक दिया बरे औ मोती। होइ अँजोर रैनि तेहि जोती।
ऊपर रात चँदोवा छावा। औ भुइँ सुरँग बिछाउ बिछावा।
तेहि महँ पलँग सेज सो डासी। का कहँ अैसि रची सुखबासी।
दुहु दिसि गेडुआ औ गलसुई। काँचे पाट भरी धुनि रूई।
फूलन्ह भरी अैस केहि जोगू। को तेहि पौढ़ि मान सुख भोगू।

अति सुकुमारि सेज सो साजी छुवै न पावै कोइ।
देखत नवै खिनुहि खिन पाँव धरत कस होइ॥

सुरुज तपत सेज सो पाई। गाँठि छोरि ससि सखी छपाई।
अहै कुँवर हमरे अस चारू। आजु कुँवरि कर करब सिंगारू।
हरदि उतारि चढ़ाएब रंगू। तब निसि चाँद सुरुज सौं संगू।
जनु चातिक मुख बुंद सो स्वाती। राजहि चकचौहट तेहि भाँती।
जोगि छरा जनु अछरिन्ह साथा। जोग हाथ हुँति भएउ बेहाथा।
वै चतुरा गुरु लै उपसईं। मंत्र अमोल छीनि लै गईं।
बैठेउ खोइ जरी औ बूटी। लाभ न आव मूर भौ टूटी।

खाइ रहा ठग लाडू तंत मंत बुधि खोइ।
भा धौराहर बनखँड ना हँसि आव न रोइ॥

अस तप करत गएउ दिन भारी। चारि पहर बीते जुग चारी।
परी साँझ पुनि सखी सो आईं। चाँद सो रहै न उईं तराईं।
पूछेन्हि गुरू कहाँ रे चेला। बिनु ससियर कस सूर अकेला।
धातु कमाइ सिखे तैं जोगी। अब कस भा निरधातु बिओगी।
कहाँ सो खोए बीरौ लोना। जेहि तैं होइ रूप औ सोना।
कस हरतार पार नहिं पावा। गंधक कहाँ कुरकुटा खावा।
कहाँ छपाए चाँद हमारा। जेहि बिनु जगत रैनि अँधिआरा।

नैन कौड़िया हिय समुँद गुरू सो तेहि महँ जोति।
मन मरजिया न होइ परै हाथ न आवै मोंति॥

का बसाइ जौं गुरु अस बूझा। चकाबूह अभिमनु जो जूझा।
बिख जो देहि अंब्रित देखराई। तेहि रे निछोहिहिं को पतिआई।
मरै सो जानु होइ तन सूना। पीर न जानै पीर बिहूना।
पार न पाव जो गंधक पिया। सों हरतार कहौ किमि जिया।
सिद्धि गोटिका जापहँ नाहीं। कौनु धातु पूँछहु तेहि पाहीं।
अब तेहि बाजु राँग भा डोलौं। होइ सार तब बर कै बोलौं।
अभरक कै तन एँगुर कीन्हा। सो तुम्ह फेरि अगिनि महँ दीन्हा।

मिलि जौ पिरीतम बिछुरै काया अगिनि जराइ।
कै सौ मिलै तन तपति बुझै कै मोहि मुएँ बुझाइ॥

सुनि कै बात सखीं सब हँसीं। जनहुँ रैनि तरईं परगसीं।
अब सो चाँद गँगन महँ छपा। लालि किहें कत पावसि तपा।
हमहुँ न जानहिं दहुँ सो कहाँ। करब खोज औ बिनउब तहाँ।
औ अस कहब आहि परदेसी। करु माया हत्या जनि लेसी।
पीर तुम्हार सुनत भा छोहू। दैय मनाव होउ अब ओहू।
तूँ जोगी तप करु मन जथा। जोगिहि कवनि राज कै कथा।
वह रानी जहवाँ सुख राजू। बारह अभरन औरै सो साजू।

जोगी दिढ़ आसन करु अस्थिर धरु मन डाउँ।
जौं न सुने तौ अब सुनु बारह अभरन नाउँ॥

प्रथमहि मंजन होइ सरीरू। पुनि पहिरै तन चंदन चीरू।
साजि माँग पुनि सेंदुर सारा। पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारा।
पुनि अंजन दुँहु नैन करेई। पुनि कानन्ह कुंडल पहिरेई।
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तँमोला।
गियँ अभरन पहिरै जहँ ताईं। औ पहिरै कर कँगन कलाईं।
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। औ पायल पायन्ह भल चूरा।
बारह अभरन एइ बखाने। ते पहिरै बरहौ असथाने।

पुनि सोरह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुँ खीन॥

पदुमावति जो सँवरै लीन्ही। पूनिव राति दैयँ असि कीन्ही।
कै मंजन तब किएहु अन्हानू। पहिरे चीर गएउ छपि भानू।
रचि पत्रावलि माँग सेंदूरा। भरि मोतिन्ह औ मानिक पूरा।
चंदन चित्र भए बहु भाँती। मेघ घटा जानहुँ बग पाँती।
सिरै जो रतन माँग बैसारा। जानहु गँगन टूट लै तारा।
तिलक लिलाट धरा तस डीठा। जनहुँ दुइज पर नखत बईठा।
मनि कुंडल खुँटिला औ खूँटी। जानहुँ परी कचपची टूटी।

पहिरि जराऊ ठाढ़ि भौ बरनि न आवै भाउ।
माँग क दरपन गँगन भा तौ ससि तार देखाउ॥

बाँक नैन औ अंजन रेखा। खंजन जनहुँ सरद रितु देखा।
जब जब हेरु फेरु चखु मोरी। लुरै सरद महँ खंजन जोरी।
भौंहैं धनुक धनुक पै हारे। नैनन्ह साँधि बान जनु मारे।
कनक फूल नासिक अति सोभा। ससि मुख आइ सूक जनु लोभा।
सुरँग अधर औ लीन्ह तँबोरा। सोहै पान फूल कर जोरा।
कुसुम गेंद अस सुरँग कपोला। तेहि पर अलक भुअंगिनि डोला।
तिल कपोल अलि पदुम बईठा। बेधा सोइ जो वह तिल डीठा।

देखि सिंगार अनूप बिधि बिरह चला तब भागि।
कालकूट एइ ओनए सब मोरें जिय लागि॥

का बरनौं अभरन उर हारा। ससि पहिरें नखतन्ह कै मारा।
चीर चारु औ चंदन चोला। हीर हार नग लाग अमोला।
तिन्ह झाँपी रोमावलि कारी। नागिनि रूप डसै हत्यारी।
कुच कंचुकी सिरीफल उभे। हुलसहिं चहहिं कंत हिय चुभे।
बाँहन्ह बाँहू टाड सलोनी। डोलत बाँह भाउ गति लोनी।
नीवी कँवल करी जनु बाँधी। बिसा लंक जानहु दुइ आधी।
छुद्रघंटि कटि कंचन तागा। चलै तौ उठै छतीसौ रागा।

चूरा पायल अनवट बिछिया पायन्ह परे बियोग।
हिए लाइ टुक हम कहँ समदहु तुम्ह जानहु अउ भोगु ॥

अस बारह सोरह धनि साजे। छाज न औरहि ओहिं पै छाजे।
बिनवहि सखीं गहरु नहिं कीजै। जेइँ जिउ दीन्ह ताहि जिउ दीजै।
सँवरि सेज धनि मन भौ संका। ठाढ़ि तिवानि टेकि कै लंका।
अनचिन्ह पिउ काँपै मन माहाँ। का मैं कहब गहब जब बाँहाँ।
बारि बएस गौ प्रीति न जानी। तरुनी भइ मैमंत भुलानी।
जोबन गरब कछु मैं नहिं चेता। नेहु न जानिउँ स्याम कि सेता।
अब जौं कंत पूँछिहि सेइ बाता। कस मुँह होइहि पीत कि राता।

हौं सो बारि औ दुलहिनि पिउ सो तरुन औ तेज।
नहिं जानौं कस होइहि चढ़त कंत की सेज ॥

सुनि धनि डर हिरदै तब ताईं। जौ लगि रह सि मिला नहिं साईं।
कवन सो करी जो भँवर न राई। डारि न टूटै फर गरुआई।
माता पिता बियाही सोई। जरम निबाह पियहि सो होई।
भरि जमबार चहै जहँ रहा। जाइ न मेंटा ताकर कहा।
ताकहँ बिलँबु न कीजे बारी। जो पिय आएसु सोइ पियारी।
चलहु बेगि आएसु भा जैसें। कंत बोलावै रहिए कैसें।
मान न करु थोरा करु लाडू। मान करत रिस मानै चाडू।

साजन लेइ पठाइया आएसु जेहि क अमेंट।
तन मन जोबन साजि सब देइ चलिअ लै भेंट ॥

पदुमिनि गवँन हंस गौ दूरी। हस्ती लाजि मेल सिर धूरी।
बदन देखि घटि चंद छपाना। दसन देखि छबि बीजु लजाना।
खंजन छपा देखि कै नैना। कोकिल छपा सुनत मधु बैना।
गीवँ देखि कैं छपा मँजूरू। लंक देखि कै छपा सदूरू।
भौंह धनुक जो छपा अकारौं। बेनी बासुकि छपा पतारौं।
खरग छपा नासिका बिसेखी। अंब्रित छपा अधर रस पेखी।
भुजन छपानि कँवल पौनारी। जंघ छपा केदली होइ बारी।

आछरिं रूप छपानीं जबहिं चली धनि साजि।
जावँत गरब गहीलि हुतिं सबै छपीं मन लाजि॥

मिलीं तराईं सखी सयानीं। लिए सो चाँद सुरुज पहँ आनीं।
पारस रूप चाँद देखराई। देखत सुरुज गएउ मुरुछाई।
सोरह कराँ दिस्टि ससि कीन्ही। सहसौ करा सुरुज कै लीन्ही।
भा रबि अस्त तराइन हँसैं। सुरुज न रहा चाँद परगसैं।
जोगी आहि न भोगी होई। खाइ कुरकुटा गा परि सोई।
पदुमावति निरमलि जसि गंगा। तोहि जो कित जोगी भिखमंगा।
अबहुँ जगावहिं चेला जागू। आवा गुरू पाय उठि लागू।

बोलहिं सबद सहेलीं कान लागि गहि माँथ।
गोरख आइ ठाढ़ भा उठु रे चेला नाथ॥

गोरख सबद सुद्ध भा राजा। रामा सुनि रावन होइ गाजा।
गही बाँह धनि सेजवाँ आनी। आँचर ओट रही छपि रानी।
सकुचै डरै मुरै मन नारी। गहु न बाँह रे जोगि भिखारी।
ओहट होहि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरुकुटा केरी।
देखि भभूति छूति मोहि लागा। काँपै चाँद राहु सौं भागा।
जोगी तोरि तपसी कै काया। लागी चहै अंग मोहि छाया।
बार भिखारि न माँगसि भीखा। माँगै आइ सरग चढ़ि सीखा।

जोगि भिखारी कोई मँदिर न पैसै पार।
माँगि लेहि किछु भिख्या जाइ ठाढ़ होहि बार॥

अनु तुम्ह कारन पेम पियारी। राज छाँड़ि कै भएउँ भिखारी।
नेह तुम्हार जो हिए समाना। चितउर माँह न सुमिरेउँ आना।
जस मालति कह भँवर बियोगी। चढ़ा बियोग चलेउँ होइ जोगी।
भएउँ भिखारि नारि तुम्ह लागी। दीप पतँग होइ अँगएउँ आगी।
भँवर खोजि जस पावै केवा। तुम्ह काँटे मैं जिव पर छेवा।
एक बार मरि मिलै जौ आई। दोसरि बार मरै कत जाई।
कत तेहिं मीचु जो मरि कै जिया। भा अम्मर मिलि कै मधु पिया।

भँवर जो पावै कँवल कहँ बहु आरति बहु आस।
भँवर होइ नेवछावरि कँवल देइ हँसि बास॥

अपने मुँह न बड़ाई छाजा। जोगी कतहुँ होंहिं नहिं राजा।
हौं रानी तूँ जोगि भिखारी। जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी।
जोगी सबै छंद अस खेला। तूँ भिखारि केहि माहँ अकेला।
पवन बाँधि उपसवहिं अकासाँ। मनसहिं जहाँ जाहिं तेहि पासाँ।
तैं तेहि भाँति सिस्टि यह छरी। एहि भेस रावन सिय हरी।
भँवरहि मींचु नियर जब आवा। चंपा बास लेइ कहँ धावा।
दीपक जोति देखि उजियारी। आइ पतँग होइ परा भिखारी।

रैनि जो देखिअ चंद मुख मकु तन होइ अनूप।
तहूँ जोगि तस भूला भै राजा के रूप॥

अनु धनि तूँ ससिअर निसि माहाँ। हौं दिनअर तेहि की तूँ छाहाँ।
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरज कि जोति चाँद निरमरा।
भँवर बास चंपा नहिं लेई। मालति जहाँ तहाँ जिउ देई।
तुम्ह निति भएउँ पतँग कै करा। सिंघल दीप आइ उड़ि परा।
सेएउँ महादेव कर बारू। तजा अन्न भा पवन अधारू।
तुम्ह सौं प्रीति गाँठि हौं जोरी। कटै न काटे छुटै न छोरी।
सीय भीख रावन कहँ दीन्ही। तूँ असि निठुर अँतरपट कीन्ही।

रंग तुम्हारे रातेउँ चढ़ेउँ गँगन होइ सूर।
जहँ ससि सीतल कहँ तपनि मन इंछा धनि पूर॥

जोगि भिखारि करसि बहु बाता। कहेसि रंग देखौं नहिं राता।
कापर रँगे रंग नहिं होई। हिएँ औटि उपनै रँग सोई।
चाँद के रंग सुरुज जौं राता। देखिअ जगत साँझ परभाता।
दगध बिरह निति होइ अँगारू। ओहि की आँच धिकै संसारू।
जौं मँजीठ औटैं औ पचा। सो रँग जरम न डोलै रँचा।
जरै बिरह जेउँ दीपक बाती। भीतर जरै उपर होइ राती।
जर परास कोइला के भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू।

पान सुपारी खैर दुहुँ मेरै करै चक चून।
तब लगि रंग न राचै जब लगि होइ न चून ॥

धनिश्रा का सुरंग का चूना। जेहि तन नेह दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेहुँ पियर भा पानू। पैंड़ी हुत सुनि रासि बखानू।
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। जोग लीन्ह तन कीन्ह गड़ौना।
करभँज किंगरी लै बैरागी। नेवती भएउँ बिरह की श्रागी।
फेरि फेरि तन कीन्ह भुँजौना। श्रौटि रकत रँग हिरदै श्रौना।
सूखि सुपारी भा मन मारा। सिर सरौत जनु करवत सारा।
हाड़ चून भै बिरह जो डहा। सो पै जान दगध इमि सहा।

के जानै सो बापुरा जेहि दुख श्रैस सरीर।
रकत पियासे जे हहिं का जानहिं पर पीर ॥

जोगिन्ह बहुतै छंद श्रोराहीं। बुँद सेवातिहि जैस पराहीं।
परै समुंद्र खार जल श्रोहीं। परै सीप मुँह मोंती होहीं।
परै पुहमी पर होइ कचूरू। परै केदली महँ होइ कपूरू।
परै मेरु पर श्रंम्रित होई। परै नाग मुख बिख होइ सोई।
जोगी भँवर न थिर ये दोऊ। केहिं श्रापन भए कहै सो कोऊ।
एक ठाँउ वै थिर न रहाहीं। भखु लै खेलि श्रनत कहँ जाहीं।
होइ गिरिही पुनि होहिं उदासी। श्रंत काल दुनहूँ बिसवासी।

तासौं नेह जो दिढ़ करै थिर श्राछहि सहदेस।
जोगी भँवर भिखारी इन्ह तें दूरि श्रदेस ॥

थल थल नग न होइ जेहि जोती। जल जल सीप न उपनै मोंती।
बन बन बिरिख चँदन नहिं होई। तन तन बिरह न उपजै सोई।
जेहि उपना सो श्रौटि मरि गएऊ। जरम निनार न कबहूँ भएऊ।
जल श्रंबुज रबि रहै श्रकासा। प्रीति तो जानहुँ एकहि पासा।
जोगी भँवर जो थिर न रहाहीं। जेहि खोजहिं तेहि पावहिं नाहीं।
मैं तुइ पाए श्रापन जीऊ। छाँड़ि सेवातिहि जाइ न पीऊ।
भँवर मालती मिलै जौं श्राई। सो तजि श्रान फूल कत जाई।

चंपा प्रीति जो बेलि है दिन दिन आगरि बास।
गरि गुरि आपु हेराइ जौं मुएहु न छाँड़ै पास॥

ऐसें राजकुँवर नहिं मानौं। खेलु सारि पाँसा तौ जानौं।
कच्चे बारह बार फिरासी। पक्के तौ फिरि थिर न रहासी।
रहै न आठ अठारह भाखा। सोरह सतरह रहै सो राखा।
सतएँ ढरैं सो खेलनिहारा। ढारु इग्यारह जासि न मारा।
तूँ लीन्हे मन आछसि दुवा। औ जुग सारि चहसि पुनि छुवा।
हौं नव नेह रचौं तोहि पाहाँ। दसौं दाँउ तोरें हिय माहाँ।
पुनि चौपर खेलौं कै हिया। जो तिरहेल रहै सो तिया।

जेहि मिलि बिछुरन औ तपनि अंत तंत तेहि निंत।
तेहि मिलि बिछुरन को सहै बरु बिनु मिलें निचिंत।

बोलौं बचन नारि सुनु साँचा। पुरुख क बोल सपत औ बाचा।
यह मन तोहि अस लावा नारी। दिन तोहि पास और निसि सारी।
पौ परि बारह बार मनावौं। सिर सौं खेलि पैत जिउ लावौं।
मारि सारि सहि हौं अस राँचा। तेहि बिच कोठा बोल न बाँचा।
पाकि गहे पै आस करीता। हौ जीतेहुँ हारा तुम्ह जीता।
मिलि कै जुग नहिं होउँ निनारा। कहाँ बीच दुतिया देनिहारा।
अब जिउ जरम जरम तोहिं पासा। किएउँ जोग आएउँ कबिलासा।

जाकर जीव बसै जेहि सेतें तेहि पुनि ताकरि टेक।
कनक सोहाग न बिछुरै अवटि मिलै जौ एक॥

बिहँसी धनि सुनि कै सत बाता। निस्चैं तूँ मोरे रँग राता।
निस्चै भँवर कँवल रस रसा। जो जेहि मन सो तेहि मन बसा।
जब हीरामनि भएउ सँदेसी। तोहि निति मँड़प गइउँ परदेसी।
तोर रूप देखेउँ सुठि लोना। जनु जोगी तूँ मेलेसि टोना।
सिद्ध गोटिका दिस्टि कमाई। पारैं मेलि रूप बैसाई।
भुगुति देइ कहँ मैं तुहिं डीठा। कवल नयन होइ भँवर बईठा।
नैन पुहुप तूँ अलि भा सोभी। रहा बेधि उड़ि सकेसि न लोभी।

जाकरि आस होइ असि जा कहँ तेहि पुनि ताकरि आस।
भँवर जो डाढ़ा कँवल कहँ कस न पाव रस बास ॥

कवनि मोहनी दहुँ हुति तोहीं। जो तोहि बिथा सो उपनी मोहीं।
बिनु जल मीन तपी तस जीऊ। चात्रिक भइउ कहत पिउ पिऊ।
जरिउँ बिरह जस दीपक बाती। पँथ जोवत भइउँ सीप सेवाती।
डारि डारि जेउँ कोइल भई। भइउँ चकोरि नींद निसि गई।
मोरें पेम पेम तोहि भएऊ। राता हेम अगिनि जो तएऊ।
हीरा दिपै जौं सुरुज उदोती। नाहि त कित पाहन कहँ जोती।
रवि परगासें कँवल बिगासा। नाहिं त कित मधुकर कित बासा।

तासों कवन अँतरपट जो अस प्रीतम पीउ।
नेवछावरि गइ आप हौं तन मन जोबन जीउ ॥

कहि सत भाउ भएउ कँठलागू। जनु कंचन मों मिला सोहागू।
चौरासी आसन बर जोगी। खट रस बिंदक चतुर सो भोगी।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई।
करी बेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।
कंचन करी चढ़ी नग जोती। बरमा सौं बेधा जनु मोती।
नारँग जानुँ कीर नख देई। अधर आँबु रस जानहुँ लेई।
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। कुंदहि कुरुलहि जनु सर हंसा।

रही बसाइ बासना चोवा चंदन मेद।
जो असि पदुमिनि रावै सो जानै यह भेद ॥

चतुर नारि चित अधिक चिहूटै। जहाँ पेम बाँधै किमि छूटै।
किरिरा काम केलि मनुहारी। किरिरा जेहिं नहिं सो न सुनारी।
किरिरा होइ कंत कर तोखू। किरिरा किहें पाव धनि मोखू।
जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी। चंदन जैस स्यामि कँठ लागी।
गोदि गेंद कै जानहुँ लई। गेंदहुँ चाहि धनि कोंवरि भई।
दारिवँ दाख बेल रस चाखा। पिउ के खेल धनि जीवन राखा।
बैन सोहावनि कोकिल बोली। भएउ बसंत करी मुख खोली।

पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी बोली चात्रिक भाँति।
परी सो बूँद सीप जनु मोंती हिएँ परी सुख सांति ॥

हौं जूझि जस रावन रामा। सेज बिधंसि बिरह संग्रामा।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।
औ जोबन मैंमंत बिधंसा। बिचला बिरह जीव लै नंसा।
लूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मंग भंग भे केसा।
कंचुकि चूर चूर भै ताने। टूटे हार मोंति छहराने।
बारी टाड सलोनी टूटीं। बाँहू कँगन कलाई फूटीं।
चंदन अंग छूट तस भेंटी। बेसरि टूटि तिलक गा मेंटी।

पुहुप सिंगार सँवारि जौ जोबन नवल बसंत।
अरगज जेउँ हिय लाइ कै मरगज कीन्हें कंत ॥

बिनति करै पदुमावति बाला। सो धनि सुराही पीउ पियाला।
पिउ आएसु माँथे पर लेऊँ। जौं मागै नै नै सिर देऊँ।
पै पिय बचन एक सुनु मोरा। चाखि पियहु मधु थोरइ थोरा।
पेम सुरा सोई पै पिया। लखै न कोइ कि काहूँ दिया।
चुवा दाख मधु सो एक बारा। दोसरि बार होहु बिसँभारा।
एक बार जो पी कै रहा। सुख जेंवन सुख भोजन कहा।
पान फूल रस रग करीजै। अधर अधर सौं चाखन कीजै।

जो तुम्ह चाहहु सो करहु नहिं जानहुँ भल मंद।
जो भावै सो होइ मोहि तुम्हहि पै चहौं अनंद ॥

सुनु धनि पेम सुरा के पिएँ। मरन जियन डर रहै न हिएँ।
जहँ मद तहाँ कहाँ संभारा। कै सो खुमरिहा कै मँतवारा।
सो पै जान पियै जो कोई। पी न अघाइ जाइ परि सोई।
जा कहँ होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु ओही चाहा।
अरथ दरब सब देइ बहाई। कह सब जाउ न जाउ पियाई।
रातिहुँ देवस रहै रस भीजा। लाभ न देख न देखै छीजा।
भोर होत तब पलुह सरीरू। पाव खुमरिहा सीतल नीरू।

एक बार भरि देहु पियाला बार बार को माँग ।
मुहमद किमि न पुकारै ऐस दाँउ जेहि खाँग ॥

भएउ बिहान उठा रबि साईं । ससि पहँ आईं नखत तराईं ।
सब निसि सेज मिले ससि सूरू । हार चीर बलया भे चूरू ।
सो धनि पान चून भै चोली । रंग रँगीलि निरँग भौ भोली ।
जागत रैनि भएउ भिनुसारा । हिय न सँभार सोवति बेकरारा ।
अलक भुअंगिनि हिरदै परी । नारँग ज्यों नागिनि बिख भरी ।
लरै मुरै हिय हार लपेटी । सुरसरि जनु कालिंदी भेंटी ।
जनु पयाग अरइल बिच मिली । बेनी भइ सो रोमावली ।

नाभी लाभी पुन्य की कासी कुंड कहाउ ।
देवता मरहिं कलपि सिर आपुहि दोख न लावहिं काउ ॥

बिहँसि जगावहिं सखी सयानी । सूर उठा उठु पदुमिनि रानी ।
सुनत सूर जनु कँवल बिगासा । मधुकर आइ लीन्ह मधुबासा ।
जनहुँ माँति बसियानी बसी । अति बिसँभार फूलि जनु अरसी ।
नैन कँवल जानहुँ धनि फूले । चितवनि मिरिग सोवत जनु भूले ।
भै ससि खीनि गहन असि गही । बिथुरे नखत सेज भरि रही ।
तन न सँभार केस औ चोली । चित अचेत मन बाउर भोली ।
कँवल माँझ जनु केसरि डीठी । जोबन हुत सो गँवाइ बईठी ।

बेलि जो राखी इंद्र कहँ पवनहुँ बास न दीन्ह ।
लागेउ आइ भँवर तहँ करी बेधि रस लीन्ह ॥

हँसि-हँसि पूँछहिं सखी सरेखी । जानहुँ कुमुद चंद मुख देखी ।
रानी तुम्ह ऐसी सुकुमारा । फूल बास तनु जीउ तुम्हारा ।
सहि न सकहु हिरदै पर हारू । कैसे सहिहु कंत कर भारू ।
मुखा कवँल बिगसत दिन राती । सो कुँभिलान सहिहु केहि भाँती ।
अधर जो कोंवल सहत न पानू । कैसें सहा लागि मुख भानू ।
लंक जो पैग देत मुरि जाई । कैसें रही जो रावन राई ।
चंदन चोंप पवन अस पीऊ । भइउ चित्र सम कस भा जीऊ ।

सब अरगज भा मरगज लोचन पीत सरोज।
सत्य कहहु पदुमावति सखीं परीं सब खोज॥

कहौं सखी आपन सति भाऊ। हौं जो कहति कस रावन राऊ।
जहाँ पुहुप अलि देखत संगू। जिउ डेराइ काँपत सब अंगू।
आजु मरम मैं पावा सोई। जस पियार पिउ और न कोई।
तब लगि डर हा मिला न पीऊ। भान कि दिस्टि छूटि गा सीऊ।
जत खन भाव कीन्ह परगासू। कँवल करी मन कीन्ह बिगासू।
हिएँ छोह उपना और सीऊ। पिउ रिसाइ लेउ बरु जीऊ।
हुत जो अपार बिरह दुख दोखा। जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा।

हहूँ रंग बहु जानति लहरैं जेति समुंद।
पै पिय की चतुराई सकिउँ न एकौ बुंद॥

कै सिंगार तापहँ कहँ जाऊँ। ओहि कहँ देखौं ठाँवहिं ठाऊँ।
जौं जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन महँ सोइ न होइ निरारा।
नैनन्ह माँह तौ उहै समाना। देखउँ जहाँ न देखउँ आना।
आपुन रस आपुहि पै लेई। अधर सहैं लागैं रस देई।
हिया थार कुच कंचन लाड़ू। अगुमन भेंट दीन्ह होइ चाड़ू।
हुलसी लंक लंक सों लसी। रावन रहसि कसौटी कसी।
जोबन सबै मिला ओहि जाई। हौं रे बीच हुति गई हेराई।

जस किछु दीजै धरै कहँ आपन लीजै सँभारि।
तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठियारि॥

अनु री छबीली तोहि छबि लागी। नैन गुलाल कंत सँग जागी।
चंप सुदरसन भा तोहि सोई। सोन जरद जसि केसरि होई।
बैठ भँवर कुच नारँग बारी। लागे नख उछरे रँग ढारी।
अधर अधर सों भीज तबोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गौ मोरी।
रायमुनी तूँ औ रतमुँही। अलि मुख लागि भई फुलचुही।
जैस सिंगार हार सो मिली। मालति ऐसि सदा रहि खिली।
पुनि सिंगार करि अरसि नेवारी। कदम सेवती पियहि पियारी।

कुंद करी जहँवा लगि बिगसै रितु बसंत औ फागु।
फूलहु फरहु सदा सखि और सुख सुफल सोहाग ॥

कहि यह बात सखीं सब धाईं। चंपावति कहँ जाइ सुनाईं।
आजु निरँग पदुमावति बारी। जीउ न जानहुँ पवन अधारी।
तरकि तरकि गौ चंदन चोला। धरकि धरकि डर उठै न बोला।
अही जो करी करा रस पूरी। चूर चूर होइ गईं सो चूरी।
देखहु जाइ जैसि कुँभिलानी। सुनि सोहाग रानी बिहँसानी।
लै सँग सबै पदुमिनी नारी। आइ जहाँ पदुमावति बारी।
आइ रूप सबहीं सो देखा। सोन बरन होइ रही सो रेखा।

कुसुम फूल जस मरदिअ निरंग दीखु सब अंग।
चंपावति भै बारनै चूँबि केस औ मंग ॥

सब रनिवास बैठ चहुँ पासा। ससि मंडर जनु बैठ अकासा।
बोला सबहिं बारि कुँभिलानी। करहु सँभार देहु खंडवानी।
कोंवलि करी कँवल रँग भीनी। अति सुकमारि लंक कै खीनी।
चाँद जैस धनि बैठि तरासी। सहस करा होइ सुरज गरासी।
तेहि की झार गहन अस गही। भै निरंग मुख जोति न रही।
दरब उबारहु अरघ करेहू। औ लै वारि सन्यासिहि देहू।
भरि कै थार नखत गज मोती। वारने कीन्ह चाँद कै जोती।

कीन्ह अरगजा मरदन औ सखि दीन्ह अन्हान।
पुनि भै चाँद जो चौदसि रूप गएउ छपि भान ॥

पट्टुवन्ह चीर आनि सब छोरे। सारी कंचुकी लहरि पटोरे।
फुँदिआ और कसनिआ राती। छाएल पंडु आए गुजराती।
चदनौटा खीरोदक फारी। बाँस पोर झिलमिल की सारी।
चिकवा चीर मेघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने।
सुरँग चीर भल सिंघल दीपी। कीन्ह छाप जो धनि वै छीपी।
पेमचा डोरिआ औ बीदरी। स्याम सेत पियरी औ हरी।
सातहुँ रंग सो चित्र चितेरी। भरि कै डीठि जाहिं नहिं हेरी।

पुनि अभरन बहु काढ़ा अनबन भाँति जराउ।
फेरि फेरि निति पहिरहिं जैस जैस मन भाउ॥

षट्ऋतु वर्णन खंड

पदुमावति सब सखीं बोलाईं। चीर पटोर हार पहिराईं।
सीस सबन्हि के सेंदुर पूरा। सीस पूरि सब अंग सेंदूरा।
चंदन अगर चतुरसम भरीं। नएँ चार जानहुँ अवतरीं।
जनहु कँवल सँग फूलीं कुईं। कै सो चाँद सँग तरईं उईं।
धनि पदुमावति धनि तोर नाहूँ। जेहि पहिरत पहिरा सब काहूँ।
बारह अभरन सोरह सिंगारा। तोहि सोहइ यह ससि संसारा।
ससि सो कलंकी राहुहि पूजा। तोहि निकलंक न होइ सरि दूजा।

काहूँ बीन गहा कर काहूँ नाद म्रिदंग।
सब दिन अनँद गँवावा रहस कोड एक संग॥

भै निसि धनि जसि ससि परगसी। राजैं देखि पुहुमि फिरि बसी।
भै कातिकी सरद ससि उवा। बहुरि गँगन रबि चाहै छुवा।
पुनि धनि धनुक भौंहँ कर फेरी। काम कटाख टँकोर सो हेरी।
जानहुँ नहिं किं पैज पिय खाँचौं। पिता सपथ हौं आजु न बाँचौं।
काल्हि न होइ रहे सह रामा। आजु करौ रावन संग्रामा।
सेन सिंगार महूँ है सजा। गज गति चाल अँचर गति धुजा।
नैन समुंद्र खरग नासिका। सरवरि जूझि को मो सौं टिका।

हौं रानी पदुमावति मैं जीता सुख भोग।
तूँ सरबरि करु तासौं जस जोगी जेहिं जोग॥

हौं अस जोगि जान सब कोऊ। बीर सिंगार जिते मैं दोऊ।
उहाँ त समुँह रिपुन दर माहाँ। इहाँ त काम कटक तुव पाहाँ।
उहाँ त कोपि बैरिदर मडौं। इहाँ त अधर अमिअ रस खंडौं।
उहाँ त खरग नरिंदन्ह मारौं। इहाँ त बिरह तुम्हार सँघारौं।

उहाँ त गज पेलौं होइ केहरि। इहाँ त कामिनि करसि हहेहरि।
उहाँ त लूसौं कटक खँधारू। इहाँ त जितौं तुम्हार सिंगारू।
उहाँ त कुंभस्थल गज नावौं। इहाँ त कुच कलसन्ह कर लावौं।

परा बीचु धरहरिया पेम राज कै टेक।
मानहिं भोग छहूँ रितु मिलि दूनौं होइ एक॥

प्रथम बसंत नवल रितु आई। सुरितु चैत बैसाख सोहाई।
चंदन चीर पहिरि धनि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मंगा।
कुसुम हार औ परिमल बासू। मलयागिरि छिरिका कबिलासू।
सौर सुपेती फूलन्ह डासी। धनि औ कंत मिले सुखबासी।
पिउ सँजोग धनि जोबन बारी। भँवर पुहुप सँग करहिं धमारी।
होइ फागु भलि चाँचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जसि होरी।
धनि ससि सियरि तपै पिउ सूरू। नखत सिंगार होहिं सब चूरू।

जेहि घर कंता रितु भली आउ बसंता नित्तु।
सुख बहरावहि देवहरै दुक्ख न जानहिं कित्तु॥

रितु ग्रीखम कै तपनि न तहाँ। जेठ असाढ़ कंत घर जहाँ।
पहिरें सुरँग चीर धनि झीना। परिमल मेद रहै तन भीना।
पदुमावति तन सियर सुबासा। नैहर राज कंत कर पासा।
अधर तँबोर कपूर भिवँसेना। चंदन चरचि लाव नित बेना।
ओबरि जूड़ि तहाँ सोवनारा। अगर पोति सुख नेति ओधारा।
सेत बिछावन सौर सुपेती। भोग करहिं निसि दिन सुख सेंती।
भा अनंद सिंघल सब कहूँ। भागिवंत सुखिया रितु छहूँ।

दारिवँ दाख लेहिं रस बेरसहिं आँब सदार।
हरियर तन सुवटा कर जो अस चाखनहार॥

रितु पावस बिरसै पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सोहावा।
कोकिल बैन पाँति बग छूटी। धनि निसरीं जेउँ बीर बहूटी।
चमकै बिज्जु बरिस जग सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।
रँग राती पिय सँग निसि जागै। गरजै चमकि चौंकि कँठ लागै।

सीतल बुंद ऊँच चौबारा। हरियर सब देखिअ संसारा।
मलै समीर बास सुख बासी। बेइलि फूल सेज सुख डासी।
हरियर भुम्मि कुसुंभी चोला। औ पिय संगम रचा हिंडोला।

पौन झरक्के हिय हरख लागै सियरि बतास।
धनि जानै यह पौनु है पौनु सो अपनी आस॥

आइ सरद रितु अधिक पियारी। नौ कुवार कातिक उजियारी।
पदुमावति भै पूनिवँ कला। चौदह चाँद उए सिंघला।
सोरह करा सिंगार बनावा। नखतन्ह भरे सुरुज ससि पावा।
भा निरभर सब धरनि अकासू। सेज सवारि कीन्ह फुल डासू।
सेत बिछावन औ उजियारी। हँसि हसि मिलहिं पुरुख औ नारी।
सोने फूल पिरिथिमी फूली। पिउ धनि सौं धनि पिउ सौं भूली।
चखु अंजन दै खजन देखावा। होइ सारस जोरी पिउ पावा।

एहि रितु कंता पास जेहि सुख तिन्हके हिय माँहँ।
धनि हँसि लागै पिय गले धनि गल पिय कै बाँह॥

आइ सिसिर रितु तहाँ न सीऊ। अगहन पूस जहाँ घर पीऊ।
धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा। दुहूँक अंग एक मिलि लागा।
मन सौ मन तन सौं तन गहा। हिय सौं हिय बिच हार न रहा।
जानहुँ चंदन लागेउ अंगा। चंदन रहै न पावै संगा।
भोग करहिं सुख राजा रानी। उन्ह लेखें सब सिस्टि जुड़ानी।
जूझै दुहुँ जोबन सौं लागा। बिच हुत सीउ जीउ लै भागा।
दुइ घट मिलि एकै होइ जाहीं। ऐस मिलहिं तबहूँ न अघाहीं।

हंसा केलि करहिं जेउँ सरवर कुंदहिं कुरलहिं दोउ।
सीउ पुकारै ठाढ़ भा जस चकई क बिछोउ॥

रितु हेवंत संग पीउ न पाला। माघ फागुन सुख सीउ सियाला।
सौर सुपेती महँ दिन राती। दगल चीर पहिरहिं बहु भाँती।
घर घर सिंघल होइ सुख भोगू। रहा न कतहूँ दुख कर खोजू।
जहँ धनि पुरुख सीउ नहिं लागा। जानहुँ काग देखि सर भागा।

जाइ इंद्र सौं कीन्ह पुकारा। हौं पदुमावति देस निकारा।
एहि रितु सदा सँग मैं सोवा। अब दरसन हुत मारि बिछोवा।
अब हँसि कै ससि सूरहि भेंटा। अहा जो सीउ बीच हुत मेंटा।
भएउ इंद्र कर आएसु प्रस्थावा यह सोइ।
कबहुँ काहु कै प्रभुता कबहुँ काहु कै होइ॥

गोरा-बादल-युद्ध खंड

मँते बैठ बादिल औ गोरा। सो मत कीज परै नहिं भोरा।
पुरुख न करहिं नारि मति काँची। जस नौसाबै कीन्ह न बाँची।
हाथ चढ़ा इसिकंदर बरी। सकति छाँड़ि कै भै बँदि परी।
सजग जो नाहिं काह बर काँधा। बधिक हुते हस्ती गा बाँधा।
देवन्ह चलि आई असि आँटी। सुजन कँचन दुर्जन भा माँटी।
कंचन जुरै भए दस खंडा। फुटि न मिलै माँटी कर भंडा।
जस तुरुकन्ह राजहिं छर साजा। तह हम साजि छड़ावहिं राजा।
पूरुख तहाँ करै छर जहँ बर कीन्हें न आँट।
जहाँ फूल तहाँ फूल होइ जहाँ काँट तहाँ काँट॥

सोरह सौ चंडोल सँवारे। कुँवर सँजोइल कै बैसारे।
साजा पदुमावति क बेवानू। बैठ लोहार न जानै भानू।
रचि बेवान तस साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरँग ओढ़ाइ मोंति तिन्ह लाए।
भै सँग गोरा बादिल बली। कहत चले पदुमावति चली।
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि बेवान देवता भूलहिं।
सोरह सै सँग चलीं सहेलीं। कँवल न रहा औरु को बेली।
रानी चली छड़ावै राजहि आपु होइ तेहि ओल।
बत्तिस सहस सँग तुरिअ खिंचावहि सोरह सै चंडोल॥

राजा बंदि जेहि की सौंपना। गा गोरा तापहँ अगुमना।
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा। बिनती कीन्ह पाय गहि गोरा।

बिनवहु पातसाहि पहँ जाई। अब रानी पदुमावति आई।
बिनै करै आई हौं ढीली। चितउर की मो सिउँ है कीली।
एक घरी जौं अग्याँ पावौं। राजहिं सौंपि मँदिल कहँ आवौं।
बिनवहु पातसाहि के आगें। एक बात दीजै मोहिं माँगें।
हते रखवार आगें सुलतानी। देखि अँकोर भए जस पानी।

लीन्ह अँकोर हाथ जेइँ जाकर जीव दीन्ह तेहि हाँथ।
जो वहु कहै सरै सो कीन्हे कनउड़ भार न माँथ॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्तु न रहै हाथ जस बोरा।
जहँ अँकोर तहँ नेगिन्ह राजू। ठाकुर केर बिनासहिं काजू।
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब लोभ चंडोल न हेरा।
जाइ साहि आगें सिर नावा। ऐ जग सूर चाँद चलि आवा।
औ जावँत सँग नखत तराईं। सोरह सै चंडोल सो आईं।
चितउर जेति राज कै पूँजी। लै सो आई पदुमावति कूँजी।
बिनति करै कर जोरें खरी। लै सौंपौं राजहिं एक घरी।

इहाँ उहाँ के स्वामी दुहूँ जगत मोहि आस।
पहिलें दरस देखावहु तौ आवौं कबिलास॥

अग्याँ भई जाउ एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी।
चलि बेवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत गा छावा।
पदुमावति मिस हुत जो लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू।
उठेउ कोपि जब छूटेउ राजा। चढ़ा तुरंग सिंघ अस गाजा।
गोरा बादिल खाँडा काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े।
तीख तुरंग गँगन सिर लागा। केहु जुगुति को टेकै बागा।
जौं जिउ ऊपर खरग सँभारा। मरनिहार सो सहसन्हि मारा।

भई पुकार साहि सौं ससियर नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा गहन गरासे जाहिं॥

लै राजहिं चितउर कहँ चले। छूटेउ मिरिग सिंघ कलमले।
चढ़ा साहि चढ़ि लागि गोहारी। कटह असूझ पारि जग कारी।

फिरि बादिल गोरा सौं कहा। गहन छूट पुनि जाइहि गहा।
चहुँ दिसि आइ अलोपत भानू। अब यह गोइ इहै मैदानू।
तूँ अब राजहिं लै चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा।
दहुँ चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला।
तब पावौं बादिल अस नाऊँ। जीति मैदान गोइ लै जाऊँ।

आजु खरग चौगान गहि करौं सीस रन गोइ।
खेलौं सौहँ साहि सौं हाल जगत महँ होइ॥

तब अंकम दै गोरा मिला। तूँ राजहिं लै चलु बादिला।
पिता मरै जो सारैं साथैं। मींचु न देइ पूत के माथैं।
मैं अब आउ भरी औ भूँजी। का पछितांउ आइ जौं पूजी।
बहुतन्ह मारि मरौं जौं जूझी। ताकहँ जनि रोवहु मन बूझी।
कुँवर सहस सँग गोरैं लीन्हें। औरु बीर सँग बादिल दीन्हें।
गोरहि समदि बादिला गाजा। चला लीन्ह आगैं कै राजा।
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पुरुखन्ह देखि चाउ मन बाढ़ा।

आउ कटक सुलतानी गँगन छपा मसि माँझ।
परत आव जग कारी होत आव दिन साँझ॥

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हाल दहुँ काकरि होई।
जोबन तुरै चढ़ी सो रानी। चली जीति अति खेल सयानी।
लट चोगान गोइ कुच साजी। हिय मैदान चली लै बाजी।
हाल सो कर गोइ लै बाढ़ा। कूरी दुहूँ बीच कै काढ़ा।
भए पहार दुवौ वै कूरी। दिस्टि नियर पहुँचत सुठि दूरी।
ठाढ़ बान अस जानहुँ दोऊ। सालहिं हिए कि काढ़ै कोऊ।
सालहिं तेति न जासु हियँ ठाढ़े। सालहिं तासु चहै ओन्ह काढ़े।

मुहमद खेल पिरेम का खरी कठिन चौगान।
सीस न दीजै गोइ जौं हाल न होइ मैदान॥

फिरि आगैं गोरैं तब हाँका। खेलौं आजु करौं रन साका।
हौं खेलौं धौलागिरि गोरा। टरौं न टारा बाग न मोरा।

सोहिल जैस इंद्र उपराहीं । मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं ।
सहसौं सीसु सेस सरि लेखौं । सहसौं नैन इंद्र भा देखौं ।
चारिउ भुजा चतुर्भुज आजू । कंस न रहा औरु को राजू ।
हौं होइ भीवँ आजु रन गाजा । पाछें घालि दंगवै राजा ।
होइ हनिवँत जमकातरि ढाहौं । आजु स्यामि सँकरें निरबाहौं ।

होइ नल नील आजु हौं देउँ समुँद महँ मेंड़ ।
कटक साहि कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड़ ॥

ओनै घटा चहुँ दिसि तसि आई । चमकहिं खरग बान झरि लाई ।
डोलहिं नाहिं देव जस आदी । पहुँचे तुरुक बाद कहँ बादी ।
हाथन्ह गहे खरग हिरवानी । चमकहिं सेल बीज की बानी ।
सजे बान जानहुँ ओइ गाजा । बासुकि डरै सीस जनि बाजा ।
नेजा उठा डरा मन इंदू । आइ न बाज जानि कै हिंदू ।
गोरैं साथ लीन्ह सब साथी । जनु मैमंत सुंड बिनु हाथी ।
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही । आवत आनी हाँकि सब लीन्ही ।

रुंड मुंड सब टूटहिं सिउँ बकतर औ कुंडि ।
तुरिअ होहिं बिनु काँधे हस्ति होहिं बिनु सुंडि ॥

ओनवत आव सैन सुलतानी । जानहुँ पुरवाई अति बानी ।
लोहैं सैन सूझ सब कारी । तिल एक कतहुँ न सूझ उघारी ।
खरग पोलाद निरँग सब काढ़े । हरे बिज्जु अस चमकहिं ठाढ़े ।
कनक बानि गजबेलि सो नाँगी । जानहुँ काल करहिं जिउ माँगी ।
जनु जमकात करहिं सब भवाँ । जिउ लै चहहिं सरग उपसवाँ ।
सेल साँप जनु चाहहिं डसा । लेहिं काढ़ि जिउ मुख बिख बसा ।
तिन्ह सामुहँ गोरा रन कोपा । अंगद सरिस पाउ रन रोपा ।

सुपुरुस भागि न जानै भएँ भीर भुइँ लेइ ।
असि बर गहें दुहूँ कर स्यामि काज जिउ देइ ॥

भै बगमेल सेल घन घोरा । औ गज पेल अकेल सो गोरा ।
सहस कुँवर सहसहुँ सत बाँधा । भार पहार जूझि कहँ काँधा ।

लागे मरै गोरा के आगें। बाग न मुरै घाव मुख लागें।
जैस पतंग आगि धँसि लेहीं। एक मुएँ दोसर जिउ देहीं।
टूटहिं सीस अधर धर मारे। लोटहिं कंध कबंध निनारे।
कोई परहिं रुहिर होइ राते। कोइ घायल घूमहिं जस माँते।
कोइ खुर खेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे जनु जोगी।

घरी एक भा भारथं भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब बीते गोरा रहा अकेल॥

गोरैं देख साथ सब जूझा। आपन काल नियर भा बूझा।
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मुरै अकेला।
लई हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसें सिंघ बिडारै घटा।
जेहि सिर देइ कोपि कर वारू। सिउँ घोरा टूटै असवारू।
टूटहिं कंध कबंध निनारे। माँठ मँजीठि जानु रन ढारे।
खेलि फागु सेंदुर छिरियावै। चाँचरि खेलि आगि रन धावै।
हस्ती घोर आइ जो ढूका। उठै देह तिन्ह रुहिर भभूका।

भै अग्याँ सुलतानी बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगें लिए पदारथ साथ॥

सबहिं कटक मिलि गोरा छेंका। कुंजल सिंघ जाइ नहिं टेका।
जेहिं दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहिं ठायँन्ह आवा।
तुरुक बोलावहिं बोलहिं बाहाँ। गोरैं मींचु धरा मन माहाँ।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ। जियत न रहा जगत महँ केऊ।
जनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ की मोंछ हाथ को मेला।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुएँ पार कोई घिसियावा।
करै सिंघ हठि सौंही डीठी। जब लगि जिऔ देइ नहिं पीठी।

रतनसेनि तुम्ह बाँधा मसि गोरा के गात।
जब लगि रुहिर न धोवौं तब लगि होउँ न रात॥

सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौहँ गोरा के बाजा।
पहलवान सो बखाना बली। मदति मीर हमजा औ अली।

मदति अयूब सोस चढ़ि कोपे । राम लखन जिन्ह नाउँ अलोपे ।
औ ताया सालार सो आए । जिन्ह कौरौ पंडौ बँदि पाए ।
लिंघउर देव धरा जिन्ह आदी । और को माल बादि कहँ बादी ।
पहुँचा आइ सिंघ असवारू । जहाँ सिंघ गोरा बरियारू ।
मारेसि साँगि पेट महँ धँसी । काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी ।

भाँट कहा धनि गोरा तू भोरा रन राउ ।
आँति सैंति करि काँधे तुरै देत है पाउ ॥

कहेसि अंत अब भा भुइ परना । अंत सो तंत खेह सिर भरना ।
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा । सरजा सारदूर पहँ आवा ।
सरजैं कीन्ह साँगि सौं घाऊ । परा खरग जनु परा निहाऊ ।
बज्र साँगि औ बज्र के डाँडा । उठी आगि सिर बाजत खाँडा ।
जानहुँ बजर बजर सौं बाजा । सबहीं कहा परी अब गाजा ।
दोसर खरग कुंडि पर दीन्हा । सरजैं धरि ओड़न पर लीन्हा ।
तीसर खरग कंध पर लावा । काँध गुरुज हत घाव न आवा ।

अस गोरैं हठि मारा उठी बजर की आगि ।
कोइ न नियरें आवै सिंघ सदूरहि लागि ॥

तब सरजा गरजा बरिबंडा । जानहुँ सेर केर भुअडंडा ।
कोपि गुरुज मेलेसि तस बाजा । जनहुँ परी परबत सिर गाजा ।
ठाठर टूट टूट सिर तासू । सिउँ सुमेरु जनु टूट अकासू ।
धमकि उठा सब सरग पतारू । फिरि गै डीठि भवाँ संसारू ।
भा परलौ सबहूँ अस जाना । काढ़ा खरग सरग नियराना ।
तस मारेसि सिउँ घोरैं काटा । धरती काढ़ि सेस फन फाटा ।
अति जौं सिंघ बरिअ होइ आई । सारदूर से कवनि बड़ाई ।

गोरा परा खेत महँ सिर पहुँचावा बान ।
बादिल लै गा राजहि लै चितउर नियरान ॥

उसमान

अन्य प्रेमगाथाओं की भाँति चित्रावली में भी कवि ने ग्रंथ का रचनाकाल और व्यक्तिगत परिचय तथा निवास-स्थान आदि का पर्याप्त विवरण दे दिया है। इन्होंने अपनी कथा के आदर्शस्वरूप तीन कथाओं का स्मरण आरंभ में किया है। मृगावती (मिरगावती) मधुमालती और पद्मावत। इनमें से जायसी कृत पद्मावत अभी तब इस कोटि का पहला काव्य माना जाता था (९४७ हिजरी या १५४० ईसवी) पर जायसी ने स्वयं अपने काव्य में कुछ कथाओं का उल्लेख किया है। जब तक ये ग्रंथ मिले नहीं थे तब तक जायसी की इन पंक्तियों पर यथोचित ध्यान आलोचकों ने नहीं दिया। जायसी ने कहा है—

पूर्व परम्परा

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति लगि गयो पतारा ॥
सिरी भोज खँडरावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी ॥
राजकुँवर कंचनपुर गैऊ। मिरगावति तजि जोगी भैऊ ॥
साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू ॥

इसमें से मिरगावति का पता काशी नागरीप्रचारिणी सभा को सन् १९०० में लगा। इसके रचयिता कुतुबन के अनुसार इसकी रचना ९०९ हिजरी अर्थात् १५०२ ईसवी में हुई।

मधुमालती की भी खंडित प्रति चित्रावली के संपादक श्री जगमोहन वर्मा को मिली थी (सन् १९१२) इसके आदि अंत के पन्ने ग़ायब होने के कारण रचना काल तथा कृति का परिचय आदि ठीक न प्राप्त हो सका। कवि का ठीक नाम भी नहीं मालूम हो सका। 'मंझन' नाम मिलता है जो स्पष्टतः उपनाम सा जँचता है। कवि अपना परिचय आमतौर से आदि या अंत के पन्नों में देते हैं और वही पन्ने ग़ायब हैं। प्रतिलिपिकार ने एक जगह ११ रबी उस्सानी सन् १०६९ हिजरी

की तारीख लिखी है। इस हिसाब से इसकी प्रतिलिपि सन् १६५३ ई० की ठहरती है तो फिर असल रचना काफ़ी पहले की होगी। पर इस संबंध में ज़्यादा से ज़्यादा अटकल ही हो सकते हैं। जो हो, आशा यह की जा सकती है कि शायद किसी दिन सपनावति और खंडरावति का भी अनुसंधान मिल जाय।

पर उसमान ने सपनावति और खंडरावति का स्मरण नहीं किया। शायद इनके समय तक इन कथाओं को लोग भूल चुके हों या कवि ने इनको इतनी महत्त्वपूर्ण न समझा हो।

मृगावती मुख रूप बसेरा। राज कुवँर भयो प्रेम अहेरा॥
सिंघल पदुमावति भो रूपा। प्रेम कियो है चितउर भूपा॥
मधुमालति होइ रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा॥

जीवन-वृत्त

जन्म-स्थान

उसमान अपना जन्म-स्थान गाज़ीपुर बतलाते हैं। तत्कालीन नगर का बड़ा सुन्दर और सजीव वर्णन इन्होंने किया है।

गाजीपुर उत्तम अस्थाना। देवस्थान आदि जग जाना॥
गंगा मिलि जहँ जमुना आई। बीच मिली गोमती सुहाई॥
तिरधारा उत्तम तट चीन्हा। द्वापर तहँ देवतन्ह तप कीन्हा॥ इत्यादि

वंश और गुरु

इनके पिता का नाम शेख हुसेन था और ये पाँच भाई थे। हुसेन के पाँचों पुत्र योग्य और किसी न किसी कला में पारंगत थे।

कवि उसमान बसै तेहि गाऊँ। सेख हुसेन तनै जग नाऊँ॥
पाँच भाइ पाँचो कवि हीये। एक-एक भाँति सो पाँचो लीये॥
शेख अजीज पढ़ै लिखि जाना। सागर सील ऊँच कर दाना॥
सानुल्लह मिधि मारग गहा। जोग साधि जो मौन होइ रहा॥
शेख फैजुल्लह वीर अपारा। गनै न काहु गहे हथियारा॥
शेख हसन गायन भल अहा। गुन बिद्या कहँ गुनी सराहा॥

अन्य मसनवी कवियों की भाँति उसमान ने अपनी या अपने पिता की वंश-परंपरा या गुरु-परंपरा की तालिका नहीं दी है। निसार अपने को विख्यात मौलवी रूम का वंशज कहता है। जायसी प्रसिद्ध औलिया शेख निज़ामउद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में थे। पर इस तरह की कोई बात उसमान ने अपने संबंध में नहीं कही है। यहाँ, ग्रंथारंभ में, शाह निज़ामउद्दीन चिश्ती तथा एक बाबा हाजी की प्रशंसा इन्होंने की है। हाजी बाबा को इन्होंने अपना गुरु कहा है।

बाबा हाजी सिद्ध अपारा। सिद्ध देत जेहि लाग न पारा॥
मोहि माया कै एक दिन, श्रवन लागि गहि माथ।
गुरू मुख बचन सुनाय कै, कलिमहँ कीन्ह सनाथ॥

व्यक्तित्व

निसार ने अपने को अरबी फ़ारसी आदि अन्य भाषाओं का ज्ञाता तथा इन भाषाओं में ग्रंथ रचना करने की बात भी कही है, पर उसमान (उपनाम "मान") ने इस तरह का कोई दावा नहीं किया। यह बहुत निरभिमानी और ख़ाकसार तबीयत के कवि थे। अपनी विद्याबुद्धि आदि के संबंध में इन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहना उचित समझा कि चार अच्छर पढ़ना हमने भी सीख लिया था और सो भी माथे में लिखा था इस वजह से हो गया।

आदि हुता बिधि माथे लिखा। अच्छर चारि पढ़े हम सिखा॥
देखत जगत चला सब जाई। एक बचन पै अमर रहाई॥
बचन समान सुधा जग नाहीं। जेहि पाय कवि अमर रहाहीं॥
औ जो यह अमिरित सों पागे। सोऊ अमर जग भये सभागे॥
पढ़ि गुनि देखा 'मान' कवि, बैठि खोई संसार।
और जगत सब थोथरा, एक बचन पै सार॥

उक्त पंक्ति से कवि की उच्चता और विनयशीलता दोनों एक साथ ही प्रकट होती है। पर इतना तो इनकी कविता से ही प्रकट है कि इनकी शिक्षा दीक्षा इस वर्ग के शायद सभी कवियों से ऊँचे दर्जे की थी।

रचना-काल

कवि ने इस ग्रंथ का रचना-काल सन् १०२२ हिजरी दिया है और तदनुसार ईसवी सन् १६१५ की यह रचना मानी जायगी[1]।

सन् सहस्र बाईस जब अहे। तब हम बचन चारि एक कहे॥
कहत करेजा लोहु भा पानी। सोई जान पीर जिन्ह जानी॥
एक एक बचन मोति जनु पोवा। कोऊ हँसा कोउ पुनि रोवा॥
बहुतन्ह सुनि कै दुख मन लावा। के कवि कह जग दोष नसावा॥
मोरी बुद्धि जहाँ लहु अही। जहँ लहु सूझि कथा मैं कही॥
हर हर बचन कहौं अति रूखा। दूखन कहे सेराय न दूखा॥
जाकी बुद्धि होइ अधिकाई। आन कथा एक कहै बनाई॥

हम देखते हैं कि जायसी की रचना इनसे केवल ७५ वर्ष पहले की है और यही कारण है कि इनकी शैली भाषा तथा प्रबंध कौशल आदि जायसी से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। अंतर यही है कि इनकी भाषा जायसी से बहुत कुछ परिमार्जित सी है; और व्याकरण तथा शैली में ग्रामीणता की छाप उतनी नहीं है।

एक मुख्य अंतर यह है कि इनकी कथा पूर्णतः काल्पनिक है और यह सब उसमान के उर्वर मस्तिष्क की उपज है। जायसी की भाँति कुछ ऐतिहासिक आधार और कुछ कल्पना दोनों की खिचड़ी बनाना इन्होंने उचित नहीं समझा। और यह ठीक भी है। यदि ऐतिहासिक कथा लेना है तो उसका निर्वाह यथावत होना चाहिए। पर ऐतिहासिक आधार का निर्वाह करने में जायसी असफल हुए हैं। इतिहास और कल्पना का कुछ ऐसा बेतुका सम्मिश्रण जायसी ने किया है कि कहानी में वह तासीर नहीं पैदा होती जो होनो चाहिए। पर उसमान ने अपनी कथा का ढाँचा तैयार करने और शब्द-चयन करने में असाधारण परिश्रम किया है और इसका उनको उचित गर्व भी है, जैसा कि ऊपर उद्धृत की हुई

[1] ना० प्र० सभा से प्रकाशित चित्रावली की भूमिका में इसका रचना काल ई० १६१२ दिया गया है जो शायद संपादक की गणना की भूल है।

पंक्तियों से स्पष्ट है। और साथ ही ये मानों अन्य कवियों को चुनौती देते हुए से कहते हैं :—

जाकी बुद्धि होइ अधिकाई। आन कथा एक कहै बनाई ॥

यहाँ "बनाई" शब्द ध्यान देने योग्य है। पुराण और इतिहास से बनी बनाई सामग्री लेकर तो बहुतों ने प्रेमगाथा लिखी, पर कोई इस तरह निराधार रूप से रचकर गाथा लिखे तो हम जानें। वह स्पष्ट कहते हैं :—

कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सोहाई ॥
कहौं 'बनाय' जैस मोहि सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा ॥

यह कथा कवि के हृदय से उपजी जिसे उन्होंने बनाकर कहा। अस्तु

कवि की जन्म और निधन-तिथि निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। ऊपर दिये हुए रचना काल के अनुसार हम केवल यह जान सके हैं कि यह जहाँगीर के समय में विद्यमान थे।

आलोचना

कथा का सार

नेपाल का राजा धरनीधर पँवार कुल का क्षत्रिय था। वह निस्संतान था, और इस कारण बड़ा दुखी रहता था। अंत में इस दुःख से उसे इतनी ग्लानि हुई की वह राज-पाट छोड़कर जंगल में जाकर तप करने को उद्यत हुआ, पर मंत्रियों के बहुत समझाने बुझाने से राज्य में क्षेत्र (सत्र) स्थापित कर शिव की आराधना में दत्तचित्त हुआ। अंत में शिव-पार्वती इसके उग्र तप से प्रभावित होकर इसकी परीक्षा लेने आये, और भेंटस्वरूप इसका सिर माँगा। यह तलवार उठाकर अपना सिर काटने ही को था कि भगवान् शिव ने इसका हाथ थामा और बोले, 'तुझे पुत्र-रत्न प्राप्त होगा जो कुछ दिन योगाभ्यास करेगा और एक अनिंद्य सुन्दरी के प्रेमपाश में भी बद्ध होगा।'

भगवान् की दया से राजा धरनीधर के एक पुत्र हुआ जिसकी कुण्डली आदि बनाकर ज्योतिषियों ने 'सुजान' नाम रखा। समय पाकर

यह राजकुमार कामदेव की भाँति सुंदर, महा पराक्रमी और अपूर्व विद्या-बुद्धि-संपन्न हुआ।

एक दिन की घटना है कि सुजान शिकार खेलने जाकर रास्ता भूलकर किसी देव की मढ़ी में जा सोया। उस देव ने उसकी असहाय अवस्था देखकर उस पर बड़ी दया की, और हर प्रकार से उसकी रक्षा का भार लिया। इसी बीच उस देव का कोई मित्र वहाँ आया और उसने कहा कि आज रूपनगर में राजकुमारी चित्रावली की वर्षगाँठ का जलसा है, चलो उसे देख आवें। पर उसने कहा कि हमने इस राजकुमार की रक्षा का भार ले रक्खा है, इसे कहाँ फेकें। उसने कहा इसे भी वहाँ ले चलो, सो तो रहा ही है, कहीं रख देंगे और लौटते वक्त फिर लेते आवेंगे। यही राय तय पाई और वे दोनों देव आकाश-मार्ग से सुजान को लेकर उड़े और वहाँ जाकर चित्रावली की चित्रसारी में इसे सुला दिया और खुद उत्सव देखने बाहर चले गये।

इधर रात में सुजान की नींद जब टूटी तो वह अपने को इस अपूर्व चित्रशाला में पड़ा देख बड़ा चकराया, पर सामने ही चित्रावली का मनमोहक चित्र देखकर मुग्ध हो गया और उसी के बगल में अपना चित्र खींचकर फिर सो गया। इधर सुबह देव लोग उसे फिर अपने साथ उड़ा ले गये। उठने पर सुजान को सब बातें याद आईं और उसे स्वप्न का भ्रम हुआ पर कपड़ों में रंग और तूलिका का दाग वग़ैरह लगा देखकर सच्ची घटना का निश्चय हो गया और उसे चित्रावली की याद सताने लगी।

इधर राज्य में कुमार के लापता होने के कारण सब लोग व्याकुल होकर ढूँढ़ने चले और कुछ सेवक उस मढ़ी तक आ पहुँचे और उसे राज्य में ले आये पर वह प्रेम की पीर से बेसुध पड़ा रहा। सुजान का एक मित्र सुबुद्धि नाम का ब्राह्मण था, उसने युक्ति से सब बातें सुजान से पूँछ ली। और एक राय कर दोनों फिर उसी मढ़ी में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन दोनों ने अन्न-सत्र जारी किया।

इधर कुमार का चित्र देखकर चित्रावली का भी यही हाल हुआ।

उन्होंने अपने नपुंसक भृत्यों को कुमार की खोज में रवाना किया, जिनमें से एक इस मढ़ी तक पहुँच भी गया। इसी बीच एक कुटीचर ने चित्रावली की माता हीरा से शिकायत कर दी जिससे उसने कुमार का चित्र धुलवा डाला। पर इस अपराध में कुमारी ने उसका सिर मुड़वा कर उसे राज्य से निकलवा दिया। इधर यह जोगी कुमार के पास पहुँचा और और उसे रूपनगर में लाकर युक्ति से शिव के मंदिर में चित्रावली से साक्षात्कार करवा दिया। पर इसी बीच उस कुटीचर ने उसे अपना शत्रु मान कर उसे अंधा बना एक पहाड़ की कंदरा में डाल दिया जहाँ इसे एक अजगर निगल गया, पर इसमें विरह की आग इतनी भयंकर थी कि अजगर ने तुरंत उगल दिया। इस घटना को एक बनमानुस देखता था और उसने एक ऐसा अंजन दिया जिससे उसकी दृष्टि फिर पूर्ववत् हो गई। पर इसके बाद इसे एक हाथी ने पकड़ा और उस हाथी को एक पक्षिराज ले उड़ा। तब हाथी ने उसे छोड़ दिया और वह एक समुद्र तट पर गिरा और घूमता हुआ सागर गढ़ राज्य में पहुँचा जहाँ की राजकुमारी अपनी फुलवाड़ी में इसे घूमता देख इस पर मोहित हो गई। कुमार उस समय योगी वेश में था। कौलावती ने योगियों की एक दावत की जिसमें इसको भी शरीक किया। पर इसके भोजन में अपना हार छिपाकर रख दिया था और इस प्रकार इसे चोरी में फँसा कर क़ैद करवा लिया। फिर कौलावती के रूप-गुण से मुग्ध होकर सोहिल नाम का राजा सैन्य लेकर सागरगढ़ पर चढ़ आया; पर सुजान ने इसे अपने बाहुबल से मार गिराया। इस पर कौलावती के पिता ने प्रसन्न होकर सुजान के साथ उसका विवाह कर दिया पर उसने कौलावती से प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह चित्रावली के मिलन से विरोध न करेगी।

कुमार कौलावती के साथ गिरनार पहुँचा और वहाँ चित्रावली के भेजे हुए दूत से उसकी भेंट हुई और उसने उसका समाचार चित्रावली के पास पहुँचाया। फिर किसी प्रकार वह योगी कुमार को लेकर रूपनगर की सीमा पर पहुँचाया और यह खबर चित्रावली को मिली।

अब रूपनगर के राजा को चित्रावली के विवाह की चिंता सता रही थी। उसने चार चित्रकार राजकुमारों के चित्र लाने के लिए भेजे। इधर रानी हीरा कुमारी को खिन्न देखकर उसका हाल पूछ रही थी पर वह अपने मन का भेद बताती नहीं थी। इसी समय सुजान को एक जगह बैठा कर वह दूत कुमारी को खबर देने आ रहा था। रानी ने उसे मार्ग में ही पकड़वा कर क़ैद करा दिया। पर वह पागल हो चित्र वली नाम ले लेकर भागने लगा। राजा तक ख़बर पहुँची। उसने अपयश के डर से इसे मरवा डालने की ठानी और इस पर हाथी छोड़वा दिया, पर सुजान ने अपने बाहुबल से इसे मार गिराया। इस पर राजा स्वयं इसे मारने चला पर इसी बीच एक चितेरा सागरगढ़ से एक कुमार का चित्र लाया जिसने सोहिल को मारा था। देखने पर वह चित्र इसी का निकला। राजा ने उचित पात्र समझकर चित्रावली का विवाह इसके साथ कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद बिरहाकुल कौलावती ने कुमार की ख़बर लाने को हंस-मित्र को दूत बनाकर भेजा। कुमार ने अपने पिता और कौलावती का स्मरण कर रूपनगर से बिदा ली और वहाँ से सागरगढ़ आ कौलावती को बिदा करा लिया और अपने राज्य को रवाना हुआ; पर रास्ते में असंख्य विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हुईं। समुद्र में तूफ़ान आया पर किसी प्रकार सबसे बचकर वह जगन्नाथ पुरी में पहुँचे जहाँ पुरोहित काशी पांडे से इनकी भेंट हुई। वहाँ से अपने राज्य में पहुँचे और शोक-संतप्त माता-पिता से मिले। दुख से रोते-रोते माता अंधी हो गई थी पर इनके आने की ख़ुशी में इसकी आँखें ठीक हो गईं और सुजान अपनी रानियों सहित आनंदोपभोग करने लगा।

इस कथा के सारांश से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आद्योपान्त काल्पनिक है और इसमें अनेक अस्वाभाबिक और बेतुकी बातें भरी पड़ी हैं पर यह सब होते हुए भी कथा बड़ी रोचक बन पड़ी है, और कहीं भी जी नहीं ऊबता। इनकी प्रबंध-शैली कुछ ऐसी है

कि बालक, युवा, वृद्ध, योगी, भोगी सभी वर्ग के लोग इसका आनंद ले सकते हैं। कवि स्वयं कहता है—

बालक सुनत कान रस लावा। तरुनन्ह के मन काम बढ़ावा॥
विरिध सुनै मन होइ गियाना। यह संसार धंधा कै जाना॥
जोगी सुनै जोग पँथ पावा। भोगी कहँ सुख भोग बढ़ावा॥
इच्छा तरु एक आह सोहावा। जेहि जस इच्छा तेस फल पावा॥

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

न्यूनाधिक रूप से सभी सूफ़ी कवियों की रचना में अध्यात्मवाद की कुछ न कुछ झलक आ ही जाती है। शाह निज़ामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में होने के कारण हम इनको जायसी का गुरु भाई भी कह सकते हैं और इनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी जायसी से बहुत कुछ मिलता है। इनकी सारी कथा भी अन्योक्ति के रूप में समझी जा सकती है और कवि का अभिप्राय हर बात से ऐसा ही प्रतीत होता है कि श्रोतागण इसे इसी रूप में समझें बूझें। यही मुख्य कारण जान पड़ता है कि इन्होंने किसी ऐतिहासिक घटना या इतिहास प्रसिद्ध नायक-नायिका का सदुपयोग या दुरुपयोग करना उचित नहीं समझा। जायसी ने बड़ी भूल की थी। इन्हें प्रतिपादन तो करना था एक विशेष वाद (सूफ़ीवाद) जो वेदांत, रहस्य, अध्यात्म या एकेश्वरवाद आदि कई 'वादों' की पँचमेल खिचड़ी है और पात्र तथा घटनाएँ इन्होंने इतिहास से लीं। आधी कथा लिखने के बाद इन्हें शायद अपनी भयानक भूल का पता चला और इन्होंने यथासंभव कल्पित नाम और घटनाओं का आश्रय लिया। जायसी की इस फ़जीहत से उसमान ने पूरा लाभ उठाया। ऐतिहासिक महाकाव्य और मसनवी ढंग की प्रेमगाथा दो जुदा चीज़ें हैं; और उस पार्थक्य को उसमान ने भलीभाँति समझा था। दोनों को मिलाकर चलाना या दोनों का सामंजस्य किसी प्रकार स्थिर रखते हुए अंत में सूफ़ी एकीश्वरवाद के सिद्धांत का निष्कर्ष निकालना एक असंभव बात है। यही जायसी से भूल हुई पर उसमान ने इस भूल

को पहचाना और पहले से तैयार होकर खूब सोच-समझकर कहानी का प्लाट और पात्रों के नामकरण आदि को अपने आध्यात्मिक निष्कर्ष को दृष्टिपथ में रखते हुए किया। और वे सफल हुए।

चरितनायक 'सुजान' का नाम बहुत सोच समझकर रक्खा गया है। वह शिव का 'अंश' अतः जन्मतः जोगी या पैदाइशी साधक है। कौलावती और चित्रावली इन दोनों नायिकाओं को हम अविद्या और विद्या के रूप में देखते हैं। कौलावती से विवाह तो हुआ पर शर्त यह रही कि जब तक चित्रावली न मिलेगी तब तक सहवास नहीं होगा। 'सुजान' अर्थात् वास्तविक ज्ञानी बिना विद्या के प्राप्त किये अपनी साधना पूरी नहीं समझता। उपनिषद् में कहा है :—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

यह अविद्या से अर्थ है साधारण विद्या और विद्या से अर्थ है ब्रह्म विद्या जिससे स्थायी शान्ति प्राप्ति होती है। इसी प्रकार विचारने से सभी पात्र-पात्री तथा उनका सारा कार्य-कलाप हम आध्यात्मिक साधना, तज्जनित बिघ्न-बाधाएँ और अंतिम निर्वाण के रूप में पढ़ सकते हैं। सरोवर-क्रीड़ा वाले खंड में इन्होंने बड़ी सुंदर रीति से ईश्वर की प्राप्ति की ओर संकेत किया है। चित्रावली सरोवर के गहरे जल से अदृश्य हो जाती है और ईश्वर की भाँति वह भी खोज का विषय बन जाती है, देखिए :—

हम अंधी जेहि आप न सूझा। भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा॥
कौन सो ठाउँ जहाँ तुम नाहीं। हम चख जोति न देखहि काहीं॥
पावहि खोज तुम्हार सो, जेहि देखरावहु पंथ।
कहा भएउ जोगी भए, औ बहु पढ़े गरंथ।

तुलसीदास जी ने भी कहा है, 'सो जानहि जेहि देहु जनाई'।

इस कथा की कविता और भाषा आदि के संबंध में हमें कोई नई बात नहीं कहनी है। भाषा, व्याकरण, प्रबंध,

काव्यत्व

शैली, खंड-विभाग आदि सब ढंग जायसी का

ही है; केवल अंतर यही है कि इनकी भाषा विशेष परिमार्जित और प्रौढ़ है। यह तुलसी के समसामयिक थे और संस्कृत का ज्ञान यदि इन्हें होता तो इनकी भाषा प्रौढ़ता में उनके आस-पास पहुँचती।

जायसी की भाँति ही उसमान ने महाकाव्योचित नगर तथा सरोवर आदि विषयों का वर्णन किया है।

इनकी जानकारी बढ़ी-चढ़ी थी, समय-समय पर लोकोक्तियाँ ये 'बड़े मार्के से' बैठाते गये हैं। एक जगह इन्होंने अंग्रेजों का भी वर्णन किया है—

बुलंदीप देखा अँगरेजा। तहाँ जाइ जेहि कठिन करेजा॥
ऊँच नीच धन संपति हेरा। मद बराह भोजन जेहि केरा॥

सन् १६१२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सूरत में अपनी गुदाम खोली थी, और १६१३ की यह रचना है। कहाँ सूरत और कहाँ गाज़ीपुर; और इस समय न रेल, न पोस्ट, न तार न अख़बार। इनका भौगोलिक ज्ञान भी असाधारण था, जैसा कि संग्रह से जान पड़ेगा। 'जोगी ढूँढ़न खंड' में इन्होंने काबुल, बदख्शाँ, खुरासान, रूस, साम, मिस्र, इस्तंबोल, गुजरात, सिंहल आदि-आदि अनेक देशों का वर्णन किया है।

यों तो सभी सूफ़ी कवि विरह वर्णन में क़लम तोड़ देते हैं, पर इसके सिवा इनके अन्य वर्णन भी मार्के के हुए हैं; यथा विदाई के समय रानी हीरा के उपदेश आदि। ये अंश हमें तुलसी की याद दिलाते हैं। चित्रावली के विरह वर्णन में कहीं-कहीं कबीर और जायसी की छाप है। विरहाग्नि के धुएँ न प्रकट होने की बात कबीर और उसमान दोनों ने ही कही है। देखिए—

उसमान— विरह अगिन उर महँ बरै, एहि तन जाने सोइ।
सुलगै काठ बिलूत ज्यों, धुआँ न परगट होइ॥

कबीर— हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, की जिन लाई सोय॥

इसके सिवा विरह वर्णन के अंतर्गत इनका यह ऋतु-वर्णन कुछ नवीन और बड़े सुंदर ढंग से हुआ है। ऋतु-वर्णन प्रेम-मार्गी कवियों का अभीष्ट विषय रहा है।

चित्रावली

चित्रदर्शन खंड

वै भूलै तेहि कौतुक जाई। इहाँ कुँअर जागा अँगिराई ।।
नैन उघारि देखि चितसारी। रहा अचक उठि बैठ सँभारी ।।
देखा मँदिर एक बहु भाँती। चित्र सँवारे पाँतिन्ह पाँती ।।
कनक खंभ औ कनक केवारा। लागे रतन करहिं उँजियारा ।।
ऊपर छात अनूप सँवारे। करि कटाव सब कंचन-ढारे ।।
कीन्ह उरेह सूर ससि जोती। और नषत सब मानिक मोती ।।
हेठ अपूरब सब डासन डासा। जहँ तहँ आउ सुगँध की बासा ।।

भयो कुँअर चित अचक एक, मनहीं माँहि गुनाउ।
काकर लोन मँदिर यह, औ मोहि को लै आउ ।।

बहुरि कुँअर जो पाछे देखा। अपुरुब रूप चित्र एक पेखा ।।
जानि सजीउ जीउ भरमाना। भयो ठाढ़ उठि कुँअर सुजाना ।।
देखि रूप मुख परचै खरा। बिधि एह चुरइल कै अपछरा ।।
किए सिंगार संग नहिं कोई। धरें भेष भावन है सोई ।।
जग न होइ मानुष अस रूपा। को पावै अस रूप सरूपा ।।
निहचै अहौं सरग पर आवा। सुरकन्या भौ दिष्टि मेरावा ।।
निहचै एह सुरपति अपछरा। देखत मोर चित्त जिन हरा ।।

हौं तो मंडप देव के, सोवत अहा सुभाउँ ।।
होइ परसन कोउ देवता, लै आवा एहि ठाउँ ।।

भयो भाग्य मम दाहिन आजू। जेहि बिधि दीन्ह आनि यह साजू ।।
कै वहि जन्म पुन्य कछु कीन्हा। तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा ।।
कै बेनी सिर करवट सारा। कै कासी तन तप महँ जारा ।।

कै मथुरा बसि हरि जस गावा। ताहि पुन्य यह दरसन पावा ॥
कै काहू की इंछा पूरी। बल बौसाउ कीन्ह दुख दूरी ॥
कै सुदिष्ट अपने बिधि देखा। आनि देख वह रूप सुरेखा ॥
सुनत अहा कबिलास सोहावा। सो बिधि मोहिं आन देखरावा ॥

मन रहसहि चिंतो चितहि, रहा मौन होइ भूप।
रसना मरम न बोलई, लाएन भूले रूप ॥

छिन एक गुनि मन महँ बहु भावा। पुनि ढाढ़स के आगें आवा ॥
नियरे होइ जो बदन निहारा। रहे निहारि मीन जिमि तारा ॥
तब जानेसि यह चित्र अनूपा। हरयो चित्र लखि बदन सरूपा।
नैन लगाय रहेउ मुख बोरा। चित्र चाँद भा कुँअर चकोरा ॥
सुधि बिसरी बुधि रही न हीये। गा बौराइ प्रेम मद पीए ॥
कबहूँ सीस पाइ तर धरही। कबहुँ ठाढ़ होइ बिनती करई ॥
कबहूँ चाहै अंचल गहा। हाथ न आव अचक मन रहा ॥

कबहुँ परे अचेत भुइँ, कबहूँ होइ सचेत।
रूप अपार हिएँ समुझि, मुख जोवै करि हेत ॥

निरषत जोति नैन जौ पाई। परी डीठ आला पर जाई ॥
देखा आहि लिखे कर साजू। जाते होइ चित्र कर काजू ॥
साँवर अरुन पीत औ हरा। जो रँग चाहिय सो सब धरा ॥
कहेसि बिचारि बूझि मन माहीं। काल्हि आजु अस होइ कि नाहीं ॥
आपन चित्र लिखौं एहिं ठाऊँ। मुकुरहिं जोति जोति कछु पाऊँ ॥
आपनि जोति सूर उँजियारा। सूर कि जोति चंद मनियारा ॥
हिएँ बिचारि चित्र तब लिखा। वहि क चरन तर आपन सिखा ॥

साजि सो मूरति आपनी, ले सब रँग वहि केर।
कै सुजान सो जानई, कै सुजान यह फेर ॥

चित्र लिखा पूजी पुनि धरी। निंद्रा आइ कुँअर चखु भरी ॥
कुँअरक चाहत पलक न लावा। बरबस बैरिन नींद सो आवा ॥

इहै नींद जासौं धन खोवा। इहै नींद जो करै बिछोवा ॥
इहै नींद मगु चलै न देई। इहै नींद सरबस हरि लेई ॥
इहै नींद जेहिं नैन समानी। पलकन्ह भीतर दृष्टि समानी ॥
जो जग माँह नींद बस होई। रहै बीच मग सरबस खोई ॥
जे यहि नींद आपु बस कीन्हें। रहै नींद तोहिं नौ निधि दीन्हें ॥

मान गवाए सोइ सब, जो संपति हुति साथ।
अजहुँ जागु न घर-बसे, भकुरे है कछु हाथ ॥

देवन्ह कौतुक अति जिय भाया। चित्रिनि दरस अमर भइ काया ॥
होत भोर आदित परगासा। उठी सभा औ नाँच उडासा ॥
चित्रावलि कहँ निद्रा आई। लै पलँग पर सखिन सोआई ॥
औ जहँ तहँ सब सोवन लागीं। सगरी रैनि अही सुख जागीं ॥
देवन्ह कहा होत है बारा। चित्रसारि जनु कोऊ उघारा ॥
चलहु कुँअर लै चलहि सवेरा। मगु कोइ आइ मढ़ी महँ हेरा ॥
एहि न पाउ औ तुरै जो पावा। जानइ कुँअर जन्तु कोउ खावा ॥

जन पुरजन माता पिता, जहँ लहु हित सुनि पाउ।
मरिहहिं छाती फाटि सब, तब कछु हाथ न आउ ॥

पुनि दोउ एक संग चितसारी। आइ उघारेन्हि पौरि केवारी ॥
सोवत कुँअर आन तहँ पावा। लीन्ह उठाइ बार नहिं लावा ॥
निमिष माँह लै मढी उतारा। गए छाड़ि सोवत दुख मारा ॥
सूरुज किरन जब कुँअरहि लागी। करवट लेत उठा तब जागी ॥
देखै कहा चहूँ दिसि हेरी। भई आनि रचना बिधि केरी।
ना वह मंदिर नहिं कविलासू। ना वह चित्र न वह सुख वासू ॥
सपन जान चित उठा मरोहू। औटि करेज पानि भा लोहू ॥

पुनि जो निहारे आपु तन; चिन्ह आह सो संग ॥
बस्तर औ कर पर वही, लिखत लाग जो रंग ॥

षन एक कुँअर अचक मन रहा । कौतुक सपना जाइ न कहा ॥
पुनि जो बिरह लहरि तन आई । थाँभि न सकेउ गिरेउ मुरझाई ॥
दोउ नैनन जनु समुँद अपारा । उमँड़ि चले राखै को पारा ॥
फारै झँगा और लोटे परा । बंधुन कोऊ हाथ को धरा ॥
भरि गै खेह सीस औ देहा । सेवक नाहिं जो झारै खेहा ॥
संग न कोऊ हितू पियारा । को उठाइ बैठाइ सँभारा ॥
खिन चेतै खिन होइ बेसँभारा । घरी घरी सिर भुइँ दइ मारा ॥

बिरह दहनि कोउ किमि कहै, रसना कहि जरि जाइ ॥
सोइ हिय माँहिं सँभारै, जेहि तन लागै आइ ॥

कटक जो आइ नगर नियराना । देखिन्ह संग न कुँअर सुजाना ॥
वह औ कहँ वह औ कहँ पूँछा । कटक जानु बिन जिउ तन छूँछा ॥
सब मिलि कहा कुअँर जो नाहीं । राजा पास काह लै जाहीं ॥
पूछत उतर देब हम काहा । छूँछ लजाइ रहब मुँह चाहा ॥
जोहिं बिनु तब जाइहि मुँह गोवा । कसन अबहिं जो खोजिअ खोवा ॥
सोवत जानु सबै सुनि जागे । आपु आपु कहँ ढूँढ़न लागे ॥
जल जल थल थल मेरु पहारा । एक एक तरु तर सौ सौ बारा ॥

स्याम रैन बिनु पंथ पुनि, अगुवा संग न कोइ ।
दूरि दूरि सब धावहिं, नियर जाहिं नहि कोइ ॥

खोजत खोजि कटक सब हारा । बीती रैनि भयो भिनुसारा ॥
सूरज उदै पंथ तब सूझा । भयो दिवस पर आपन बूझा ॥
बाजी चरन खोज पुनि पाए । खोजत खोज मढी महँ आए ॥
देखहिं कुँअर परा बिकरारा । हाथ पाँव सिर कछु न सँभारा ॥
ऊभ उसास लेइ औ रोवा । देखत सैन प्रान जनु खोवा ॥
खेह झारि लै बैसे कोरा । रोवै कटक देखि मुख ओरा ॥
पूछे बातन उतर न देई । खिन खिन ऊभ साँस पै लेई ॥

अरुन बदन पिराइगा, रुहिर सूखि गा गात ।
रहा झाँपि लोयन दोऊ, कहै न पूछे बात ॥

कोऊ कहै मृगी एहि आई। होइ अचेत परा मुरझाई ॥
कोउ कह डसा साँप एहि मढ़ी। सूरज उदय लहरि है चढ़ी ॥
कोउ कहै अहा राति का भूखा। ताँवरि आइ रुहिर तन सूखा ॥
कोउ कह रैनि रहा एकसरा। कै दानौ कै चुरइलि छरा ॥
इहवाँ घरी बिलँब भल नाहीं। बेगहि होहु नगर लै जाहीं ॥
तत्षन राज सुखासन आना। लै पौढ़ाए कुँअर सुजाना ॥
नाउँ सुखासन लै दुखवाहा। बिरह क जरा दून कै डाहा ॥

जाइ सुखासन आसुभा, बाजु गीत औ नाद।
चला पाछु सब आवै, कटक भरा बिसमाद ॥

केउ कहा जाइ जहँ राजा। कुँअर आव कछु औरै साजा ॥
संगन सुनिय गीत औ दाना। सिगरी कटक देखि बिसमाना ॥
सुनि औगुन राजा उठि धावा। व्याकुल होइ भुइँ पाव न लावा ॥
रानी सुनि सिर परी बिजागी। सुनतहि जरी कोब की आगी ॥
आई धाइ कुँअर जहाँ आवा। रोइ सुखासन लेइ कँठ वाला ॥
देख षीन तन मुख पियराना। राजा रानी तजहिं पराना ॥
कंठ लगावहिं पूँछहिं बाता। उतर न देइ बिरह मद माता ॥

पुनि ते पूँछा बोलि कै, जे सँग हुते सयान।
जहँवा कुँअर बिछुरि मिला, तिन्ह सब कीन्ह बखान ॥

राजमँदिर महँ कुँअर उतारा। जानहु आनि अगिन महँ डारा ॥
कल न परै पल अति बिकरारा। हाथ पाँव सिर दै दै मारा ॥
राजै ततखन जन दौराए। बैद सयान गुनी लै आए ॥
गहहिं नाड़िका बूझहिं पीरा। नारि माँह निरदोष सरीरा ॥
ससि सूरज दोऊ निरदोषी। अपुने अपुने घर संतोषी ॥
अब नाड़िका माँह नहिं पीरा। प्रगट पियर मुख षीन सरीरा ॥
कहि न आव हम हिएँ विचारा। ई जस बिरह घाउ कर मारा ॥

पीर सोई जो नहीं कछु, औषद मूरि उपाय।
एहि कर हितू जो होइ कोइ, सो पूछै फुसिलाय ॥

उठि अकुलाइ मात दुखभरी। कुँअर पास आई एकसरी॥
सीस लाइ के बैठी कोरा। पूछै बात देखि मुख ओरा॥
नैन उघारु पूत कहु पीरा। केहि कारन भा खीन सरीरा॥
काहे पीत भयो मुख राता। कहहु बात बलिहारी माता॥
तहीं एक दिनमनि कुलकेरा। नैन मूँदि कस करहि अँधेरा॥
हम सब घट तुम जीव सनेही। कस कुँभिलाइ देसि दुख देही॥
पूत परि कहु कस जिउ तोरा। नैन खोलु करु जगत अँजोरा॥

तोरे पीर कि औषद, जौ एहि जग महँ होइ।
अर्थ द्रव्य जिउ दइ कै, बेगि मँगावों सोइ॥

कहु जो उपजी विथा सरीरा। कहौं सोई जेहि नेवरइ पीरा॥
जो है मढी देव कर भाऊ। लै पूजा सो देव मनाऊ॥
जो काहू के दरसन भूला। माँगौ होइ दुनों कर फूला॥
और जो मन कछु हींछा होई। कहु सो बेगि लै पुरवों सोई॥
दुहु जग माँह तुहीं एक आसा। आस तोरि का करसि निरासा॥
को काटैं इह दुख दिन राती। अबहीं मरब फाटि मैं छाती॥
सुन के कुँअर मातु कै बोला। ऊभि साँस लीन मुख खोला॥

माता पीर सो ऊपजी, ताहि न मूरि उपाइ।
लोयन अटके तहाँ पै, मन न सकै जहँ जाइ॥

कहि कै कुँअर मौन भै रहा। लोयन दुहू गिरे जल बहा॥
बहुत पूँछि रानी जब हारी। कहि न बात नहिं पलक उघारी॥
एहि महँ बिरह लहरि पुनि आई। थाँभि न सका परा मुरछाई॥
धाह मेलि तब रानी रोई। सुनत लोग धावा सब कोई॥
राजा रोवै डारि सिर पागा। जन परिजन सब रोवइ लागा॥
राज मँदिर कर सुनत अँदोरा। घर घर परा नगर मह रोरा॥
जो जैसहि तसहि उठि धावा। हाथ हाथ लै कुअँर उठावा॥

कोई मेलै पानी मुख, कोऊ मूँदै नाक।
मेटे कैसेहु नहिं मिटै, माथ लिखा जो आँक॥

विद्याधर गुरु पंडित महा। तेहि कुल सुमति पूत एक अहा॥
नाउ सुबुधि सकल गुन जाना। पढ़ा पाठ सँग कुँअर सुजाना॥
विद्या जानु जहाँ लगि गुनी। नाटक चेटक आखर घनी॥
मानत हेत कुँअर तेहिं सेती। कहत सुनत जिय बातैं जेती॥
सुनि कै विथा कुँअर पहँ आवा। कुँअर अचेत आइ तहँ पावा॥
नारी देखि विचारेसि पीरा। दोष न पाइस कुँअर सरीरा॥
वदन पियर लोचन न उघारा। निहचै कहेसि बिरह कर मारा॥

प्रेय मंत्र बोला सुबुधि, श्रवनन लागि पुकारि।
सोवत जागा कुँअर पुनि, देखिसि पलक उघारि॥

तब एकसर भै पूछेसि बाता। कहहु कहाँ कासों मन राता॥
कौन रूप देखा तुम जाई। देखत जाहि परे मुरझाई॥
मैं तोर हितू जान सब कोई। कौन बात तुम मोसों गोई॥
औ मैं गुन आकरषन पढ़ा। स्वर्ग बसै सोऊ कर चढ़ा॥
नाउँ ठाउँ जाकर जौ होई। करि उपाउ पुनि आनउँ सोई॥
जो तुम्ह काज आज नहिं आवौं। बुधि विद्या सब कुलहि लजावौं॥
प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा। बिनु रेवे कोउ तहँ न पहूँचा॥

कहु सो बात अब जीउ की, बेगहि करौं उपाइ।
ना तो बौरे कुँअर निज, सब मरिहैं बौराइ॥

सुनि सुनि मन सब बात बिचारी। रोइ रोइ कहन कथा अनुसारी॥
जैसें खेलै गए अहेरा। आँधि आइ औ भयो अँधेरा॥
औ जैसें सब चले पराई। पर्यो आपु जस एकसर जाई॥
औ जैसें बीती सो आँधी। सोवा मढ़ी तुरे तरु बाँधी॥
औ जैसें वह सपना देखा। अपुरब रूप चित्र जस पेखा॥
औ जैसें मन गा बउराई। दिष्टि परत चित लीन्ह चोराई॥
आपन चित्र लिखा रँग लागा। सोवत मढ़ी माँह जस जागा॥

जैसें देखा सपन सब, सौंमुह पाए चीन्ह।
कुँअर कहा सब सुबुधि सों, जस कौतुक बिध कीन्ह॥

कहा कहौं कछु कही न जाई। हिय सौंरत बुधि जाइ हेराई ॥
कहत न बनै जो कछु मैं देखा। गूँग क सपन भयो मोर लेखा ॥
नाउँ न जानौं पूछौं काही। पटतर नाहिं देखावौं जाही ॥
देस न जानौं केहि दिसि आही। पंथ न जानौं पूछौं काही ॥
मन चहुँ दिसि धावै बैरागा। फिरि आवै बोहित ज्यों कागा ॥
करहु उपाय करे जो पारहु। नाहि तो कहा मुए कहँ मारहु ॥
गहिरे सिंधु जाइ जिउ खोवा। अब मैं हाथ आपु सो धोवा ॥

मोहिं जियत नहिं सूझइ, पुनि वह रूप मिलाउ।
मुएँ कबहुँ सुरभौन महँ, हाथ आउ तौ आउ ॥

जबहिं कुँवर यह बात सुनाई। सुधुधि-बुद्धि सब गई हेराई ॥
परेउ जाइ मन तेहि अवगाहा। तीर ने देखि पाव नहिं थाहा ॥
कछू विचार हिए नहिं आवै। कुँअर पीर जेहि औषद जावै ॥
कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला। निराधार खेलैं तिन्ह खेला ॥
कहेसि उपाइ एक मति मोरी। मूँदिअ और बाट चहुँ ओरी ॥
जहवाँ सोइ सपन अस दीसा। ओही ठाँव हनहु पुनि सीसा ॥
मकु बिधि सोवत कर्म लगावै। बहुरि सोई सपना सो पावै ॥

लेहु कुँअर उपदेस यह, चेतहु चेत सँभारि।
आन पंथ नहिं दूसरा, दीख न हिएँ विचार ॥

परेवा खंड

कै सिव साज निपुंसक चारी। भिन्न सों आहि सों चित्र चित्रकारी ॥
बेगि चलाए चारिहु ओरा। ढूँढ़न चले सूर ससि जोरा ॥
औ समुझाइ कीन्ह पुनि बाता। जानत अहौं जाहि मन राता ॥
ताकर चाह कहै जो आई। जो माँगहि सो देउँ बँधाई ॥
चारौ चले चारि दिस भए। आपु आपु कहँ ढूँढ़न गए ॥
जल थल सागर मेरु सुमेरा। रन बन पुर पाटन सब हेरा ॥
जहँ तहँ भवहिं गेहँ बैरागा। दहुइन महँ कोइ होइ सुभागा ॥

बन धन गिरि सायर पटन, जहाँ सुनहिं नर नाम।
फिरि फिरि हेरहिं रैनि दिन, छिन न लेहिं बिसराम ॥

तिन्ह मँह अहा जो नाम परेवा। हिएँ सँवरि चित्रावलि सेवा ॥
उत्तर दिसा दीप अति भला। धौलागिरि पर्वत कहँ चला ॥
प्रथमहिं नगर कोट कर फेरी। काशमीर पुनि तिब्बत हेरी ॥
हरद्वार गै गंग अन्हावा। माँगी हींछा सिंभु मनावा ॥
सिरीनगर गढ़ देखि कुमाऊँ। खसिया लोग बसहिं तेहि गाऊँ ॥
पुनि बदरी केदार सिधारा। ढूँढ़ा फिरि फिरि सकल पहारा ॥
दुरगम देखि मगन कर देसा। चला ताकि नैपाल नरेसा ॥

बाँक कोट बसगित बहुत, औ चारिहुँ दिसि ताल।
अमर पुरी जानहुँ बसी, नाउ धरा नैपाल ॥

अतिहि अपूरब ताल सुहावा। इसिकंदर जुलकरन खनावा ॥
घाट बँधाये गच चिकनाई। चहुँ दिसि फेर आरसी लाई ॥
तिरहिं होइ पानी कर धोखा। देखि पिआस पाव संतोखा ॥
पुनि दुइ नदी सुहावनि बहीं। उत्तम वेदब्यास जस कहीं ॥
नागमती अहि मुख ते आई। बागमती नाहरमुख पाई ॥
तीरथ जानि जगत चलि आवा। अंग धोईं सब पाप नसावा ॥
बारह मास पटन पुनि घिरी। बरहौ मास जातरा भिरी ॥

नर नारी सुंदर सबै, ससि मुख अधर रसाल।
नैन परेवा थकित रह, देखि नगर नैपाल ॥

घर घर नगर लीन्ह तहँ फेरी। राउ रंक देखे तहँ हेरी ॥
रूप सरूप लोग सब आहा। सो न मिलै जा कहँ चित चाहा ॥
जहँ न होइ सो प्रान पियारा। बसत देस सब जानु उजारा ॥
चला नगर तजि पर्वत ओटा। परी दिष्ट एक कंचन कोटा ॥
हीरा रतन पदारथ मोती। जगमगाइ सब मानिक जोती ॥
कहेसि जाइ देखौं एहि ठाऊँ। लागत अतिहि सुहावन गाऊँ ॥
हिएँ चाउ मइ पाव न लावा। जोगी जाइ न नगर नियरावा ॥

आइ साँझ दिन नयर भो, लीन्ह अतीथ बोलाइ ।
धरमसाल जहँ हुत रचा, तहँ ले गए लिवाइ ॥

गै जोगी तहँ देखै काहा । अतिथि सहस एक बैठे आहा ॥
ठाढे सबै राउ औ राना । सेवा करहिं जैस मन माना ॥
भाँति भाँति पकवान जेंवावहिं । औ अपने कर पान खिवावहिं ॥
जो इच्छा मन माँगै कोई । बेगिहि आन पुरावैं सोई ॥
देखि अतीथ सबै गोसाए । सेवा कहँ चलि आगे आए ॥
आदर सहित आनि बैसारा । पहिलैं ले जल पाँव पखारा ॥
ता पाछैं लाए पकवाना । जेंउ गोसाईं जो मन माना ॥

जोगी कछू न जेंवई, पूछैं कहै न बैन ।
चरनै आनन चहूँ दिस, कीन्हें चंचल नैन ॥

जोगि न जेंवा रहे जेंवाई । काहू कहा कुँअर पहँ जाई ॥
धरमसाल एक जोगी आवा । चित चंचल बैराग जनावा ॥
नहिं जानहि दुहुँ का चित जानी । अन्न न खाइ पियै नहिं पानी ॥
पूँछे कहै न एकौ बाता । पियर बदन जस काहुक राता ॥
चंचल नैन चहूँ दिस हेरा । चरनै पुर आनन सब केरा ॥
पलक न लाउ जानु नहि सोवा । ढूँढत फिरै जानु कछु खोवा ॥
धरमसाल की नीत न होई । भूँखा जाइ इहाँ हुत कोई ॥

भइ आयसु ऐसी कहा, बेगिहि आनहु सोइ ।
मैं चूक्यों सेवा कछु, तातैं रिसि जिय होइ ॥

कुँअर पास तब जोगी आना । जोगी कुँअर देखि पहिचाना ॥
चित रहसा जानहुँ निधि पाई । कंथा महँ जोगी न समाई ॥
पीत बरन जु अहा भा राता । अति हुलास कंपेउ सब गाता ॥
देखि कुँअर आदर बहु कीन्हा । निकट पाट बैठन कहँ दीन्हा ॥
बिनती कीन्ह सुनो हो देवा । कस न धरम कै मानहु सेवा ॥
हम सेवक तुम्ह देव गोसाईं । सेवक हुते चूक बहु ठाईं ॥
रिस तजि जेंवहु जेंवन देवा । होउँ सनाथ आज तुम्ह सेवा ॥

कहेसि कुँअर सुनु धरम तरु, अस लागेउ तुअ भाग।
जरि पताल पालो सरग, हींछा फल तेहि लाग॥

जा दिन तें हम गुरु बिछोवा। अन्न न जेवा नींद न सोवा॥
भूख नाहिं औ नाहिं पियासा। नाउँ अधार रहइ घट साँसा॥
दक्खिन देस जान जिन्ह देखा। रूपनगर कबिलास बिसेखा॥
बसे गुरू तेहि नगर सोहावा। चेला देस बिदेस फिरावा॥
जोग अगिनि जब हिए प्रचारी। पल महँ कीन्ह भसम रिसि जारी॥
काया जोग अहै रिसि रोगू। जो रिसि करै सो नासै जोगू॥
कुँअर कहा कस देस तुम्हारा। औ को देस बसावन हारा॥

मो सौं देस बखान करु, कैस नगर कस भूप।
कौन लोग तहवाँ बसैं, पुनि गुन कौन अनूप॥

जोगी कथा कहन अनुसारी। सुनहु कुँअर यह बात रसारी॥
रूपनगर सो उत्तिम देसा। चित्रसेन जहँ राउ नरेसा॥
ऊँच नीच घर ऊँच उँचाए। चित्र कटाउ अनेक बनाए॥
धन[1] सो नग्र धन उत्तिम देसा। चित्रसेन जहँ राउ नरेसा॥
राउ रंक घर जानि न जाई। एक ते एक चाह अछवाई॥
बेल चँबेली कुंद नेवारी। घर घर आँगन फुलि फुलवारी॥
लीपे चंदन मेद अवासा। भीत बैठि तेहिं अलि बासा॥

मृगमद चोवा कुमकुमा, खोरि खोरि महकाइ।
सुर नर मुनि गंधरब सब, रहे सुबास लुभाइ॥

चित्रसेन अति राउ भुवारा। जस रवि तपै तेज मनियारा॥
जेहि घर विषम दिष्टि परि राई। बैरी तम जिनि जाइ बिलाई॥
बड़ परताप अखंडित राजू। अगनित हस्ति घोर दल साजू॥
गुन बिद्या सरि भोज न पावा। पँडितन्ह हिएँ हेत बहु लावा॥
दुखी न कोई सब सुख राता। जहँ तहँ चलै धरम की बाता॥

---

[1] यह उर्दू की प्रति में नहीं है।

सब सुखिया कोउ दुःख न जाना। ढूँढ़त फिरहिं लेइ को दाना॥
देस देस के राजा आवहिं। ठाढ़ तँवाहि बार नहिं पावहिं॥

महथ गरब अति मान तहँ, रहै न एकौ अंक।
रूप नगर की खोरि महँ, राउ होहिं सब रंक॥

तेहि घर पुनि चित्रावलि बारी। मात पिता की प्रान पियारी॥
रूप सरूप बरनि नहि जाई। तीनिहुँ लोक न उपमा पाई॥
दिनकर दिन पावै नहि जोरा। इन्द्र लजाइ देखि मुख ओरा॥
अमरकोष गीता पुनि जाना। चौदह विद्या करे निधाना॥
संतति आन न तेहि घर आवा। वाही एक ते सब चित लावा॥
भौंह चढ़ाइ जो कबहुँ रिसाई। मात पिता कर जिउ निसराई॥
औ जो चाह करै पुनि सोई। लेत देत कछु बरज न कोई॥

दखिन दिसा पुनि नगर के, सरवर एक खनाइ।
सखिन साथ चित्रावली, तहँ नित जाइ नहाइ॥

कहा सराहौं सरवर तीरा। पानि मोती तहँ काँकर हीरा॥
अति औगाह थाह नहिं पाई। विमल नीर जहँ पुहुमि देखाई॥
अति अमोघ औ अति बिस्तारा। सूझ न जाइ वारहु त पारा॥
घाट बँधाए कंचन ईंटा। सरग जाइ जनु लाग्यो भीटा॥
ऊपर ताल पानि जहँ ताईं। ठाँव ठाँव चौखंडि बनाईं॥
औ जहँ तहँ चौरा कै लीन्हें। निसि दिन रहहिं बिछावन कीन्हें॥
जहाँ एक छिन करै निवासा। सोई ठाँव होइ कबिलासा॥

सुख समूह सरवर सोई, जग दूसर कोउ नाहि।
मानुष कर का पूछिये, देवता देखि लोभाहिं॥

भीतर सरवर पुरइन पूरी। देखत जाहिं होइ दुख दूरी।
फूले कँवल सेत औ राते। अलि मकरंद पियहिं रस माते॥
बासर पदुम कुमुद रह फूला। सब निसि नखत चाँद रह भूला॥
तोरि कँवल केसर झहराहीं। केसरि बास आव जल माहीं॥
हंस झुंड कुरिलहि चहुँ ओरा। चकई चकवा पौरहिं जोरा॥

सँवरत ताहि सिरायो हीया। चातक आइ पानि सो पीया ॥
औ जित पंछी जल के आए। केलि करत अति लाग सोहाए ॥

रहसहिं क्रीड़ा वृन्द बस, भौंर कँवल फहराहिं ॥
निसि दिन होंहिं अनँद तहँ, देखत नैन सिराहिं ॥

सरवर तीर पछिम दिसि जहाँ। चित्रावलि की बारी तहाँ ॥
सीतल सघन सुहावन छाहीं। सूर किरिन तहँ सँचरै नाहीं ॥
मंजुल डार पात अति हरें। औ तहँ रहहिं सदा फर फरे ॥
तुरँज जँभीरी अति बहुताई। नेबू डारन गलगल जाई ॥
अमिरित फर औ दाड़िम दाखा। संतति जियैं निमिष जो चाखा ॥
नरियर और सोपारी लाई। कटहर बडहर कोऊ न खाई ॥
आँब जमुनि लै एक दिसि लाए। बर पीपर तहँ गनत न आए ॥

मूर सजीवन कलपतरु, फल अमिरित मधु पान ॥
देउ दइत तेहि लगि भजहिं, देखत पाइय प्रान ॥

कोकिल निकर अमिरित बोलहिं। कुँज कुँज गुंजत बन डोलहिं ॥
सारी सुआ पढैं बहु भाखा। कुरलहिं बैठि बैठि तरु साखा ॥
पवई आपन आपन जोरी। छकी फिरहि कुरलहिं चहुँ ओरी ॥
खंजन जहँ तहँ फरकि देखावैं। दहिअल मधुर बचन अति भावैं ॥
मोर मोहनी निरतहिं बहुताई। ठौर ठौर छवि बहुत सोहाई ॥
चलहिं तरहिं तहँ ठमुकि परेवा। पंडुक बोलहि मृदु सुख-देवा ॥
बहु करनास रहहिं तेहि पासा। देखि सो संग भाग जेहि बासा ॥

भंगराज औ भृंगी, हारिल चात्रिक जूह।
निसि बास तेहि बारि महँ, कुरलहिं पंछि समूह ॥

औ पुनि रहै माँझ जहँ बारी। चित्रावलि लाई फुलवारी ॥
सोन जरद नागेसर फूले। देखि सुदर्सन दिष्ट जो भूले ॥
जाही जूही अति बहुताई। अनबन भाँति सेवती लाई ॥
बनबेला सतबर्ग चमेली। रायबेल फूली सुखबेली ॥
करना केतकि बास नेवारी। चंपकली जनु कुंदि उतारी ॥

कदम गुलाब लाग बहु भाँती। औ बसाइ बकुचन की पाँती ॥
मौलसिरी फूली औ मूँदी। जनु सिंगार हरावलि गूँदी ॥

पौन बसेरा लेहि निसि, तेहि फुलवारी पास।
भोर भए जग प्रगटइ, तिन्ह फूलन्ह की बास ॥

ललित लवंग लता जहँ फूली। भौंरा भौंरि कुसुम तेहि भूली ॥
नगर नगर तहँ डगरै जूही। गंधराज फूलहिं संबूही ॥
कस्तूरी सुगंध बिगसाहीं। ठौर ठौर सौ अधिक बसाहीं ॥
भुइँ चंपा फूली बहु रंगा। मानहु दरसा रूप अनंगा ॥
सूरज भाँति भाँति अति राते। देखत बनै बरनि नहिं जाते ॥
उड़हिं पराग भौंर लपटाहीं। जनु बिभूति जोगिनि लपटाहीं ॥
मरकंडी भौंरन सँग खेली। जोगिन संग लागि जनु चेली ॥

केलि कदम नवमल्लिका, फुल चंपा सुरतान ॥
छ ऋतु बाहर मास तहँ, ऋतु वसंत अस्थान ॥

और पुनि जहाँ माँझ फुलवारी। तहँ चित्रावलि की चित सारी ॥
चंदन मेद कपूर मिलावा। इन्ह तिहुँ मिलि कै कीन्ह गिलावा ॥
हीरा ईंट लगाइ उँचाई। देखत बनै बरनि नहिं जाई ॥
चूनी चूरि कै कीन्हो खोहा। मोती चूरि गच्च जगमोहा ॥
अति निरमल जस दरपन कीन्हा। तहाँ जाइ पुनि आपु न चीन्हा ॥
मँदिर एक तँह चारि दुआरी। नगिन जरी पुनि लागु केवारी ॥
कनक खंभ तँह चारि बनाए। हीरा रतन पदारथ लाए ॥

ठौर ठौर सब नग जरित, अस होइ रहेउ अँजोर।
जँह न रैनि दिन जानिए, और न साँझ नहिं भोर ॥

तेहि महँ चित्रावलि गुन ग्यानी। आपु न चित्र लिखे अस जानी ॥
जौ लौं सखी दरस नहिं पावहिं। भोरहिं आइ सीस तेहि नावहिं ॥
और जो चित्र अहहिं तेहि माहीं। सो चित्रावलि की परछाहीं ॥
अस विचित्र केहि लावों जोरी। अस्तुति जोग जीभ नहिं मोरी ॥
वही रंग अपने रँग माहीं। ओहि के रंग और कोउ नाहीं ॥

सौंह न जाइ चित्र मुख हेरा। धन सो चित्र औ धन सो चितेरा।
मानुष कहा सो देखै पावैं। देखता जाहिं जो हारे आवैं॥

कोटि चित्र चितसारि महँ, देखत एकौ नाहिं।
जौं दिनकर उद्दोत ही, नषत सबै छिपि जाहिं॥

लखो लिलाट दूजि कर चंदा। दूजि छाड़ि जग वो कहँ बंदा॥
भौंह धनुष बरुनी बिषबाना। देखि मदन धनु गहत लजाना॥
बरुनी बान गड़े जेहि हीये। बहुरि न निकसै जब लहुँ जीये॥
लोचन विमल जानु सम जोवा। निमिख जो देख जनम भर रोवा॥
अधर सुरँग जनु खाए तँबोला। अबहीं जनु चाहै हँसि बोला॥
लंक छीन जेहि भृंग लजाहीं। कोउ कह आहि कोऊ कह नाहीं॥
फीली चरन सराहौं काहा। अबहीं रहसि चलै जनु चाहा॥

गुपुत रहै चित सारि महँ, जग जानै सब कोइ।
सपने जो कोइ देखई, सौंतुक जोगी होइ॥

सुनी कुँअर जो चित्र की बाता। हिए हुलास कँपेउ सब गाता॥
सचक भयौ चित औ मन गुना। सपन जो देखा सौंतुक सुना॥
सोवत भाग अहे सो जागे। श्रवन भए सुनि जाहि सभागे॥
मोहिं परतीति करम की नाहीं। कहत आहि कोउ सपने माहीं॥
जौ निहचय हौं सोअत अहौं। जनि जगाउ विधि हा हा कहौं॥
कौन घरी यह आह सुभागी। देखेउँ सोइ सुनेउँ सो जागी॥
कौन बार यह आह सरेखा। सखन सुना नैनन जो देखा॥[1]

यहि अंतर जनु बिरह अहि, बंधन देई छुड़ाइ।
विथुरि गयो विष सकल तन, लहरि चढ़ी जनु आइ॥

गुपत पीर परगट पुनि भई। सुलगत आगि फूँकि जनु दई॥
उठी आगि पालहु जरा। धाइ कुँअर जोगी पग परा॥
रहि न सकेउ हिय गह भरि रोआ। नैन नीर जोगी पग धोआ॥

---

[1] यह उर्दू की प्रति में नहीं है।

बिरह अनल जल मैं चखु ढरा। लोचन नीर जोगि तब जरा ॥
दुहूँ हाथ गहि सीस उठावा। पूँछत बात बकुर नहिं आवा ॥
साँप डसा जनु बिष छहराना। घूमत रहै सुनै नहिं काना ॥
दिष्टी भुअँग बंद जनु कीन्हीं। ते पढ़ि मंत्र खोलि जनु दीन्हीं ॥
तब जोगी कर नीर लै, मुख छिरकेसि करि हेत ॥
पहर एक बीते भयौ, बहुरि कुँअर चित चेत ॥

बहुरि जो कुँअरउ सोइ कै जागा। बैठ सँभारि गहिसि सिर पागा ॥
तौ पुनि कहिस ऊभ लै साँसा। ए देनिहार निरासहि आसा ॥
वोह सो चित्र जो मोहि दुख दीन्हा। बरबस जीउ मोर हरि लीन्हा ॥
जीउ लेइ तन दूरइ डारा। हौं तो वही चित्र कर मारा ॥
वही चित्र मैं सपने दीठा। चित्त माँहिं वहि चित्र बईठा ॥
वही चित्र बिनु जीउ बिहूना। जिउ हरि लीन्ह कीन्ह तन सूना ॥[1]
वही चित्र जो नैन समाना। सौं तुक सपन जाइ नहिं जाना ॥
वही चित्र हम हिए महँ, जो तैं कीन्ह बखान।
हौं अब रहा सरीर होइ, वह भो जीउ समान ॥

जेहि दिन तें नैनन भा लाहा। बहुरि न पायौं कतहूँ चाहा ॥
पंथन पावउँ केहि दिसि जाऊँ। पूछौं काहि न जानउँ नाऊँ ॥
मैं निरास औ बिनु जिउ आहा। आस दई तैं जिउ घट बाहा ॥
आजु आस तैं पुरएसि मोरी। तन मन धन नेवछावरि तोरी ॥
अब कहु पंथ गवन जेहि पावों। चलउँ बेगि खिन बिलँब न लावों ॥
तुम्ह जहँ चहहु सिधारहु तहाँ। मोहि अब कहहु पंथ सो कहाँ ॥
कै अब जाइ चित्र सो पावौं। कै अपान वहि पंथ लगावौं ॥
जिउ चितसारी महँ रहा, देह रही हम साथ।
देहु सोई उपदेस मोहिं, जेहि जिउ आवै हाथ ॥

जोगी कहा कुँअर सुनु बाता। अबहीं देखि चित्र तूँ राता ॥
वह सो चित्र तैं देखा नाहीं। जाकर ऐस चित्र परछाहीं ॥

[1] यह उर्दू की प्रति में नहीं है।

चित्र देखि तैं चित्रै जाना । ता महँ अहा सो नहिं पहिचाना ॥
चित्रहि महँ सो आहि चितेरा । निर्मल दिस्टि पाउ सो हेरा ॥
जैसें बूँद माँह दधि होई । गुरु लखाव तौ जानै कोई ॥
जा कहँ गुरू न पंथ देखावा । सो अंधा चारिहुँ दिसि धावा ॥
मूरख सो जो चित्र मन लावै । सेमर सुआ जैस पछतावै ॥

यह मूरति औ चित्र जग, जो बिधि सरा सुजान ।
परगट देखहि नैन यह, गुपुत जो पूजहि आन ॥

अति सरूप चित्रावलि बारी । जनु बिधिनै कर चित्र सँवारी ॥
चित्रहिं कहाँ जोति छबि ओती । वह सजीव यह बिनु जिउ जोती ॥
चित्र अबोल होइ जनु गूँगा । बोहि क बोल जस मानिक मूँगा ॥
चित्र कटाच्छ भाव बिनु नैना । बोहि क नैन सब मोहन सैना ॥
चित्र अडोल न डोल डोलावा । बोहि गौनत जनु हंस सोहावा ॥
सायक बरुनि भौंह धनु ताना । सौंरत जाहि लागु उर बाना ॥
चंद बदन तन चंपक सारी । अलि सँग फिरहिं जानि फुलवारी ॥

काहि लगावों उपम तेहि, अच्छर पूज न छाँहिं ।
सुर नर मुनि गन पचि मरहिं, दरसन पावहिं नाहिं ॥

बदन जोति केहि उपमा लावौं । ससिहर पटतर देत लजावौं ॥
ससि कलंक पुनि खंडित होई । है निकलंक सँपूरन सोई ॥
ससि बंदी जब दूजिक दीसा । ओहि बंदी नित देहिं असीसा ॥
जो मुख खोलि करै उजियारा । नखत छपाहिं होइ ससि तारा ॥
नैन कुरंग कहे नहिं पारौं । खंजन मीन ताहि पर वारौं ॥
तीन रंग जा महँ नित लहिए । तेहि कुरंग कहुँ कैसे कहिये ॥
जाकहँ नैन एकौ छन हेरा । सो बिष बान क भयौ अहेरा ॥

ऐसन चित्र अहेरिया, मारि न खोज करेइ ।
जेहि उर लागे बान सो, रहसि रहसि जिउ देइ ॥

औ तेहि संग अनेग सहेली । सबै सरूप अनूप नवेली ॥
उन्हक रूप बिधि अपुरुब कीन्हा । करि करि चित्र जानु जिउ दीन्हा ॥

कोउ कुसुदिनि कोउ पंकज कली। एकतें एक चाहे अति भली ॥
अबहीं सबै कली मुँह मूँदी। भौंर चरन तें बेलिन खूँदी ॥
सब चित्रिन औ पदुमिनि जाती। सेवा करत रहत दिन राती ॥
अग्या होहि करहिं पै सोई। मेटि न सकैं रजायसु कोई ॥
औ जिहि ठाँव करहिं बिसरामा। जपत रहहिं चित्रावलि नामा ॥

निसि बासर ठाढ़ी रहहिं, लीन्हें आपन साज।
जो पठवहिं सिष एक कहँ, धाइ करहि दस काज ॥

पुनि सो चित्र लिखे भल जाना। उनसों जगत न कोऊ सयाना ॥
आपन चित्र आपु पै लीखा। और को लिखे जान नहिं सीखा ॥
जगत चितेर रहे पचि हारी। ओकर चित्र न सकैं सँवारी ॥
जो कोई आपन चित आनै। अंतरजामी तबहीं जानै ॥
आपन चित्र छीन के लेई। औ तेहिं देस निकारा देई ॥
आपन चित्र जाहि लिख दीन्हा। ते सो घालि हिये मो लीन्हा ॥

एहि डर कोऊ न बीसरैं, अह निसि आठौ जाम।
लिये रजायसु नित रहहिं, जपत फिरहिं सो नाम ॥

औ तेहिं संग निपुंसक जाती। पठवैं जहाँ जाहिं ले पाती ॥
गुन विद्या सब जाना बूझा। निरमल दिष्टि पंथ भल सूझा ॥
अन्न न खाहिं पानि नहिं पीयहिं। नाउँ अधार रैनि दिन जीयहिं ॥
काम क्रोध तिसना मन माया। पंच भूत सौं तिन्ह की काया ॥
अग्या काज बिलंब न लावा। करहिं सोइ जेहिं दोष न पावा ॥
सब की बात जनावहिं जाई। अग्या होई कहहिं सो आई ॥
अग्या बिना पैग जो धरहीं। अनल तेज सिखा लहि जरहीं ॥

दूरि रहहिं तेहिं गनत नहिं, निकट रहहिं ते चारि।
रचना सिरजनहार की, नावै पुरुष न नारि ॥

हौं तेहि माहँ परेवा नाऊ। सेव करौं चित्रावलि ठाऊँ ॥
वह सो गुरू हौं आकर चेला। वहिक नाउ हम मुँदरा मेला ॥
वही पंथ मोहि दीन्ह देखाई। वेहि के वचन सिद्धि मैं पाई ॥

औ सुमिरन दीन्ही वोहि कैरी। वेहि क नाउँ सुमिरौं हरि फेरी ॥
भूख नाहिं औ नींद पियासा। चित्रिनि सुरति ध्यान घट आसा ॥
भा अग्या करि साज महेसू। दिन दस फिरहुँ देस परदेसू ॥
जौ लगु फिरत होइ नहिं रोगी। तौ लगि सिद्ध होइ नहिं जोगी ॥

भसम अंग पग पाँवरी, सीस कलपि करि केस।
कंथ पहिरि लै दंड कर, देखन निसरयौं देस ॥

सुनत कुअँर जोगी के बैना। उघरे दोऊ हिये कै नैना ॥
मन महँ कहेसि साँचु यह साजा। वह सो कौन जा कर उपराजा ॥
जेहिक चित्र अस जिउ लेनिहारा। दुहुँ कस होइहि सिरजनहारा ॥
साजा होई मेटि पुनि जाई। सिंभू सरीर न कोऊ मिटाई ॥
जौ न आपु आपहि पहिचाना। आन क पेम कहाँ हुत जाना ॥
जैसे कुबुध जानि कै देवा। बहुत करहिं पाहन की सेवा ॥
पाहन पूजि सिद्धि किन पाई। सेमर सेइ सुआ पछिताई ॥

कस न बूझि खोजौं सोई, जेहि क चित्र सब कीन्ह।
जीउ देई जो चाहई, लेइ जो चाहै लीन्ह ॥

कुअँर कहा अब सुनहु परेवा। मैं तोर सीख मोर तैं देवा ॥
मैं तजि पंथ जात बौराना। तैं गहि बाँह पंथ पर आना ॥
बूड़त मोर नाउ मँझनीरा। तूँ खेवक होइ लाइसि तीरा ॥
सोअत हौं जो अहा सो जागा। मन तजि चित्र चितेरहिं लागा ॥
चित्र देखि न चितेरा जाना। बिनु चितेर अब दिष्टि न आना ॥
अब फिरि कहु चित्रावलि बाता। जेहि के रूप आजु मन राता ॥
सुनतहि नाम दूरि भइ दाहा। दहुँ मुख देखत होइहै काहा ॥

मरत जियाए जोइ कहि, फिरि फिरि कहु सो बात।
सुनिबे कहँ अमिरित कथा, श्रवन भए सब गात ॥

जोगी सँवरि कहै पुनि बाता। वह चित्रावलि जेहि रंगराता ॥
बदन मयंक मलयगिरि अंगा। चंदन वास फिरहिं अलि संगा ॥
जो अलि अंग वास वह पाई। सो तजि आन फूल नहिं जाई ॥

बहुतन्ह सिर करवट गहि सारा। हिंछा करि लघुकर औतारा॥
बहुत नाउँ सुनि जोगी भए। मूँड़ मुँड़ाइ देसंतर गए॥
ससि सूरज औ नषतन पाँती। बरने होहिं दिवस औ राती॥
भूषन सोभ पाव तेहि अंगा। ताते निसि दिन छाड़ न संगा॥

चाँद न सरवर पावई, रूप न पूजै भानु।
अब सुनु तन मन कान दै, नख सिख करौं बखानु॥

प्रथमहिं कहौं केस की सोभा। पन्नग जनों मलयगिर लोभा॥
दीरघ बिमल पीठि पर परे। लहर लेहिं विषधर विष भरे॥
कच अहि डसा जनम नहिं जागा। मंत्र न मानै मूरि न लागा॥
बिथुरी अलक भुअंगिनि कारी। कै जनु अलि लुबुधे फुलवारी॥
कै जनु बदन तरनि जौ तपा। सिमिटि सुमेरु पाछु तम छुपा॥
किमि कच बरनौं राजकुमारा। मति न समाइ देखि अँधियारा॥
मृग-मदवास आव तेहि केसा। पौन जाइ लइ देस बिदेसा॥

सिरजी तब विधि स्यामता, जब जग सिरजै लीन्ह।
ते कच सिरजे सार लै, सेष बाँटि कै दीन्ह॥

सीस सिंगार माँग बिधि कीन्ही। तातें ठाउँ माँग पर दीन्ही॥
सूर किरन करि वालहि धारा। स्याम रैनि कीन्ही दुइ फारा॥
पंथ अकास विकट जग जाना। को न जाइ वोहि पंथ भुलाना॥
तहाँ देखि अलकावरि फाँसा। पंथिन्ह परा जीउ कर साँसा॥
जिउ परतेजि चलहिं तेहि माहीं। और बाट नहिं केहि दिसि जाहीं॥
बेनी सीस मलयगिरि सीसा। माँग मोति मनि माथे दीसा॥
सूर समान कीन्ह बिधि दीया। देखि तिमिर कर फाट्यो हीया॥

स्याम रैनि मँह दीप सम, जेहि अँजोर जग होइ।
अछुज भुअंगम माँहि बसि, दिया मलीन न होइ॥

पुनि लिलाट जस दूजि क चंदा। दूजि छाड़ि जग वह कहँ वंदा॥
पटतर दूजि होति जौ होती। दूजि माँह पुँन्यों कै जोती।
भाग भरा अस दिपै लिलारा। तीनहुँ भुवन होइ उजियारा॥

होइ मयंक खीन जेहि रीसा। सो लिलाट कामिनि पहँ दीसा ॥
कुंदन तिलक सोभ कस पावा। मनहुँ दुइज माँ जीउ मिलावा ॥
मुकुता पाँति चहूँ दिसि पाई। मानहु मिली किरितिका आई ॥
जाहिं लिलाट भाग मनि होई। अस सँजोग सुभ देखै सोई ॥

सुभ सँजोग वहि एक छिन, जा कहँ सनमुख होइ।
जौ जग लागै गरह जिमि, बार न बाँके कोइ ॥

कुटिल भौंह जानों धनु ताना। इंद्रधनुष तेहि देखि लजाना ॥
जानहु काल जगत कहँ कढ़ा। निसि दिन रहै पयच जनु चढ़ा ॥
भौंह फिराइ जाहि तन हेरा। देखत काल होइ तेहि केरा ॥
एही धनुष जुध मनमथ लीता। कै परनाम काम तन जीता ॥
भौंह धनुष लखि इंद्र सँकाना। सब जब जीति सरग कहँ ताना ॥
कौन सो बली जो न गै मारा। तिनहुँ लोक एक हुंकारा ॥
ऐस धनुष जग और न दूजा। देवतन्ह आइ बाहुबल पूजा ॥

अहिपुर नरपुर जीति कै, सुरपुर जीतो जाइ।
अब दहु कछू न जानिये, का कहँ धरे चढाइ ॥

बाँके नैन तीष अति दोऊ। जगत जाहि सर पूजि न कोऊ ॥
राते कौल मधुप तेहि माहीं। कहत लजाउँ तेउ सर नाहीं ॥
कौल देखि ससिहर कुम्हिलाने। ए ससि संग सदा बिगसाने ॥
स्याम सेत अति दोऊ सोहाए। खंजन जानु सरद रितु आए ॥
कै दुइ मिरिग लरत सिर नीचे। काजर रेख डोर गहि घींचे ॥
दोउ समुंद्र जनु उठहिं हलोरा। वह महँ चहत जगत सब बोरा ॥
तीछे हेर जाहिं चषु आछें। चली मीन जनु आगें पाछें ॥

बर कामिनि चषु मीन सम, निमिष हेर तन जाहि।
बहुरि जनम भरि मीन जिमि, पलक न लागै ताहि ॥

बरुनी बान तीख अरु घने। सोई जानु जाहि उर हने ॥
मद सिराय ते भाल सँवारे। जाके हने सबै मतवारे ॥
तापर बिष काजर सौं बाँधा। सोई मरै जाहि तन साँधा ॥

लाग न बरुनि बान जेहि हीया । सो जग माँह अमिरथा जीया ॥
जेते अहैं जीव जग माहीं । साधन जाइ बान सो खाहीं ॥
जगत आइ होइ रहा निसाना । मकु हौं सौंह मारि तेहि बाना ॥
गलि गलि हाड़ रहे जो आई । बैठ जो लागि जाइ तो जाई ॥

एक मूँठ के छाड़ते, लागे बान अलेख ।
जग महँ ऐसन पारधी, दूसर काहु न देख ॥

सुभग सरूप सुरंग अमोला । जनु नारँग बरनारि कपोला ॥
ईंगुर केसर जानु पिसाए । दोऊ मिलाइ कपोल बनाए ॥
और सो देखि कपोल लुनाई । मती हीन कछु बरनि न जाई ॥
तेहि पर तिल सो देइ अस सोभा । मधुकर जानु पुहुप पर लोभा ॥
कै बिधि चित्र करत कर धरे । करत उरेह बूँद खसि परे ॥
बदन सिंगार सोभ जो पावा । रहेउ न दिन पुनि सो न उचावा ॥
वह तिल जाहिं दिष्टि तल परा । भयो स्याम तस तिल तिल जरा ॥

नहिं चीन्हत कोउ काहु कहँ, जो जग माहिं न होति ।
परछाहीं तिल एक की, सब नैनन्ह महँ जोति ॥

किमि बरनौ नासिका सोहाई । नासिक सुनि मति नियर न जाई ॥
खरग धार कहि आवै हाँसी । कौन खरग जेहि उपमा नासी ॥
तिलक फूल कबितन्ह चित धरा । उहो लजाइ पुहुमि खस परा ॥
इह रुआँर पुनि कीर कठोरा । उपम देत मन मान न मोरा ॥
उह सुर मौन जगत उपराई । ससि सूरज जहँ उदै कराई ॥
तेहि पर हेरि रही मति मोरी । उपमा नहिं केहि लावौं जोरी ॥
बेसरि जो पहिरे रहसाई । नग कुंदन छबि पाउ सोहाई ॥

मुकुता डोलत निरखि मन, सुर नर इहै गुनाहिं ।
कहत सुहागिनि नासिका, तिहुँ पुर पटतर नाहिं ॥

अधर सुधा निधि बरनि न जाई । बरनत मति रसना पनियाई ॥
छुए न काहु अछूते राखे । प्रेम दिष्टि मुख अजहुँ न चाखे ॥
विद्रुम अति कठोर औ फीके । सुरँग मृदुल दुखदायक जीके ॥

बिंब अरुन सो सरि न तुलाना। अति लजान बन जाइ दुराना ॥
बदन मयंक जगत उँजियारा। अमिरित अधर प्रान देनिहारा ॥
का बरनौं का मति भइ मोरी। उत्तम अधम लगाएउँ जोरी ॥
ससि अमिरित देवतन्ह कै जूठा। जगत जान यह अधर अनूठा ॥

लोयन जाहि कटाच्छ सर, मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन तब खिन दोऊ, अमिय सींचि जिउ दीन्ह ॥

दसन जानु हीरा निरमरे। बदन आनि मुख संपुट धरे ॥
इक इक नग दुहुँ जग कर मोला। जो जिअ देइ कहै सो खोला ॥
पान खात कछु भए उघारे। दिष्टि परे मजुल रतनारे ॥
जनु दुइ लर मुकुता रँग भरे। मंजन लागि आइ मुँह धरे ॥
कै देवतन्ह ससि कीन्ह कियारी। अमिरित सानि बारि अनुसारी ॥
दाडिम बीज तहाँ लै बोए। रखवारे राखे अहि पोए ॥
निसि बासर ते निकट रहाहीं। मकु सुक पिक खंजन चुनि जाहीं ॥

इक दिन बिहँसी रहसि कै, जोति गई जग छाइ।
अबहूँ सौंरत वह चमक, चौंधि चौंधि जिय जाइ ॥

तेहि भीतर रसना रस भरी। कौंल पाँखुरी अमिरित भरी ॥
दसन पाँति मँह रही छिपानी। बोलत सो जनु अमिरित बानी ॥
बोलत बैन अमी जनु चूआ। सुनत जिये बरघन कर मूआ ॥
जे मन अहि कुंतल के खाए। बोलि बोलि धन सबै जियाए ॥
जाके स्रवन बचन उन डारा। ताकर बचन जीउ देनिहारा ॥
उकतिन बोलत रतन अमोली। आँब चढ़ी जनु कोइल बोली ॥
व्याकरनौ जानै संगीता। पिंगल अमर पढ़हि पुनि गीता ॥

रहहिं रैनि दिन बास मह, चित्रिनि चखु औ बैन।
त्यों त्यों रस न जियावई, ज्यों ज्यों मारहिं नैन ॥

आँब सूल सम ठाढ़ी भई। वह आमिल यह अमिरित भई ॥
तेहि तर गाड़ अपूरब जोवा। पाक आँब जनु अँगुरी टोवा ॥
पाका आँब गात पियराना। वह कुमकुम जनु ईंगुर साना ॥

चिबुक कूप अति नीर गँभीरा। बिंब अधर सँजीव जेहि नीरा ॥
अमिरित कुंड अगल औगाहा। जो तहँ परा निकास न चाहा ॥
ताहि कूप ढिग रहस न जाहीं। बूड़न कहँ मुनि लाल कराहीं ॥
परहिं जाइ मन रहइ न देई। कुंतल काँट काढ़ि कै लेई ॥

नैन पियासे रूप जल, पीवत जेहि न अघाहिं।
कूप चिबुक जो मन परै, बूड़ि बूड़ि रहसाहिं ॥

सिंधु सुता सम स्रवन अमोला। जलसुत बचन लागि जिमि खोला ॥
जे अमोल नग जगत बखाने। नारि स्रवन महँ सबै समाने ॥
ग्यान बात बिनु आन न सुना। सुनत मोति तबहीं सिर धुना ॥
निसि दिन मुकता इहै गुनाहीं। खंजन झाँकि झाँकि जिमि जाहीं ॥
कंचन खुटिला जा न बखाना। गुरु सिष देइ लागि ससिकाना ॥
राहु जुद्ध कहँ सपरि निसंका। दुहुँ कर लीन्हें सेलि मयंका ॥
औ पुनि सोभै खुमी सोहाई। अबही तरिवन चढ़ा न जाई ॥

कमल दसन खँभिया दोउ, सोऊ पट तर नाहिं।
एक छिन देखैं जनम भरि, खुभी रहैं जिउ माहिं ॥

अब सुनु बरनौ गींव सुहाई। बिधि कर चाक भँवाइ चढ़ाई ॥
अँगुरिन बीच रही जो रेखा। सोइ चीन्ह रेखा तहँ जो देखा ॥
केलि समै कौतर की रीसा। तत छिन चलो लाइ भुइँ सीसा ॥
नाचत, मोर गींव सर जोवा। तबहीं सीस पाइ धरि रोवा ॥
संख न सम भा साँझ सँकारा। तातें जहँ तहँ करै पुकारा ॥
तब ही छरन जान अपछरा। भूषन ताग न बाँधै छरा ॥
वोही कंठ जानु जिन्ह दीठी। अमिरित चाहि न पूरै मीठी ॥

सोहत हाँस जराउ गर, बदन हेठ निकलंक।
सर न मयंक सूर जनु, दुरत राहु के संक ॥

दीरघ बाहु कलाई लोनी। अति सुंदर जग भई न होनी ॥
दुहुँ पौनाल सोऊ सर नाहीं। तातें रंध कलेजे माहीं ॥
सुभ्र भुजन पर टाँड सोहाई। टाँड तहाँ छबि पाव सनाई ॥

देखि धुनहि गन गंध्रब माथा। एक सो इंद्र वज्र पुनि हाथा ॥
देखि सो मंजुलि सुभ्र कलाई। को न गयो बनफलै सिधाई ॥
वहि संग देखु जो जुरी हथोरी। कौल पाँखुरी ईंगुर बोरी ॥
विद्रुम वेलि सो अँगुरी दीसी। वह कठोर यह मुंगफली सी ॥

अँगुरिन मुँदरी जरित की, सोह छला प्रति पोर।
अमीकरन नग आँखि जनु, गाँठि कनक कै जोर ॥

होत उतंग सिहन निरमरे। एक डारि दोइ नारँगि फरे ॥
कनक कटोरा दुइ गुन भरीं। संकर पूजि उलटि जनु धरीं ॥
झीने पट महँ झलकत दीसी। जनु भीतर द्वै कँवल कली सी ॥
मुकुताहल बिच सोभा कैसी। चकवा छवा बिछुरि जनु बैसी ॥
होत उतंग दोऊ अति लोने। जनु द्वै बीर छत्रपति होने ॥
अबहीं छत्र सीस नहिं छाजू। छत्रिन जहाँ तहाँ कर साजू ॥
दान दुंद जोरी गुन भरी। दुई जनु डँका उलटि कै धरी ॥

गढ़पति हयपति दुरदपति, सुनि कुच कथा अकाथ।
होइ भिखारी सब चहहिं, जाइ पसारन हाथ ॥

रोमावलि अबहीं उर छीनी। बरनि न सकै दिष्टि मति हीनी ॥
संधि सुमेरु लही अहि पोवा। सीतल ठाँव पाइ जनु सोवा ॥
अमिरित अधर बास सुनि माती। उर जनु चढ़ी पपील क पाँती ॥
द्वै नृप सींव लागि रिस बाढ़ी। रतिपति आनि लीक जनु काढ़ी ॥
सौरत रोमावली सोहाई। हेवर जाइ दरलि सो खाई ॥
पाँहन हिए जोरि वहि दीसी। होइ लीक वह पाहन कीसी ॥
नींद न परी जनम भरि जागा। जिन्ह नैनन्ह होइ रही सरागा ॥

खैंची लीक हदीस की, विधिना हिएँ विचार।
तिहुँपुर रोमावलि सरी, आन न दूजी नार ॥

नाभि कुंड पुनि अति गहिराई। जब चित चढ़ै बूड़ि जिउ जाई ॥
सिंधु भौंर जहँ पानि फिरावा। तहँ परि जनम निकास न पावा ॥
बिगसत पंकज कली सोहाई। अजहूँ भौंर बास नहिं पाई ॥

छीर सिंधु मथनी जब काढ़ी। नाभि भौंर आही जहँ ठाढ़ी ॥
नैंनूँ ते कोमल सो ठाऊँ। जीभ कठोर लेउँ का नाऊँ ॥
रोमावलि सोभा तेहि पासा। नैनूँ ते जनु बारि बिकासा ॥
जासौं ग्यान हाथ मा हीना। जनमत धाइ नार किमि छीना ॥

नारि पेट जेहि अंत नहि, बारिधि गहिर गँभीर।
नाभिकुंड मन जो परै, बहुरि न निकसे तीर ॥

पातर पेट कहै का कोई। जनु बाँधी ईंगुर की लोई ॥
मनहु महाउर दूध सौं पागा। संतत रहै पीठि सौं लागा ॥
छीर न पियै अतिहि सुकुवारा। कै तँबोल कै फूल अधारा ॥
बिनु रस पान आन नहि खाई। सोऊ भिकल करै अधिकाई ॥
तेहि तर त्रिबली अति सुख देई। गढ़ी त्रिधातै काम पसेई ॥
सोभित तीनौ रेख सोहाई। तीन भुवन नहिं उपमा पाई ॥
सिसुता जानि तरुनता मिली। तीनौं रेख खाँचि कै चली ॥

सिरजत भार नितंब के, मिलत न कीन्ह सँबंधि।
मनु कटि राखे बाँधि के, त्रिवली बँधन बंधि ॥

अति सुकुवाँरि लँक पुनि छीनी। दिष्टि न परै बारहु तब खीनी ॥
देखत सकुचै देखनहारा। टूटि न परै दिष्टि कै भारा ॥
काम कला दुइ साँचै भरी। सकल सोहाग जोरि जनु धरी ॥
बिधिनै तोरि जोरि पुनि लीन्हे। तातें नाउँ निगम कटि कीन्हे ॥
अपने थल भूखे केहरी। कोउ कहै कटि तिन्ह की हरी ॥
देखि लंक भृंगी कटि टूटी। भँवति फिरै जनु संपति लूटी ॥
तहँ सोहै किंकिनि कटि कसी। काछे जनु आहै उरबसी ॥

सोभित किंकिनि निकट कटि, मान उपम जी आइ।
हंस पाँति तजि मानसर, परबत बैठे जाइ ॥

सुभ्र नितंब नितंबनि केरे। गए हेराइ सोई जनु हेरे ॥
जनु संगम दुइ परबत अहहीं। एक बार के बाँधे रहहीं ॥
तेहि पर कटि सोभित निरमरी। जनु सिंहिनि गिरि ऊपर धरी ॥

दुइ गिरि सम दोउ मगु जहँ नाहीं। चित के चरन चढत बिछलाहीं ॥
मति नितंब बरनत झिझकाई। मति की दिष्टि न आगे जाई ॥
परगट सो कवि कीन्ह बखाना। गुपत सो अंतरजामी जाना ॥
जहाँ जात मन पिंडुरी काँपी। तहँ की बात रहो सब झाँपी ॥

गुपत जो रचना बिधि रची, परगट नहिं होनिहार।
ग्यान तहाँ नहिं संचरै, जानै सिरजनिहार ॥

पुनि जंघा अति सुंदर साजी। जुगल जंघ तिहुँ लोक बिराजी ॥
केरा खंभ कलभ कर हेरी। जंघ निकट वे दोऊ करेरी ॥
अति सुंदर सम तूल सुहाए। जनु बिधि अपने कर चिकनाए ॥
सुरति करत सुख संगति हरी। मन की दिष्टि थलकि तहँ परी ॥
गौन समै जनु चमकत चूरा। हंस गयंद गरब धरि चूरा ॥
सीस धुनै गज लज्जित भए। हंस मानसर बूड़न गए ॥
छवाछीन भूषन छबि हरी। पायल आइ पाय लै परी ॥

चकइ जराऊ जेहरी, जेहरि जिउ लै जाइ।
सुर नर हैं झाँझर भए, देखि सो झाँझरि पाइ ॥

चरन कँवल पर मन बलि गये। जेहि मगु चलै तहाँ रज भए ॥
मकु तेहि पंथ गौन पुनि करई। भूलि पाँव इन्ह नैनन धरई ॥
तरवा ऊधरेख सुभ बाँची। सुरनर हिये लीक जनु खाँची ॥
जेहि जेहि पंथ चरन तें चले। लेते हिये पाँय तर मले ॥
रकत लाग रह पायन संगा। जानहिं लोग महाउर रंगा ॥
चलत चरन भुईं परै न देहीं। सुर नर मुनि नैनन पर लेहीं ॥
अनवट बिछिया अंगुरिन भरे। मैन सोनार रतन नग जरे ॥

जेहिं चित्र चित्रावलि चरन, चित्र किये बिधि आनि।
ते चषु मगु बाहर कियो, हिये सरोवर पानि ॥

वह चित्रावलि आहै सोई। तीन लोक बंदै सब कोई ॥
सुर पुर सबै ध्यान ओहि धरहीं। अहिपुर सबै सेव तेहि करहीं ॥
मृतुमंडल जो देखा हेरी। घर घर चलै बात तेहि केरी ॥

पंछी वहि लगि फिरहिं उदासा। जल के सुत ओहि नाउँ पियासा ॥
परबत जपहिं मौन होइ नाऊँ। आसन मारि बैठि एक ठाऊँ ॥
पुहुमी दहु जो सरग लहु बाढ़ी। सेवा करतहिं एक पग ठाढ़ी ॥
जानि बूझि जो ताहिं बिसारा। सो मनु जियतहिं मरा अडारा ॥

अति सुरूप चित्रावली, रवि ससि सर न करेइ।
धन सो पुरुष औ धन हिया, ओहि क पंथ जिउ देइ ॥

भए सुनत चित्रावलि बरना। कुअँर नैन परबत के झरना ॥
गयो चेत चित रह्यो न ग्याना। जनु एहि सागर लच्छ हेराना ॥
माथें चढी लहर जनु आई। बिसम्हरि परा पुहुमि मुरझाई ॥
गहि जोगी पुनि कुँअर उठावा। खेह झारि सन्मुख बैठावा ॥
कहेसि कुँअर कस भए अचेता। बैठु सम्हारि हियें करु चेता ॥
एकौ बात कहै नहिं पूछी। जनु गा जीउ देह भइ छूछी ॥
मूँदे नैन साँस पुनि लेई। सुनै न कछू उतर नहिं देई ॥

प्रेम मंत्र जोगी कहै, कुँअर स्रवन महँ तब्ब।
सुनत नाउ चित्रावली, निजन गयौ विष सब्ब ॥

जबहि कुँअर जागा पुनि सोई। गहिसि पाउ जोगी कर रोई ॥
सो तुम रूप बखाना देवा। भइ मनसा होइ उड़उँ परेवा ॥
पुनि मन महँ अस होइ गियाना। जाउँ कहाँ जो पंथ न जाना ॥
कहु सो केहि दिसि नगर अनूपा। जहाँ बसै वह नारि सुरूपा ॥
चलौं न करौं बिलँब एक घरी। निहफल जाइ घरी जो टरी ॥
और न मोरे हियें विचारा। सीस मोर औ चरन तुम्हारा ॥
किंचित रैनि जाइ तहँ ताईं। चरन लाइ लै चलहु गोसाईं ॥

लोचन रहै चकोर होइ, हिया सकल उनमाद।
मकु ससि मुख चित्रावली, देखौं तुव परसाद ॥

कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला। अस जनि जानु हँसी औ खेला ॥
अगम पहार विषम गढ घाटी। पंखि न जाइ चढै नहिं चाँटी ॥
खोह घराट जाइ नहिं लाँघी। देखि पतार काँपि नर जाँघी ॥

जाइ सोंई जो जिउ परतेजा। सार पाँसुली लोह करेजा॥
तैं अबहीं घट आप न बूझा। बार देखि पिछवार न सूझा॥
बैठे देइँ न सेंध पिछवारे। मूँसहिं तसकर घर अँधियारे॥
तैं दै बार रहा गहि कूँजी। रही न एकौ घर महँ पूँजी॥

निसिबासर सोवहि परा, जागेसि नहिं पल आध।
घर न सँभारसि आपना, का लेबे एहि साध॥

एहि पगु केर करै जो साधा। चलत निचिंत न होइ पल आधा॥
चाहै चरन चुभै जो काँटा। चलै बराइ मारग नहिं छाँटा॥
जो पल एक कोऊ बिलमावै। साथ जाइ पुनि पंथ न पावै॥
एहि मगु माहँ चारि पुनि देसा। जस जस देस करै तस भेसा॥
चारिहुँ देस नगर है चारी। पंथ जाइ तेहि नगर मँझारीं॥
चारिहु नगर चारि पुनि कोटा। रहहिं छिपे एक एक के ओटा॥
जो कोऊ जान न चार बिचारा। बीचहिं मार लेहिं बटमारा॥

चारि देस बिच पंथ सो, अब सुनु राजकुमार।
बेगर बेगर बरन गुन, जस कछु तहँ ब्यवहार॥

प्रथम भोगपुर नग्र सोहाया। भोग बिलास पाउ जहँ काया॥
दुइ दुआर कर कोट सँवारा। आवागमन यही दुइ बारा॥
पुनि दूनहुँ दिसि अपुरुब हाटा। अनबन भाँति पटन सब पाटा॥
जो कछु चाहिय सबै बिकाई। मिरतक देखि जीभ ललचाई॥
कहूँ पंच अमिरित जेवनारा। कहूँ सुगंधि करै महकारा॥
कहूँ नाच कहुँ कथा अनूपा। कहुँ मिरदुल अति ससिहर रूपा॥
इंद्रपुरी जनु चहुँ दिसि छाई। जो आवाँ सो रहा लुभाई॥

घर घर मोहन जानहीं, पंथहिं बस कै लेहिं॥
माया रूप देखाइ कै, आगे चलै न देहिं॥

बसै सोई ओहि नगर मँझारी। लेखा जानि होइ बैपारी।
सूधें मारग आवै जाई। माँटो लेखें बिषै पराई॥
सौं देखै जेहि दोष न पावा। सुनै सोई जो पँडित सुनावा॥

मिलि कै पाँच देहिं जेउनारी। भुगतै ताहि सोइ बैपारी ॥
आपन अंस माँगि कै लेई। राज अंस बिनु माँगे देई ॥
पाँच जूनि कै राजजोहारू। करत रहै जस जग व्यवहारू ॥

धरै छोह चित नेह सौं, रिस की ठौर रिसाइ।
ऐसी चलन चलावहि, तेहि भल पाँच कहाइ ॥

पंथी जेंहि आगे है जाना। सो व्यवहार कहौं करु आना ॥
अंध होइ तस मूँदे नैना। बहिर होइ तस सुनै न बैना ॥
रसना मौन होइ नहि भाषा। षट रस अमी न पावै चाषा ॥
मूँदै नास साँस नहिं आवै। काम क्रोध कै छार जरावै ॥
दुष्ट के हनत न पाछे टरई। पगु जो उठाइ आगु मन धरई ॥
बिलँब न लावै मन जग मंदा। निसरै तोरि मौन जिमि फंदा ॥
पंथी जो ओहि बार लहु जाई। आपु केवार उघारि कै जाई ॥

चित रहसत पट ऊघरत, मिटै नैन अँधियार।
जैसें बीतै स्याम निसि, होइ बिमल भिनुसार ॥

आगे गोरखपुर भल देसू। निबहै सोई जो गोरख भेसू ॥
जँह तँह मढी गुफा बहु अहहीं। जोगी जती सनासी रहहीं ॥
चारिहु ओर जाप नित होई। चरचा आन करै नहिं कोई ॥
कोउ दुहुँ दिसि डोलै बिकरारा। कोऊ बैठि रह आसन मारा ॥
काहू पंचअगिन तप सारा। कोऊ लटकइ रूखन डारा ॥
कोऊ बैठि धूम तन डाढे। कोउ बिपरीत रहै होइ ढाढे ॥
फल उठि खाहिं पियहिं चलि पानी। जाँचहि एक बिधाता दानी ॥

परम सबद गुरु देइ तँह, जेहि चेला सिर भाग।
नित जेहिं ड्योढ़ी लावई, रहै सो ड्योढ़ी लाग ॥

ताहि देस बिच आहि सो पंथा। चलै सोई जो पहिरै कंथा ॥
तेल नाहिं सिर जटा बरावै। रजक नासि जे बसन रँगावै ॥
भसम देह पग पाँवरि होई। एहि मग बिकट चलै पै सोई ॥
मेखलि सिंगी चक्र अधारी। जोगौटा रुद्राष धँधारी ॥

भल मँद बसैं तहाँ इक भेसा। होइ बिचार न राँक नरेसा॥
एही भेष सिद्ध बहु अहहीं। एही भेष बहुत ठग रहहीं॥
एही भेष सों बहु ठग आए। एही भेष सों बहुत ठगाए॥

जो भूले एहि भेष जग, खुले न तेहि हिय आछ।
आगे चलैं न तहँ रहैं, वरु फिरि आवैं पाछ॥

जो कोउ आगे चाहै चला। परगट देह भेष सो रला॥
पै अंतर सब जानै धंधा। भेष पत्याइ सोई जग अंधा॥
घटही माँहि भेष सो लेखै। हिय के लोचन मारग देखै॥
काया कंथा ध्यान अधारी। सींगी सबद जगत धंधारी॥
लोचन चक्र सुमिरनी साँसा। माया जारि भस्म कै नासा॥
हिय जोगोट मनसा पाँवरी। प्रेम बार लै फिरि भावरी॥
परगट भेख तहाँ दइ डारै। आगे चलै सो पँवरि उघारै॥

रहहि नैन जो जोति बिनु, खीपक पहिल मिलानु।
पुनि ससिहर सम दूसरे, होहिं तीसरे भानु॥

आगे नेह नगर भल देसू। राँक होइ जँह जाइ नरेसू॥
भूलै देखि देस की सोभा। जँह वहिं देखतही चित लोभा॥
जाइ तहँहिं जँह कोइ लै जाई। ऊँच खाल सम एक देखाई॥
खाइ सोई जो कोई खिआवै। विष अमिरित एक स्वाद जनावै॥
भल औ मंद दोऊ एक लेखा। दुइ न जान सब एक कै देखा॥
मारि मारि जिय राख न कोऊ। रहस न होउ किए कछु छोऊ॥
उतर न देइ जो कोउ कछु कहा। ऐसें रहै तहाँ सो रहा।

पंथ नाहिं पुनि पंथ सो, ताहि देस निज पंथ।
बिनु गुरु कोऊ न जानई, औ पुनि पढ़ै गरंथ॥

आगे पंथ चलै पै सोई। जाके संग कछु भार न होई॥
डारै कंथा चक्र धँधारी। करै मया जिय काया सारी॥
ऐसन जिय जेहि लोभ न होई। रूपनगर मगु देखै सोई॥
हेरत तहाँ पंथ नहिं पावा। हेरन चहै जो आपु हेरावा॥

पथिक तहाँ जो जाइ भुलाना। बिमल पंथ तेहीं पहिचाना ॥
आवहिं रूपनगर के लोगा। परषत फिरहिं कौन तेहि जोगा ॥
जो तेहि जोग लग्रहिं जिय माहीं। आगें होइ नगर लै जाहीं ॥

रूप भेष उतहिं क सजहिं, औ सिखवहिं सब भाव।
ऐस न जानहिं तेहि कोऊ, आन कहूँ ते आव ॥

रूप नगर अति आह सोहावा। जेहि सिर भाग सो देखै पावा ॥
अतिहिं डेरावन अतिहि सो ऊँचा। कोटि माँह कोउ एक पहूँचा ॥
बहुतन्ह कीन्ह जोगि कर भेसा। चले छाँड़ि घर मन ओहि देसा ॥
तैं सुखिया सुख कौतुक राता। का जानसि दुख पंथ कि बाता ॥
भोजन बिनु मुख जाइ सुखाई। पानी बाजु कँवल कुम्हिलाई ॥
छीन बसन जेहि अँग न सोहाई। कंथा कैसें सकै उठाई ॥
सौरि माँह जिन बनउर ठोवा। कुस साथरी सो कैसें सोवा ॥

बसन अपूरब पहिरि तन, लावहु मोद सुबास।
अहहिं नारि अछरी सरस, मानहु भोग बिलास ॥

अजगर खंड

कुँअर अँधेरें हा जहँ परा। बिधिना कहँ बिनवै भाखरा ॥
ए गुसाँइ जगरच्छ बिधाता। तोहि बिनु और न दुख संघाता ॥
अह निसि जगत कीन्ह सब तोरा। तैं सिरजा अँधियार अँजोरा ॥
तहीं सरग ससि सूर बनावा। तहीं कीन्ह दधि अंत न पावा ॥
तहीं सकल गिरि मेरु सँवारा। तैं सभ कीन्ह नदी औ नारा ॥
तुहीं पताल कीन्ह बलि बासू। तैं पति और सबै तोर दासू ॥
तुहीं सोई जो सब जग पूजा। सुमिरौं काहि और नहिं दूजा ॥

तैं सुख दायक दुहूँ जग, दुख भंजन जेहिं नाउँ।
तहीं बिछोवसि दुइ मिलै, तहीं करसि एक ठाउँ ॥

मैं जबहीं जिय सौंरा तोहीं। तहीं मया करि काढ़े मोंहीं॥
कूप माँहिं जे सुमिरन साजा। काढ़ि किये तै देस के राजा॥
प्रेम बिछोह अंध जेहि कीन्हे। बहुरि मिलाइ जोति तेहि दीन्हे॥
अगिन जरत जे तहीं सँभारा। किये ताहि फुलवारि अँगारा॥
मैं अब परा आइ तेहि ठाऊँ। अपनी सकति निकास न पाऊँ॥
मकु तैं होइ दयाल बिधाता। तोरे निकट कहाँ यह बाता॥
मैं जस हा तस कीन्ह गोसाईं। अब तू कर जस चाहसि साईं॥

हेरु गोसाईं आप कहँ, मोरे काँ जनि हेरु।
आपन नाउँ दयाल गुनि, हो दयाल एहि बेरु॥

जहाँ कुँअर चित सुमिरन ठाना। अजगर आइ एक नियराना॥
ओदर खोह जाहि नहिं अतू। लीलै हस्ति और को जंतू॥
सिखर डाँग तस आवै चला। बन बीहर सब काँ दलमला॥
औ तहँ पाइस मानुष बासा। खोह लाइ मुख ऐंचिस साँसा॥
पाहन रूख डार भरमना। साँस संग पुनि कुँअर समाना॥
गयो कुँअर पुनि साँसहि लागी। उठी खात ओहि ओदर आगी॥
परयो उलटि भा उदर दुहेला। डारिसि उगिलि जेत हुत लीला॥

भागा अजगर जीउ लै, परा कुँअर बिसँभार।
जे तापे बिरहा अगिन, तेहिं को निजवै पार॥

कुँअर सँभारि बैठु पुनि तहाँ। नैन न जोति जाइ उठि कहाँ॥
टोइ टोइ तहँ ठाँव सँवारा। टारे पाहन औ द्रुम डारा॥
बनमानुष एक तेहि बन अहा। कुँअर चरित सब देखत रहा॥
कहेसि जाहि विधि चहै न मारा। अस अहि ओदरहु ते निसारा॥
जौ जम सों बिधि जीउ उबारा। रहे न नैन जोति बिष झारा॥
कौन जिअन जो नैन न जोती। सोत न लहै पानि बिनु मोती॥
हाथ पाँव बर बुधि सब आही। एक विनु नैन करै बिनु काही॥

मान न बातैं इमि करै, जौलहु घट महँ पौन।
बिधिना एतना राखु थिर, नैन बैन औ सौन॥

बिधि तेहि हिये दया उपजाई। नियरे होइ पुनि देखेसि आई॥
देखि रूप मन किहिसि बिचारी। यह सुरपुर हुत दिये अँडारी॥
जग न होइ अस कोई मानवा॥ निहचै यह बान गंध्रव छवा॥
अब पूछौं एहि की सब बाता। कौन जाति कस लीन्ह बिधाता॥
केहि अभाग के दीन्ह सरापा। अस कारन दहुँ भौ केहि पापा॥
कहेसि रे अंध बिधाताद्रोही। कहु सो सत सत पूछौं तोही॥
जो सत संग साथ लष गोती। हियें सत्त लोचन सिर जोती॥

सती मरै जो मत चढ़ै, सत्त सहस दस आउ।
तन मन धन बरु जीउ किन, जाउ सत्त जनि जाउ।

सत्य सपत दै पूछौं तोकाँ। का तोर जाति जन्म केहि लोका॥
का तोर सरग देव औतारा। इंद्र सराप लहे महि डारा॥
कै रे जनम बल बासुकि देसा। कै तपि मही आइ परवेसा॥
केहि गुन एकति इहाँ तैं आवा। मानुष इहाँ न आवै पावा॥
जो मानुष तौ गुन कहु मोहीं। जेहि तें साँप न निजवै तोहीं॥
कै तैं जनम अंध चषु पाए। कै अबहीं भौ अहि के खाए॥
देखौं सब मानुष कै भावा। कहु सत इहाँ कौन लै आवा॥

देखत लोना रूप तोर, छोह उठै जिय मोहिं॥
कहेसि सत्त सत पूछौं, सपथ सिंभु दै तोहिं॥

हस्ती खंड

बीते चलत पाख दुइ चारी। परा दिष्टि एक कुंजर भारी॥
ऊँच सीस जनु मेरु देखावा। सूँड़ जानु अजगर लरकावा॥
तरुवर जनु चबाइ दुइ दाँता। डारत आउ खेह मदमाता॥
धावत जाइ पुहुमि जनु धसी। आवै पीठ सरग सौं खसी॥
भागहिं और हस्ति मद बासा। कुँअर देखि जिय भयो तरासा॥
कहेसि मीचु अब पहुँची आई। एहि आगे कहँ जाब पराई॥
अस्त्र नाहिं जो सम्मुख धाऊँ। मारौं एहि जैपत्र जौ पावौं॥

जनम अकारथ जगत भा, गई अमिरथा आउ।
चित्रावलि के दरस कर, रहा हिएँ पछताउ॥

अस्त्र न जो सनमुख होइ लरौं। जो निजु मरन भागि का मरौं॥
कुंजर धाइ कुँअर पर परा। रहा ठाढ़ ही नेक न डरा॥
धाइ लपेटि सूँड़ सौं लीन्हा। चाहेसि मूड़ डाढ़ तर दीन्हा॥
कुँअर हिए बिधि सँवरा तहाँ। जो बिधि केर मीचु तेहि कहाँ॥
ततखन राजपंछि एक आवा। परबत डोल जो डैन डोलावा॥
ओहि हस्ती पर टूटा आई। गहि ले उड़ा सरग कहँ जाई॥
सूँड़ समेटि जो कुंजर रहा। कुँअरन छूट डरन्ह सुठि गहा॥

उड़ा जाय अंतरिख महँ, दीखै जैस पहार।
घरी चार मँह लै गयो, सात सुमुंदर पार॥

बारिध तीर जहाँ हुत रेतू। परा तहाँ छुटि कुँअर अचेतू॥
भरि गये सीस देह सब खेहा। जेहि तन नेहाँ गति देहि एहा॥
जेहि के हिए बस प्रान पियारा। संतत देह चढ़ावै छारा॥
जिमि जिमि छार देह पर चढ़ा। तिमि तिमि रूप मुकुर जिमि बढ़ा॥
छार चढ़ावैं बहु गुनि जोगी। छार मरम का जानै भोगी॥
मानुस देह छार हुत कीन्हा। छार बुद्धि जिन छार न चीन्हा॥
कवन जनम केहि तप करतारा। मूँठी छार अमित बिस्तारा॥

देखि बड़ाई छार की, बसेउ आइ करतार।
छारहि ते कीन्हेसि सबै, अन्त कीन्ह पुनि छार॥

पहर एक गइ उठा जो चेती। देखा परा समुँद की रेती॥
ना सो हस्ति जेहि के बस अहा। ना सो पंछि जो कुंजर गहा॥
सौंरिस हिए विधाता सोई। जेहि के करत खेल सब होई॥
ऐ गुसाइँ तै दुहुँ जुग राजा। ए सब चरित तोहि पै छाजा॥
जियतेहिं मारि मिलावसि छारा। चहसि तो देखि फेरि औतारा॥
गिरि परबत कै पानि बहावसि। पानिहि साजि सुमेरु देखावसि॥
छत्रिन अछत राँक सम करई। चहइ तु छत्र राँक सिर धरई॥

भंजन गठन समस्त तू, और न दूजा कोइ।
तही अहा अरु है तही, औ पुनि आगे होइ॥

कुँअर सँवरि चित्रावलि नेहा। उठि के चला झारि तन खेहा॥
गिरि परबत औ कानन घना। प्रेम प्रसाद न लेखे घना॥
निडर जाहि तेहि बनखँड माँहीं। जम सौं बाच मीच अब नाहीं॥
बीता चलत मास एक सारा। बन ओरान औ भा उजियारा॥
रहसा हिये देस जब पावा। दृष्टि परा एक नगर सोहावा॥
कहेसि जाउँ अब नगर मँझारी। मकु मिलि जाय कोऊ बेपारी॥
पूँछि लेहुँ तेहि नगर की बाटा। चित बिकान है जेहि की हाटा॥

देखेसि पुनि फुलवारि एक, फूले फूल अमोल।
अलि गुंजारहि जहाँ तहँ, करहिं मजोर कलोल॥

देखि अपूरब ठाउँ सोहाई। कुँअर तहाँ छिन बैठेउ जाई॥
संपति कुसुम देखि चित लावा। लोचन जरे निहारि सिरावा॥
जूही फूल दिष्टि भरि हेरा। लखै भाव चित्रावलि केरा॥
देखि गुलाल अधर चित चढ़ा। दारिम दसन रहसि हिय बढ़ा॥
चंपक माँहि सरीर की शोभा। नारँगि लखि उरोज मन लोभा॥
अली माल फूलन पर हेरी। होइ सुरति अलकावलि केरी॥
गीव मजोरि देखि मन आवा। लोचन खंजन आइ देखावा॥

जाहि होइ चित की लगनि, मूरख सौं सो दूरि।
जान सुजान चहूँ दिसि, वोहि रहा भरि पूरि॥

चित्रावली बिरह खंड

चित्रावलि चित भएउ उदासा। पिउ न गए दै अवधि की आसा॥
बिरह समुँद अति अगम अपारा। बाज अधार बूड़ मँझधारा॥
चहुँ दिसि हेरहुँ हित कोउ नाहीं। बूड़त काढ़ उँचावै बाहीं॥
निसि दिन बरै अगिन की ज्वाला। दुरगा मँदिल भयो है बाला॥

बुझै न लूम सगर लहु बाढ़ा। पंथी गयो लाइ हिय डाढ़ा ॥
जोगी सुरति रहै चखु माहीं। ज्यों जल महँ दीपक परछाहीं ॥
झलझल जोति होइ उजियारा। पानी पौन बुझाव न पारा ॥

बिरह अगिन उर महँ बरै, एहि तन जानै सोइ।
सुलगै काठ बिलूत ज्यों, धुआँ न परगट होइ ॥

एक दिन कहिसि कि ऐ रँगमाती। करिया भयो रूप रँगराती ॥
रूप रंग सब लै गा जोगी। लोग कुटुँब जानै यह रोगी ॥
जोगी गयो छाड़ि तजि माया। भोर कि धुईं भई मम काया ॥
जोगी करत कहा दहुँ फेरी। आसन परी छार की ढेरी ॥
बिरह पवन जो करै झँकोरा। बिथुरे छार न कोऊ बटोरा ॥
जोबन गज अपसर मद कीन्हें। अब न रहै अँधियारी दीन्हें ॥
निसि बासर तन कानन गाहा। जाकी साल हिये तेहि चाहा ॥

जोबन सखी मतङ्ग गज, तौ लहुँ लाग गुहार।
जौलहुँ अपसर होइ कै, सीस न डारेसि छार ॥

सुनि रँगमति कहा सुनु बारी। जोबन मैगल मद दिन चारी ॥
अपसर होइ देइ नहिं कोई। जौ तिय आपु महाउत होई ॥
अंकुस सकुच गहै कर नारी। है आँखिन्ह घूँघुट अँधियारी ॥
औ कुलकानि महादिढ़ अंदू। निसि दिन राखै मेलि के फंदू ॥
जौ हठि कै अरि पाँव निकारा। हटक बुद्धि चरचा गड़दारा ॥
एह संसार रीति अस अहई। जो जेहि लाग दुःख जिय सहई ॥
जो तजि ठाउँ सकै नहिं जाई। आपुहिं तहाँ मिलै सो जाई ॥

आजु बदन तोर कौंल सम, औरै रंग सुभाउ।
सब तन लागै मधुप पुनि, मकु कोउ चाह सुनाउ ॥

एहि महँ सखी एक हितकारी। आई हँसति भई रननारी ॥
कहिसि कुँआरि सुनु बचन सुहाये। गये बिदेस नपुंसक आये ॥
बदन अरुन हिय हुलसत अहहीं। जानहुँ बचन कछुक सुभ कहहीं ॥
सुनतहिं चलि धाई बरनारी। गिरी रही पै सखिन्ह सँभारी ॥

जोगी आइ मनावत नाथा। दरस पाइ भुइँ लायउ माथा॥
कहिन कि हम पुहमी सब धाए। चित्र सरूप चीन्हि अब आए॥
सुनि रहसी चित्रावलि हीया। चित्रहिं जानु फेरि रँग दीया॥

हिय हुलास बिहँसे अधर, औ कपोल रँग होइ।
पुनि उपजै उर धकधकी, होइ न औरै कोइ॥

पूछिसि कौन रूप सो देखा। केहि दिन कौन भाँति केहि लेखा॥
जोगिनि रहसि रहसि जस जानी। आदि अंत लहुँ कथा बखानी॥
सुनि चित्रावलि हिय संतोखा। निहचै जानि गयो जिय धोखा॥
कहिसि कि हौं तुम्ह ऊपर वारी। मोरे दुख बहु भए दुखारी॥
अब सुख करहु बैठि एहि ठाऊँ। करिहौं सेव जगत जब ताईं॥
मैं सब इच्छ तुम्हार पुराई। तुम जग इच्छा पुरवहु जाई॥
सेवक सेव तजौ जिन कोई। सेवा ठाकुर आपन होई॥

मान सेव सोइ कीजिये, जासों पति पहिचानु।
ठाकुर आपन जो भयो सब जग आपन जानु॥

कौलावती गवन खंड

देखि कटक जिमि बादल छाहाँ। परी हूल सागर गढ़ माहाँ॥
यह अब को जस सोहिल राऊ। कटक साजि भुइँ चापे आऊ॥
वह हुत कौलावति अनुरागी। एह अब दहुँ आवै केहि लागी॥
ओ कहँ हुत सुजान सँघारा। अब कहँ पाउब तस बरिआरा॥
सागर मन पुनि चिंता भई। साहस बाँधि मीचु पुनि भई॥
जहँ तहँ सजग बीर हित बासे। सूर बदन जनु कौल बिगासे॥
एहि महँ हंस पहूँचा आई। कहिसि करहु अब अनँद बधाई॥

जो जोगी सोहिल हना, औ राखा तुम प्रान।
आयो बहुरि नरेस होइ, चलहु करहु सनमान॥

हंस बचन जब सागर सुना । भा जिअ सोच हिआ महँ गुना ॥
अब लहु कौंल आस जल अहा । अब जो राखिय कारन कहा ॥
लोग कुटुम मिलि कै मत ठाना । कौंल न काज आउ बिनु भाना ॥
जस बर कै ओहिं दीन्ह बिआही । अब बर कै पुनि सौंपहु ताही ॥
दुहिता केर कठिन है भारा । तबहीं पति जो जाइ ससुरारा ॥
जनम पिता माता घर लेई । दुख दुख माथे बिधि लिखि देई ॥
यह बिचारि कै डाँड़ी फाँदी । गौन जान कौंलावति साँदी ॥

समदी गंगा गोद गहि, औ कुमुदिनि कँठ लाइ ।
पुनि समदेउ परिवार सब, लोगन आँगन आइ ॥

कौंलावति चढ़ि चली बिमाना । जेहि अँबराउ सुरेस सुजाना ॥
सागर साजि कटक पुनि चला । कौंल गौन दुख जग कलमला ॥
औ जहँ लहु हुत दायज दीन्हा । सो सब लाइ पुरोहित लीन्हा ॥
सागर आइ सुजानहिं भेंटा । मुख देखत सब दुख गा मेंटा ॥
कंठ लाय हिय सीतल कीन्हाँ । भुजा जोरि अँकवारी दीन्हाँ ॥
औ जहँ लहु पर आपन अहै । छुइ छुइ पाँउ दूरि तकि रहै ॥
सागर तब बिनती औधारी । कस घर तजि के उतरेउ बारी ॥

जो राखहु नीरज चरन, सोभ पाउ हम माथ ।
चलउ आप घर जानि कै, कीजै हमहिं सनाथ ॥

तब सुजान बोला सुनु राऊ । एहि मारग हम लोग बटाऊ ॥
पथिक पंथ जौ छाड़ै कोई । भूलै अंत महा दुख होई ॥
सूध पंथ तजि उत्तर केरा । कौल बचा आएउँ एहि फेरा ॥
कौंलावति कर बिदा करीजै । अगुआ एक संग पुनि दीजै ॥
तुम परसाद जाउँ अब देसा । मकु भेटउँ के जियत नरेसा ॥
राय कहा कछु आहि न खाँगा । को राखै जो आपन माँगा ॥
सूख पंथ वहु दुख जगजाना । पानी पानी बहुत मिलाना ॥

अज्ञा देहु तो जाइ घर, साजौं बोहित साज ।
लीजै सभै लदाय जो, आउ तुम्हारे काज ॥

कुँअर गहे सागर के चरना। कहिसि बेगि कीजै जो करना ॥
सागर राउ पलटि घर आवा। चित्रावलि पहँ कुँअर सिधावा ॥
कहिसि कि सुन्दरि प्रान पियारी। तोहि बिनु प्रान होइ घट भारी ॥
एही नगर जहवाँ हौं कहा। पाँच मास पग साँकर रहा ॥
एही नगर हम कहँ दुख बीता। इहाँ हाँकि सोहिल रन जीता ॥
एही गाँव सागर गढ़ आही। कौंलावति जहाँ दीन्ह ब्याही ॥
मों कहँ तुम्ह बिनु आन न भावा। वै मोंहि बिरह बहुत दुख पावा ॥

ओहि के दूसर आन नहिं, मोहिं बिनु एहि संसार।
तजि आपन घर बार सब, आई कै अभिसार ॥

अब लहुँ रही इहाँ औंडेरी। आजु अवधि पूजी ओहि केरी ॥
जो जेहि कारन तन मन जरई। सो पुनि ताकर चिंता करई ॥
सौति जानि जनि होहु दुखारी। वह तुम्हारि जस आज्ञाकारी ॥
सुनि चित्रावलि हिए सँताई। नैन दुराइ कहिसि बिलखाई ॥
तुम साईं अपने सुख राजा। तिरियहि नाउँ सौति सिर गाजा ॥
जो बिधि ससी करावत देई। सहै न तौ अब काह करेई ॥
निसि आयो तहँ कुँअर सुजाना। कौंला जहाँ कीन्ह अस्थाना ॥

कंत बचा परतीति पर, सोरह साजि सिंगार।
बासक-सेजा होइ रही, लाइ नैन दुइ बार ॥

पदुम कोस अलि लीन्ह बसेरा। हिये सोच भइ मालति केरा।
नीरज लोयन रूप अतिसाए। दिन कर देखि नीर भरि आए ॥
बिहँसि कंत कामिनि कँठ लाई। बिरह दगधि उर लाइ बुझाई ॥
मनमथ दाब जाँघ पुनि काँपी। रावन बार लंक गहि चाँपी ॥
दीन्हीं चार नखच्छत छाती। फूट सिंधोर सेज भइ राती ॥
होइगा अंग भंग नव साता। अति परसेद सिथल भइ गाता ॥
भयो प्रभात गयो उठि साईं। कौंल पास कुईं चलि आईं ॥

हँसि हँसि पूछहिं रैनिसुख, रहसि करहिं परिहास।
लाजन गोवै कौंल मुख, सखियन अधर बिगास ॥

चित्रावलि कहँ बिनु ससि साईं । गई रैनि सब गनत तराईं ॥
सौति संग सालै जनु काँटा । अंग अंग लागै जनु चाँटा ॥
सुलगी उरध आगि सन सेजा । औटि होइ जल रकत करेजा ॥
करम करम कै सो निसि गई । पिअ देखत तिअ खंडित भई ॥
रही सोइ मिसि बदन छिपाई । नायक सकुचत आनि जगाई ॥
परी चौंकि लागै कर सीरा । दच्छिन नाहिं नायका धीरा ॥
कहिसि अहिउँ सुद सपने माहीं । कहा जगाइ लीन्ह गहि बाहीं ॥

अहिउँ महा सुख सपन महँ, तुम कर लागे अंग ।
गए नैन पट उघरि कै, भयो सकल सुख भंग ॥

जाचहुँ तुम एक सुंदरि संगा । मानत अहै केलि रति रंगा ॥
मोहिं देखि नौ सात बनाए । तजि सो नारि आनि कँठ लाए ॥
हिये लागि हिय मोर सिराना । पाएउँ अधर अमिय कै पाना ॥
और सकल सुख कहे न जाहीं । उठै आगि सँवरत मन माहीं ॥
भई दोहागिन बिकल सरीरा । जनु गिरि गयो हाथ ते हीरा ॥
वह रौवै परि सेज अकेली । हौं हँसि हँसि मानों रस केली ॥
मोरे छरै कुसुम जनु गाथा । वह लगि रहै हाथ सों माथा ॥

सेज अकेली रैनि सब, सहेउ सकल उतपात ।
चतुर नारि चित्रावली, रस काढै रस बात ॥

सिद्धसमागम खंड

भयो सोर सब नगर मँझारी । करहिं बखान सकल नर नारी ॥
सागर गाँव सिद्ध एक आवा । मुख देखत मन इच्छ पुरावा ॥
कुष्टी कथा बाँझ सुत पावै । अंधहिं चखु दै जग देखरावै ॥
कहै चाह परदेसी केरी । बिछुरेहिं आनि मिलावै फेरी ॥
सुनि के धाए सब नर नारी । बार बूढ तरुनी औ बारी ॥
जेहि निहचै ते निधि लै आए । निहचै बिना बादि सब धाए ॥
निहचै नग जनि डारो कोई । निहचै सिद्धि परापति होई ॥

निहचै इच्छा सरग हुत, आनि मिटावै दुंद ।
जैसे नैन चकोर कहँ, अमी पियावै चंद ॥

सुना कुँअर पुनि सिद्ध बखाना । अकसमात चित रहस समाना ॥
कहिसि कि भाग जोर समुहाई । तब अस सिद्ध मिले कोउ आई ॥
करूँ जाइ मन बच कै सेवा । मकु तो नहिं होइ जाइ परेवा ॥
चित्रावलि करि कुसल सुनावै । रूपनगर कर पंथ दिखावै ॥
चला कुँअर निहचै यक हाथा । सेवक पाँचन न छोड़हिं साथा ॥
महत गरब दोऊ तहँ त्यागे । मन बच कर्म तिनो सँग लागे ॥
सनमुख आइ दरस जब कीन्हा । वै ओकहँ वै ओकहँ चीन्हा ॥

देखत दुहूँ आनन्द भा, रहसत आगें आय ॥
परेउ परेवा कुँअर पग, कुँअर परेवा पाय ॥

कहै कुँअर सुनु हनिवँत बीरा । लागु कंठु ज्यों सीत समीरा ॥
कहु कुसलात बेगि सिय केरी । निसरत प्रान राखु घट फेरी ॥
हौं जिमि राम भयो बैरागी । नख सिख परी बिरह की आगी ॥
राम संग हुत लछिमन भाई । हौं अकेल दुख पुनि अधिकाई ॥
हनिवँत कहा सीय कुसलाता । राघव बदन सुनत भा राता ॥
औ पुनि बिथा कहिसि ओहि केरी । जेहि दिन ते तुम ओहि औडेरी ॥
तहँहीं दिवस देखि अकसरी । रावन बिरह नारि से हरी ॥

सीता रावन बस परी, करौ न कोटि उपाइ ।
तौ लहुँ नाहिं उधार निजु, जो लहुँ राम न जाइ ॥

पुनि दीन्हेसि चित्रावलि पाती । खोलि कुंअर लाई लै छाती ॥
सुलगत काठ लागु जनु लूका । दुहुँ आगि मिलि उठा भभूका ॥
हिया जरत जो लिहिसि उसासा । धूम बरन होइ गयो अकासा ॥
अमिरित बचन भरी हुत छाती । ता सों अगिन मुख बाँची पाती ॥
पाती पावस सलिता भई । दूनहुँ कँवल दुःख जल मई ॥
आखर मगर गोह घरिआरा । अरथ भँवर परि कठिन निसारा ॥
भँवर अनेक पैठि मन तरा । एक तें निकसि ऐक महँ परा ॥

पाती जनु पावस नदी, मन तकि पार तराइ।
चित्रावलि दुख अगम जल, बूड़ि बूड़ि तहँ जाइ॥

पाती पढ़ी समापति भई। बिरह झकोर कुँअर सुधि गई॥
हीवर जिमि ग्रीषम रवि जरा। जिउ जनु पात बवंडर परा॥
बर कै उठा चला लै चाहा। पाइ फिरा जैसे उतसाहा॥
पुनि जो चेत होइ देखा हेरी। पायन परी बचा की बेरी॥
कहिसि कहौं का दुःख बखानी। जनम सिराइ न कहत कहानी॥
हौं पंछी भूला हुत आवा। जाल मेलि एहि गाँव फँदावा॥
चार लोभ वैसेउँ एहि आड़ा। अचक आइ खोंचा उर गड़ा॥

पाँखन लासा प्रेम का, बाचा बंधन पाइ।
दै दै मारौं मूँड़ बहु, निकस न केहु उपाइ॥

अब तोहि मिलें भयो संतोखा। आसा मिली गयो जिउ धोखा॥
करहु उपाइ गवन जेहि होई। मैं आपन बुधि मति सब खोई॥
चोरी चलै धरम की हानी। परगट चहुँ दिसि रोकहिं रानी॥
सुनि कै बिथा परेवैं कहा। अब दुख सब बीता जित अहा॥
परगट जाइ सँवारहु कंथा। अंजन लाइ गुपत चलु पंथा॥
रहसिं कुँअर मंदिर महँ आए। कौलवति कहँ निअर बुलाए॥
कहेसि सुनहु अब राजदुलारी। हौं परदेसी आदि भिखारी॥

आउ न हमरे काज यह, राज पाट सुख भोग।
चित्रावलि हियरे बसी, जाकर बिरह बियोग॥

अब लहुँ मिला न अगुवा कोई। जेहिं परचय ओहि दिस कै होई॥
अगुआ मिला चल्यौं उठि संगा। तुम जनि करहु कौल मन भंगा॥
जौ बिधि आस पुरावै मोरी। तौ मैं चेत करब पुनि तोरी॥
सुनतहिं गवन धसकि उर गयऊ। कंचन अंग राँग पुनि भयऊ॥
कहिसि कि ऐ जग जीवन साईं। मोर जिअन तुअ दरसन ताईं॥
जो तुम होब विदेसी राजा। इहवाँ मोर कौन अब काजा॥
पाछें महा दुःख पुनि कीता। जहवाँ राम तहाँ पुनि सीता॥

जैसे पनहीं पाँव की, तैसे तिया सुभाउ।
पुरुष पंथ चलु आपने, पनहीं तजै न पाऊँ॥

कहै सुजान सुनहु बर नारी। तुम सयानि औ बूझनिहारी॥
मेहरिहिं कहैं लोग सब देहरी। धरै असन अस्थिर सोइ मेहरी॥
औ पुनि घरनि कहै सब कोई। घरहिं सँभारै घरनी सोई॥
राघव जौ लाई सँग सीता। बिछुरें जनम दुःख सब बीता॥
तुम कछु चित चिंता जनि करहू। जो हम कहा सोई चित धरहू॥
इतना कहि कंथा गिवँ डारा। औ पुनि अंग चढ़ाएउ छारा॥
लुकअंजन लै आँखिन दीन्हा। गा छिपाइ चटेक जनु कीन्हा॥

कौला देखि अचक रही, जनु ठग लाव देखाए।
पुनि लागें बिरहा धका, गिरी पुहुमि मुरछाए॥

देखि सखी सब कीन्ह अँदोरा। गहि उठाइ बैठीं लै कोरा॥
सुनि कौलावति मंदिर कूका। परी अचल गंगा जिय हूका॥
राजा पुनि बिसँभर होइ धावा। नंगे पाँव तहाँ चलि आवा॥
देखि अवस्था धिय कर रोवा। दूनहुँ बदन नैन जल धोवा॥
पूछहिं बिथा सुनावहिं ईठा। गुर गूँगा कर तीत न मीठा॥
रानी पूंछी हारि जब रही। कौल बिथा तब फूलन कही॥
प्रति उत्तर जस दूनहुँ बीता। औ सुजान चेटक पुनि कीता॥

आदि अंत बहु सखिन सब, एक एक कीन्ह बखान॥
सुनत आगि दुहुँ उर परी, औ ओहि पारा प्रान॥

राजकुँअर कर सुनत बिछोहा। धाह मेलि पुनि राजा रोआ॥
कौलावति दुख दीरघ जानी। उमड़ि चली गंगा चखु पानी॥
सखी सहेली पुनि सब रोईं। ससि अथई जानहुँ सर कोईं॥
पर आपन जन परिजन लोगा। सगरे नगर परा सुनि सोगा॥
नर नारी जुवती औ जरा। सब के सीस गाज जनु परा॥
मलि मलि हाथ कहैं सब कोई। अस परजापति आन न होई॥
पहर एक बीता होइ रोरा। कोऊ साँच कोउ झूँठ नीहोरा॥

छमा कराए सब जना, पंडितन्ह ज्ञान बुझाइ ।
मारे बिरह बयारि के, कौंल रही कुम्हिलाय ॥

जोगी खेल जो चेटक खेला । छाड़ि मँदिल होइ चला अकेला ॥
आवा बार जहाँ जग रोका । भीर लागि पै काहु न टोका ॥
देखि भीर जिय कौतुक होई । सब संगी पै चीन्ह न कोई ॥
आदि पंथ सो आगे कीता । यह कौतुक जनु सपना बीता ॥
बेगिहिं आइ परेवहिं मिला । संगिहि देखि कौंल जनु मिला ॥
पंथ चले तजि सागर गाऊँ । जपत चले चित्रावलि नाऊँ ॥
सूध पंथ अगुवा लै आवा । बेगहिं रूपनगर निअरावा ॥

कहिसि कि एही ठाँव तुम, बैठि रहहु लौ लाइ ।
हौ चित्रावलि निअर होइ, चाह सुनावों जाइ ॥

परेवा बंधन खंड

चेरी एक अहित जो आही । ते छिपाइ हीरा सों कही ॥
एक दिन देखत अहेउ छिपानी । चित्रावलि निकसी कुम्हिलानी ॥
रोइ परेवा सों कछु कहा । पाती दीन्ह पाँव पुनि गहा ॥
गयो परेवा लै कहुँ चीठी । तेहि दिन सों पुनि परा न डीठी ॥
पेम बाउ जो बाउर करही । सेवक पाय तबहि पति धरही ॥
देखा अहा कहा मैं सोई । अब तुम करौ वो करबै होई ॥
सुनि के हीरा हिए सँकानी । धसकि गयो हिय अजुगुति जानी ॥

केहि अधरम केहि पाप विधि, हंस कोखि भा काग ।
अपने जान न बिसतुरेउँ, चित्र परेउ कहँ दाग ॥

पुनि मन कछु गियान उपराजा । जाँघ उघारें मरिये लाजा ॥
अधिक उदगरी काठी भूरी । राखौं आगि मेलि सिर धूरी ॥
बाट बाट सब लाई भूता । रोकहिं राह परेवा दूता ॥
आवइ कहुँ पूछे बिनु नाहीं । आनि बाँधि राखहु बँद माँहीं ॥

जो जहँ तहाँ रोकि मगु रहा। आवत पंथ परेवा गहा ॥
बाँधि आनिके बँद मँह राखा। अचक रहा कछु आव न भाखा ॥
मन मँह कहिसि रहा पछतावा। कुँअर न आवन कहन न पावा ॥

वह पुनि रहिहै रैनि दिन, मारग लाएँ आँखि।
वह परदेसी बापुरा, मरिहि अकेला झाँखि ॥

रहा सुजान नैन मगु लाई। का दहुँ कहै परेवा आई ॥
सो पुनि आशा काह करेई। कौन भाँति दरसन पुनि देई ॥
सगर दिवस एहि सोंच गँवावा। साँझ परी न परेवा आवा ॥
ज्यों ज्यों छिन छिन रैनि बिहाई। त्यों त्यों बिरह आगि अधिकाई ॥
लोयन दोऊ रहें मगु लागे। आहट कहँ सरवन पुनि जागे ॥
सकल रैनि पुनि ऐसेहिं बीती। जानु कँवल जिय भानुहि पीती ॥
दिनकर उठत उठै हिय आगी। बिरह बयारी सरग गै लागी ॥

कहिसि कि प्रीतम हिया सिर, सूखि गयो जल नेह।
फाट न हिया तडाक जेउँ, हँस चलेउ तजि देह ॥

जौ वै मो सौं निज मुख फेरा। तौ काया परान केहि केरा ॥
जीउ लेइ जो जम बरिआरा। छुटै प्रान यह दुःख अपारा ॥
जो अब मारौं होइ अपघाती। जगत नसाइ जनम औ जाती ॥
मैं बिरही मोहिं नाँच नचावा। अंत सो यह कौतुक देखरावा ॥
अब नाचौं किन परगट होई। ओहि के पंथ लै मारौ कोई ॥
निसरा कुँअर डारि सिर छारा। चित्रावलि चित्रावलि पुकारा ॥
कोऊ आहि अस पर उपकारी। आनि देखावै राजकुँआरी ॥

खनक देखाउ सरूप मुख, लिहिसि चोर जिय मोर।
यह राजा हत्यार बड़, घर महँ राखै चोर ॥

सुनि कै लोग अचंभौ रहा। जोई सुना सोई मुख गहा ॥
बिरह उसास अगिन कर ज्वाला। लागत परै हाथ महँ छाला ॥
दूरहिं हटकि रहैं सब कोई। कोउ मुख मूँदै नियरे होई ॥
होइ गा सगरै नगर चबावा। रूपनगर एक बाउर आवा ॥

कहै सोई जो कहा न जाई। मरै लागि एह बुद्धि उपाई ॥
राजसभा सब काहू सुना। सुनतहि चित्रसेन सिर धुना ॥
बदन सुखान अंग दुति छाड़ी। लाजन सीस पुहुमि गा गाड़ी ॥

कहिसि कि जा कहँ जिय डरत, सँवरि सुहात न राज ॥
सोई आनि हम सिर परी, अचक कहूँ हुत गाज ॥

दलगंजन खंड

पुनि सँभारि कै बैसेउ राजा। कहिसि कि भल नाहीं यह काजा ॥
किन भिखारि पर कीन्ह अगासा। जिन अस वचन असुभ परगासा ॥
काढि जिभि जिय मारहु सोई। जो अस सुनै कहै नहिं कोई ॥
राजनीति एक मन्त्री अहा। तिन उठि सीस नाइ कै कहा ॥
यहि संसार बेद अनुमाना। बाउर बचन न कोऊ माना ॥
जाकर बचन नाहिं परतीता। ताके मारे होइ अनीता ॥
लाज लाग जो मारै कोई। अस मारें भल कहै न कोई ॥

गहि जो भीखारी मारई, दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या काँधे चढै, पुनि भल कहै न कोइ।

यह चरचा पुनि मंदिर भई। रानी सुनत सूखि जिय गई ॥
कहिसि कि मुई न ऐसन बारी। जे अपने कुल लाइसि गारी ॥
आपनि जानि बिसारेउ नाहीं। पौन न पाउ छुवै परछाहीं ॥
एहि क रूप कहँ काहु न देखा। मिटी न सीस करम की रेखा ॥
कुमुद यह भेद परेवा जाना। पूछहुँ बोलि कहै अनुमाना ॥
बहुरि कहिसि यह पावक जरई। ज्यों ज्यों खुदी त्यों उदगरई ॥
बाहर नगर परा जन कूका। कहुँ घर लागि जाइ जनु लूका ॥

तब कुछ हाथ न आवइ, होइ आन की आन।
तातैं बरजे सकल जन, परै न चित्रिनि कान ॥

राजैं मते महाउत लावा । पान दीन औ कहि समुझावा ॥
जहाँ कहूँ वह बाउर होई । अस जस दूसर जान न कोई ॥
अपसर गज दलगंजन नाऊ । छलि मकुलाइ देहि तेहि ठाऊँ ॥
मकु गज धाइ हने सो जोगी । बिनु औषधि जिय होइ निरोगी ॥
लै सो पान महाउत लावा । मूरी दइ गज अतिहि मतावा ॥
खोलि गयंद ओहि दिसु लावा । कोऊ न जानत गुत की कला ॥
जहँ बाउर सिर डारत छारा । उतरि महाउत भयो निसीरा ॥

छूटि चला मैमंत गज, चहुँ दिसि परी पुकार ॥
जग लै भाजो जीव सब, कूटा जम बरिआर ॥

भा अँदोर मैगल मकुलाना । सुनि चारिहुँ दिसि परा बखाना ॥
देखि देखि लोग हीय सब कूटा । भा अजुगुत दलगंजन छूटा ॥
एहि सों जिअत बँचा जो आजू । ताकर नवा जनम कर साजू ॥
आपु आपु कहँ परजा राजा । जहँइ सुना सोउ जिउ लै भाजा ॥
पूतहिं बाप सँभारे नाहीं । कुटुम्ब लोग केहि लेखें माहीं ॥
जेहि सँग अहा बटम हय हाथी । अकसर जाइ न कोई साथी ॥
जाकर अंग न छुअत समीरा । गहै आनि अनचीन्ह शरीरा ॥

जेहि तन लाग रैनि दिन, चोआ चन्दन सार ।
तिन्ह तन बन महँ संग बिनु, निभरम लागै छार ॥

चले छाँड़ि बनियाँ बैपारी । रही जहाँ तहाँ हाट पसारी ॥
छाड़ि चले जित मंदिर लोना । जहवाँ लाग रूप औ सोना ॥
छाड़ि तिया जासों रँग कीन्हा । चले जाहिं जानहुँ अनचीन्हा ॥
छाड़हिं अन धन धोर घोरसारा । छाड़हि दरब झूठ संसारा ॥
छाड़हिं अगर कुमकुमा चोवा । छाड़हिं रतन जो माल परोवा ॥
छाड़हिं कस्तूरी घन सारा । अंत आइ तन लागी छारा ॥
सगरे जनम सौंति दुःख पावा । छिन एक महँ सब भयेउ परवा ॥

यहि विचार कै मान कवि, महापुरुष जग माहिं ।
तासौं जोउ न लवहीं, अंत जो साथी नाहिं ॥

कुँअर देखि हस्ती मतवारा। मरन जानि जित कीन्ह विचारा ॥
जा कह अंत मरन जित य माहीं। मीचु देखि सो भागै नाहीं ॥
मोंहि एहि मारग निज जो मरना। भागि रहौं लै का की सरना ॥
बिनु साहस जो तजउँ सरीरा। कोउ कहै यह छत्री बीरा ॥
बाजौं आजु भीम की नाईं। मारौं जो जय देइ गोसाईं ॥
मरौं तौ लोग कहै यहि देसा। छत्री कहा जोगि के भेसा ॥
पुनि चित्रावलि सुनि यह बाता। जूझि मुवा जोगी रँगराता ॥

बाँधि काछ दृढ होइ रहा, मन महँ मरन बिचारि।
जोहि जिय डाँडा प्रेम कर, सब जग जीतनि हार ॥

आवत हस्ति चुवत मदगंधा। तोरत तरुवर धावत कंधा ॥
गज बाजी कहँ परलो कोपा। अंगद पाँव पुहुमि जस रोपा ॥
कुँअरहि देखि धाइ अस परा। बीर पँवार न पाछे टरा ॥
कंथा डारि गयंद झुकावा। आपु सजग होइ पाछूँ आवा ॥
गहि कै पूँछि गयंद घुमाइसि। येही भाँति घरी एक लाइसि ॥
जनु चकई गहि डोर फिराइसि। पुहुमि परा गज ताँवरि खाई ॥
मस्तक आइ मूँक तब मारा। सीस फोरि गजमोति निकारा ॥

पुहुमी परा गयंद ढहि, जानहुँ परा पहार।
देखि अचंभित जग भवो, चहुँदिस परी पुकार ॥

कहैं लोग यह को बरिआरा। जिन गयंद दलगंजन मारा ॥
वह राजा कर हस्ती सोई। जेहि ते बली आनि नहिं होई ॥
यह जोगी भल कीन्ह न काजा। परलै करहि आजु सुनि राजा ॥
राज दुआरे भई पुकारा। जोगि बली दलगंजन मारा ॥
एहि जोगी कहँ सिव परसना। नाहिं तो अस परबल को हना ॥
मानुष अस बल करै न पारा। निज यह पुहुमि भौम औतारा ॥
औरौ हस्ति सभारहु नाहीं। मति कहँ भटकी सिर कहँ जाहीं ॥

सुनिकै राजा थकि रहा, रुधिर सूखि गा गात।
हियें थरथरी पेह डर, मुख नहिं आवै बात ॥

सुजान बंधन खंड

पुनि सँभारि के बोला राजा । साजहु बेगि जूझि कर साजा ॥
हनुमत जस लंका हुत आवा । तस छलि कै यहि काहु पठावा ॥
काहु केर पठावन होई । जिअत न जाइ करहु अब सोई ॥
बाजन बार जूझि कर बाजा । जानहुँ सरग मेघ दल गाजा ॥
साजे हस्ती सिंघलदीपी । चीता माथ छीट जनु छीपी ॥
साजे तुरे समुँद जलगाहा । पखरे राउत पहिरि सिनाहा ॥
राजा सपरि भयो असवारा । चले बीर चढ़ि तुरी तुखारा ॥

बाजे बाजन जूझि के, धुका दगामा भेरि ।
छेंका जोगी कटक लै, मण्डल चहुँ दिस फेर ॥

जुझि साज जौ कुअँरहि सूझा । कै बिचार अपने मन बूझा ॥
जाकर दोष करै जो कोई । का बसाइ जो मारै सोई ॥
मोहिं नहिं इहाँ जूझि सों काजा । मारौं लै पुहमीपति राजा ॥
एह गुन अैस्यो आसन मारी । जैसे निरगुन जोगि भिखारी ॥
सीस नाइ पुहमी तिन हेरा । कटक आउ सब करत करेरा ॥
मंत्री राज-बाग तब गही । सीस नाइ के बिनती कही ॥
जूझि केर जग अस बेवहारा । मारिय सोइ जो गहै हथियारा ॥

जोगी बाँधिय जिअत गहि, मारि न करी अनीत ।
पूँछि भेद पुनि लीजिये, को बैरी को मीत ॥

घेरत घेरत आए राँधा । पाँच जने मिलि जोगी बाँधा ॥
अस कै ढील दीन्ह दुइ बाँहीं । जानहुँ एक रती बल नाहीं ॥
राजा सनमुख जोगी आना । देखि रूप सब कटक भुलाना ॥
पूछै को हसि कहँ तें आवा । केहि कारन केहि केर पठावा ॥
कुँअर न बोल मौन मुख गहा । सीस नवाइ औंधि चखु रहा ॥
एहि अंतर एक चतुर चितेरा । सागर नगर कीन्ह जे फेरा ॥
कुँअर चित्रलिखि अति मतिमाना । सोहिल जूझि भेद पुनि जाना ॥

आइ पहूँचा राज ढिग, देखि नवाइसि माथ।
लीन्हे चित्र अनेक जे, देस देस के नाथ॥

वै कुँअरहिं देखा पहिचाना। कहिसि कि यह जस कुँअर सुजाना॥
वह उहवाँ पुहुमीपति भारी। राज छाड़ि कत होत भिखारी॥
पुनि वह अस कुकरम कत करई। जेहि कोइ बाँधि चोर कै धरई॥
चित्र काढ़ि जो पटतर देखा। सोई कुँअर सुजान सरेखा॥
कहिसि कि यह पुहुमीपति राजा। पुहुमी रहो सदा ओहि साजा॥
यह पवाँर छत्री बरिआरा। यही हाँकि रन सोहिल मारा॥
यह पुहुमी पति देस क राजा। अचरज मोहिं देखि यह साजा॥

कुँअर चित्र लेकर दिहिसि, कहिसि कि अचरज हीय।
बाँधा सिंह सियार ज्यों, का कौतुक बिधि कीय॥

इहाँ नरेस जूझि कहँ आवा। रानी उहाँ अँदोर बढ़ावा॥
जे मारा दलगंजन सोई। तेहि के जूझि आजु कस होई॥
हिये सोच करि हीरा रानी। पूँछौं बोलि परे वा ज्ञानी॥
वह पंडित औ चतुर परेवा। आमग न चलै जानि पति सेवा॥
जिन मारा दलगंजन हाथी। मकु वह होइ परेवा साथी॥
खोलि मँगावा सीघ परेवा। आइ देखाइसि कंतहिं सेवा॥
होइ अकसर लै मंत बईठी। कहिसि कहाँ लै गवनेहु चीठी॥

बिनु पूछे किछु ना कहै, तैं पंडित सहदेव।
को जन यह हस्ती हना, कछु जानसि यह भेव॥

कहिसि कि सदा सोहागिनि रानी। तुम सयान पंडित औ ज्ञानी॥
मैं यह सुफल सुआ सो खोजा। चीन्हहु होइ सो राजा भोजा॥
जा कहँ भोर सदा सिर नाई। चहै मारि तो कहा बसाई॥
कथा कहत लागिहि बड़ि बारा। उहाँ न होइ जाइ संघारा॥
थोर कहौं जौ बिलँब न होई। सोहिल जिन मारा वह सोई॥
धरनीधर नैपाल भुआरा। एह सुबंस औ बीर पवाँरा॥
चित्र माँह चित्रावलि जानी। भा जोगी सुनि रूप कहानी॥

एहि सो रतन जेहि कीजिये, कुंदन घालि जराउ।
जनि गहि डारहु समुँद महँ, नतु रहिहै पछताउ ॥

रानी कहा बेगि चलि जाहू। लगै न पाउ मयंकहि राऊ ॥
जाइ जनाउ नरेस रिसाना। जौ लहुँ छुटै पाय नहिं आना ॥
दसरथ धोखे सरवन मारा। पाइ सराप भयो हत्यारा ॥
आज्ञा मिली परेवा धावा। निर्मालि माँह राजा पहँ आवा ॥
देखिसि राजहिं रिसि मन नाहीं। हाथ चित्र चित चिंता माहीं ॥
औ पुनि कुँअर बाँधि कै आना। कीन्ही जल नखु जानि सुजाना ॥
आइ नवाइस पति कहँ माथा। कहिसि हे पुहुमीपति नाथा ॥

एह सोई जिन बैरी हना, सोहिल अस बारि आर।
जंबूदीप नरेस सोई, निरमल जाति पँवार ॥

एह जस बिक्रम राजा भोजा। मैं चित्रावलि कहँ बर खोजा ॥
चित्रावलि कर रूप सुनाई। कै जोगी आनेउँ बौराई ॥
मैं राजा सों कहै न पावा। बीचहि बैरी मोहिं बँधावा ॥
तौ एह कौतुक सब बिधि कीन्हा। रतन खेह महँ काहु न चीन्हा ॥
राजा हिय सुनि कुँअर बखाना। तजि चिंता चित रहस समाना ॥
जो जहँ चित्र मूँदि कै राखी। तब भा आनि परेवा साखी ॥
एह पंडित औ बिधि सो डरई। पंडित काज बूझि कै करई ॥

छोरे बंधन दुःख के, महावीर पहिचानि।
राजा उतरि तुखार सों, अंक मिलायो आनि ॥

ततखन तहाँ कुँअर अन्हवावा। राज साज सब आनि पन्हावा ॥
औ पुनि लीन्ह चढाइ अँबारी। दूलह जानि बरात सँवारी ॥
रहसत चला तुरै चढ़ि राजा। बाजत अनँद बधावा बाजा ॥
एकै बाजन जेहिं जग जाना। आनहि आन जात भा आना ॥
गह गह बाजन बाजत आवा। नगर लोग सब देखै धावा ॥
जिन देखा तिन धनि धनि कहा। रूप निहारि चित्र होइ रहा ॥
धनि सो चित्र धनि सोई चतेरा। कहहिं जोर चित्रावलि केरा ॥

निकसा हाट मँझार होइ, चहुँ दिसि रहस अनंद।
देखै आई उतरि जनु, सूर तराईं चंद॥

चढ़ि अँटारि देखहिं रनवाँसा। जनु ससि नखत सरग परगासा॥
देखि कुँअर मुख हीरा रानी। हिए अनंद अधर बिहसानी॥
कहिसि कि जानु आहि एह सोई। जेहिक चित्र चितसारी धोई॥
पुनि तिन्ह साथिन्ह आनि देखावा। जे अपने कर चित्र नसावा॥
जिन देखा तिन मुख अनुसारा। यह सोई गँधरब औतारा॥
जब तें हम वह चित्र नसाई। नैन हिएँ जानहुँ लिखि लाई॥
धनि यह दिन धनि घरी सरेखा। हिया इंछ इन्ह नैनन्ह देखा॥

मान न मन्त निसारहिँ, सिंह पुरुख मुख बैन।
जो मूरति हिअरै बसी, सो निजु देखी नैन॥

रानिहिँ यह सुनि भयो अनंदा। सीस पुहुमि धरि बिधना बंदा॥
जिन्ह काहू यह भेद न जाना। सो बिधि कौतुक देखि भुलाना॥
कहै कि यह कस बैरी होई। आदर चाह करै सब कोई॥
सखी एक चित्रावलि केरी। चढ़ि मंदिर पुनि देखिसि हेरी॥
कोतुक लखि चित कीन्ह हुलासा। गई धाइ चित्राविल पासा॥
कहिसि कि ऐ कुल मनि मनिआरी। तोरी जोति पुहुमि उजियारी॥
फिरेउ बीति संग्राम भुआरा। गहिं आना बैरी बरिआरा॥

देखौं सोइ हस्ती चढ़ा, नहिं जानौं केहि काज।
पुहुमी आवै इंद्र जनु, तजि इंद्रासन राज॥

मेहरिन्ह महँ पुनि चरचा होई। चित्र जो मेटा जनु यह सोई॥
सुनतहिं चित्र चाउ चित बाढ़ी। होइ ब्याकुल धौराहर ठाढ़ी॥
देखत मुख सुधि बुधि सब हरी। होय अचेत पुहुमी खसि परी॥
सखी सो हाथन हाथ उतारी। सेज सुवाइ ओढ़ाइन्ह सारी॥
डरहिं कहहिं बिधि का भा आई। भीर माँह काहू डिठि लाई॥
सुनै पाउ जनि राजा रानी। हम जिय करहिं घरी महँ हानी॥
ततखन मँदिर परेवा आवा। सखियन्ह कहैं सब भेद सुनावा॥

कहिसि किऐ पति कलप जुग, हम माथे तुम छाँह ॥
अब किमि जरिए धूप दुख, छत्र आउ घर माँह ।

सुनत बैन चित्रावलि जागी। देखि परेवा के पौं लागी ॥
कहिसि कि ऐ हीरामन सूआ। रतन लागि कस कौतुक हूआ ॥
कैसे जाइ भोराएहु साईं। कैसे आनेहु इहवाँ ताईं ॥
का कहि चित्रसेन समुझावा। काढ़ि लागि मंदिर लैं आवा ॥
बैसि परेवा प्रेम कहानी। आदि अंत लौं कहिसि बखानी ॥
चित्रावली चित भयो सँतोषा। गा सो सोच अहा जो धोखा ॥
बर बिआह सुनि मनहिं लजानी। घूँघट ओट दिये मुसुकानी ॥

कहिसि परेवा सुमति तैं, पूरन सेवा कीय ।
जो चित भावै सोइ करु, मैं तुअ अशा दीय ॥

बोहित खंड

उहवाँ सागर बोहित साजा। इहवाँ दुंद गौन कर बाजा ॥
पखरे घोर पलाने हाथी। सँभारे चले पुनि अंत के साथी ॥
चली दोऊ धनि करत कलोला। अपने अपने चढि चंडोला ॥
एक बाएँ एक दाहिने जाईं। एकहिं एक न पास सुहाईं ॥
कुँअर साजि पुनि कटक सुहावा। रहसत जाइ समुँद लहुँ आवा ॥
बोहित साज देखि मन भावा। चित्रिनि कर चंडोल चढावा ॥
पुनि कौलावति समदि भुआरा। चढ़ी जाइ तजि सब परिवारा ॥

अगिनित दायज दरब जेहि, देखि हिया हरखंत ।
एक एक सबै चढाइ के, कुँअर चढ़ा पुनि अंत ॥

बोहिते चढेउ कुँअर लै भारा। समदि चले पहुँचावनहारा ॥
समदे लोग कुटुँब हय हाथी। सोई साथ अंत जो साथी ॥
लोकाचार तीर लहुँ आए। नाव चढे सब भए पराए ॥
पीठ देत ही मित बिसारा। सब काहू घर बार सँभारा ॥

कुँअर पेलि बोहित लै चला। भार देखि केवट कलमला॥
कहिसि कीन्ह तुम दूर पयाना। बोहित नाहिं भार अनुमाना॥
बोहित चढ़े बहुत उतपाथा। ऊँचे भौंर ऊठहिं पुनि साथा॥

भौंर फेर जलजंतु डर, तेहि पर आँधी आउ।
जिउ आवै तब पेट महँ, तीर लाग जब नाउ॥

सोन रूप तुम कहा बटोरा। भार बहुत देखत पुनि थोरा॥
गाढ परे पुनि होइहि भारी। अबहीं कस नहिं देहु अडारी॥
कुँअर कहा सुनु बोहित पती। दरब न डारि जाय एक रती॥
बोहित साजा दरब हि लागी। का ले जाब संग यहि त्यागी॥
जो मानै जिय अस डर भारी। चढ़ै न कोऊ नाव नवारी॥
तुम खेवहु जनि मानहु संका। मेटि न जाइ सीस कर अंका॥
हँसि कै बोहित केवट पेला। चला जाइ जल माँह अकेला॥

देखत बारिध अगम जल, प्रान न धीर धराइ।
सोई चलै निचिंत होइ, जो कोउ आवै जाइ॥

रैनि एक बादर जुरि आये। दुहुँ दिसि होइ रिखि सात छपाये॥
मारग भूला केवट डरा। बोहित जाइ भौंर बिच परा॥
भँवै लाग तहँ बोहित भारी। कुँअर कहा कछु देहु अडारी॥
जाके अहा संग कछु भारा। पलिहिं तें सब रूप अडारा॥
हरुआ होइ बोहित अगुसरा। दूजे भौंर जाइ कै परा॥
जहँ लहु अहा सोन कर नाऊँ। सो सब डारि दीन्ह तेहिं ठाऊँ॥
तीजे भौंर जहाँ नग हीरा। चौथे अन जा कर नर कीरा॥

पँचएँ भौंर भयो सेस नर, अंत जादि पुनि मीच।
कुँअर जिअन जिअ सौंरिकै, परे कूदि जल बीच॥

छठएँ भौंर मरन निज हेरी। साहस बाँधि गिरीं सब चेरी॥
सतएँ भौंर जो आइ तुलाना। कौलावति कर जिउ अकुलाना॥
कहिसि कि हौं बलि देउँ सरीरा। मकु ए दोउ लगि लागैं तीरा॥
पुनि मन कहिसि रहा पछितावा। चित्रिन रूप न देखै पावा॥

मरन बेरि मुख देखौं जाई। मकु अजहूँ तजि कोह छोहाई ॥
चित्रिनि पहँ आई गुन भरी। बदन बिलोकि पाउँ लै परी ॥
कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी। करहु छोह सुनि बिनती मोरी ॥

रहै सदा तुअ सीस पर, सेंदूर भाग सुहाग।
हौं समदति हौं चरन गहि, इहै मोर अनुराग ॥

चित्रावलि सुनि हिए छोहाई। कौंलावति कह कंठ लगाई ॥
कहिसि कि तजहु सौति कर नाता। मोरि तोरि एकै जनु माता ॥
हौं जिउ देउँ रहउ तुम्ह दोऊ। मोरे मुए होउ सो होऊ ॥
मरन लागि दुहुँ बाद पसारा। सुनि सुजान धायो बिकरारा ॥
कहिसि कि मेहरिन्ह बुद्धि न रती। हौं अब मरौं होहु तुम्ह सती ॥
तीनिहु गही मरन की टेका। मरन न पाउ एक तें एका ॥
देवता सरग जो देखत अहे। इन्ह कर प्रेम देखि थकि रहे।

ससि सूरज कुज दोउ गुरु, राहु बुद्ध सनि केतु।
कहहिं कि अब लहु भूमि महँ, अस न कीन्ह कोउ हेतु ॥

आलम

जीवन-वृत्त

भ्रान्त धारणा

इस कवि के संबंध में आरंभ से ही हिंदी संसार में एक भ्रांत धारणा फैली हुई है, और वह यह कि 'माधवानल-कामकंदला' के आलम और 'आलमकेलि' के लेखक आलम दो अभिन्न व्यक्ति हैं। आलम केलि के रचयिता तथा शेख रँगरेजिन के प्रेम में पड़ कर मुसलमान हो जाने वाले आलम (जो पहले जाति के ब्राह्मण थे) का रचना काल संवत् १७४०-६० तक माना गया है। पर माधवानल-कामकंदला के रचयिता आलम का रचना काल सं० १६४० या ई० १५८४ था। इनका शेख़ रँगरेज़िन से कोई सरोकार नहीं था और न इनके जाति के ब्राह्मण होने का ही कोई प्रमाण है।

हिंदी साहित्य के सभी इतिहास लेखकों ने (आचार्य शुक्ल जी के इतिहास में यह भूल नहीं है) आलम के संबंध में यह भद्दी भूल की है। स्पष्ट है कि यह भूल प्रथम इतिहास लेखक से आरंभ हुई और बाद के सभी इतिहास लेखक आँख मूँद कर इस भूल का अनुकरण करते गये।[1]

---

[1] यदि किसी भी साहित्य के इतिहास लेखक ने 'माधवानल-कामकंदला' को देखने का कष्ट उठाया होता तो इस भ्रांति का निराकरण कभी का हो गया होता। पर कटु सत्य यह है कि आज के हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के अध्ययन के फलस्वरूप नहीं लिखे गये हैं, बल्कि पिछले लेखकों की नक़ल के आधार पर। वास्तव में साहित्य के इतिहास लेखन से बढ़ कर श्रमसापेक्ष और उत्तरदायित्वपूर्ण कोई दूसरा काम नहीं है, पर हिंदी में तो जितने साहित्य के स्रष्टा नहीं हैं उनसे अधिक इतिहास लेखक हो रहे हैं और नक़ल से बढ़ कर आसान कोई काम होता भी नहीं !

रचनाकाल

अस्तु, आलम केलि के रचयिता विशुद्ध ब्रजभाषा में शृङ्ग संबंधी फुटकर पदों की रचना करते थे, पर प्रस्तु आलम अवधी के कवि थे और इनका रचनाका उनसे ठीक सौ वर्ष पहले का था।

सन नौ सै इक्यानुवै आइ। करौं कथा अब बोलौं ताहि॥

सन् नौ सै इक्यानवे हिजरी और तदनुसार से १६४० में इन्हों इस ग्रंथ की रचना की। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर सम्रा अकबर विराजमान थे और इनके अर्थसचिव राजा टोडरमल हमा कवि के आश्रयदाता थे। ग्रंथारंभ में कवि ने दोनों की प्रशंसा की है।

दिलिय पति अकबर सुरताना। सप्त दीप मैं जाकी आना॥
सिंहन पति जगन्नाथ सुहेला। आपनु गुरू जगत सब चेला।
जब घर भूमि पयानौ करई। वासुक इंद्र आसन थरथरई॥
धर्मराज सब देस चलावा। हिंदू तुरुक पंच सबुलावा॥
आगरैंवु महामति मंडनु। नृप राजा टोडरमल डंडनु॥

रचनाकाल, तत्कालीन दिल्ली सम्राट तथा आश्रयदाता राज टोडरमल आदि का उल्लेख कवि ने अपने ग्रंथ में इतनी स्पष्ट रीति से किया है कि इनके समय के बारे में संदेह करने की कोई गुंजाइश नह है। हाँ, इतना अवश्य है कि केवल इनके रचनाकाल की तिथि ही जानी जा सकती है, जन्म-मरण-तिथि नहीं। इन्होंने अपनी वंशावली य गुरु-परंपरा के संबंध में भी कुछ नहीं कहा है।

आलोचना

कथा का स्रोत

आलम की यह रचना मौलिक नहीं है। इस नाम का एक नाटक संस्कृत में है और इसी की कथा के आधार पर इन्होंने इस काव्य की रचना की। पर इसका तद्वत अनुकरण नहीं किया है। अपनी आवश्यकतानुसार कुछ घटाया-बढ़ाया है। वह साफ़ कहते हैं कि कुछ अपनी और कुछ 'परकृति' मैंने 'चुराई' है।

कुछ अपनी कुछ परकृति चोरौं। यथा सकति करि अच्छर जोरौं ॥
सकल सिंगार विरह की रीति। माधौ काम कंदला प्रीति ॥

हो सकता है कि आलम संस्कृत के विद्वान रहे हों, क्योंकि इनकी रचना में संस्कृत के शब्द इस शाखा के अन्य कवियों से अधिक आते हैं पर यह कोई ज़रूरी नहीं है क्योंकि यह साफ़ कहते हैं कि संस्कृत की कथा 'सुन' कर मैंने भाषा चौपाई में इसका रूपांतर किया—

कथा संस्कृत सुन कछु थोरी। भाषा बाँधि चौपही जोरी ॥

कथा का सारांश

पुष्पावती नामक नगर में गोपीचंद नामक एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा न्यायपरायण और धर्मनिष्ठ था। उसी नगर में माधव नामक एक बैरागी ब्राह्मण रहता था। वह नित्य प्रातःकाल राजा के पास जाकर पूजा कराता था। माधव बड़ा विद्वान् और संगीत कला में पारदर्शी था। वेद, पुराण, ज्योतिष, व्याकरण, सामुद्रिक आदि विविध शास्त्रों में भी वह निपुण था। विद्या में वृहस्पति और रूप में कामदेव के समान था। अभूतपूर्व वीणा वादक था। उसकी बीन सुनकर नगर की स्त्रियाँ अपना काम छोड़ देती थीं और सब बेहाल हो जाती थीं। कोई मूर्छित होकर गिर पड़ती थी और उसके पीछे-पीछे घूमती थी। अंत में नौबत यहाँ तक पहुँची कि माधव की मोहक स्वरलहरी शहर के लिए अभिशाप हो गई। लोगों के घर-गृहस्थी की शांति भंग होने लगी। किसी को वक्त पर खाना नहीं मिल रहा है, किसी के घर की बीबियाँ घर का काम धंधा छोड़कर बेसुध पड़ी हुई हैं। सब हैरान थे। अंत में नगर निवासियों का डेपुटेशन राजा के यहाँ इस आशय का गया कि या तो आप इस बला को (माधव को) यहाँ से हटाइए या तो हम लोग सब आपका राज्य छोड़कर दूसरे देश को जाते हैं। राजा बड़े धर्म-संकट में पड़ा, पर अंत में यह निर्णय किया कि अकेले माधव के लिए सारी प्रजा को देश निकाला दे देना ठीक न होगा पर इसके पहले उन्होंने माधव पर लगाये गये इलजाम की जाँच कर लेना मुनासिब समझा। इस दृष्टि से उन्होंने

बीस नव-यौवना सेविकाओं को बुलवाकर एक क़तार में कमल के पत्तों पर बिठलाया। इधर माधव को सामने बैठाकर वीणा का आलाप करने को कहा। आलाप शुरू हुआ, कुछ ही देर बाद सभी स्त्रियाँ स्पष्ट रूप से कामार्द्रा हो गईं। अब राजा को निश्चय हो गया और उसने माधव से हाथ जोड़ लिया।

तब राजा गयो पौरि पगारैं। तुम को ठोर न विप्र हमारें ॥
तीन पान को बीरा लयो। राह हाथ माधौ के दयौं ॥

इस प्रकार बेचारा माधव पुष्पावती से विदा हुआ, और अपनी वीणा सँभालकर एक ओर चल दिया। वह चलते-चलते कामावती नामक नगरी में पहुँचा और वहाँ विश्राम करने के लिये ठहर गया।

उस नगर में कामकंदला नाम की वारांगना रहती थी जो रूप लावण्य और संगीत तथा नृत्यकला दोनों ही में अद्वितीय थी। एक दिन राजा के दरबार में जलसा था जिसमें कामकंदला का नृत्य होने को था। शहर के अनेक लोग देखने जा रहे थे। माधव स्वयं संगीत कला का अन्यतम साधक था। उसे भी उत्सुकता हुई और अपनी बीन कंधे पर रख दरबार के दरवाज़े पर पहुँचा पर अपरिचित होने के कारण दरवानों ने भीतर जाने से रोक दिया। ख़ैर वह बाहर ही बैठकर सुनने लगा। भीतर कामकंदला का नृत्य हो रहा था और संगत में बारह मृदंग एक साथ बज रहे थे। पर इनमें से एक पखावजी के जो चौथे के बाद बैठा हुआ था, चार ही उँगलियाँ थीं जिससे उसकी थाप बेसुरी और बेताली पड़ती थी। माधव के कान इतने अभ्यस्त थे कि इन सब बातों का पता उसने बाहर से ही लगा लिया। और सिर धुनकर कहने लगा कि सभा में सब उल्लू के पट्ठे बैठे हैं, किसी को पता नहीं, द्वारपाल से कहा कि राजा से जाकर कह दो कि एक ब्राह्मण बाहर बैठा हुआ ऐसा-ऐसा कह रहा है। राजा के पास जब यह अद्भुत समाचार पहुँचा तो पहले तो बहुत चकराया पर जाँच कराने पर माधव की बातें सच्ची साबित हुईं। वह फौरन भीतर बुलाया गया और राजा ने बड़े आदर से उसे अपनी गद्दी पर दाहिनी

ओर बैठाया। राजा ने उसे सोने का मुकुट पहिनाया और दो करोड़ रुपये भेंट किये। राजा टोडर ने अपनी अँगूठी उतार कर माधव को पहिना दी। इसके बाद माधव का गायन और वीणा वादन हुआ। सब लोग मुग्ध हुए, ख़ासकर कामकंदला बहुत प्रभावित हुई। अंत में कामकंदला का नृत्य हुआ। उसने सिर पर पानी से भरा हुआ कटोरा रखकर एक कठिन नृत्य आरंभ किया। नाचते समय जब वह भाव प्रदर्शन में लीन थी उसी समय एक शहद की मक्खी उसके वक्षस्थल पर बैठ कर काटने लगी। अब वह अगर हाथ से उसको हटाती है तो नृत्य बिगड़ता है। यह सोच कर वहीं से उसने नृत्य की गति चौगुन करके एक चक्करदार टुकड़ा लिया जिसके पवन के वेग से वह मक्खी उड़ गई। इस बात को सिवा माधव के और कोई लक्ष्य न कर सका। माधव ने खुले आम कामकंदला की प्रशंसा की और जो कुछ भेंट उसे वहाँ मिली थी सब उतार कर कामकंदला को दे दिया। इसका कारण पूछे जाने पर उसने राजा से कहा—"तुम्हारी सारी सभा मूर्ख मंडली है, कोई गुण का समझने वाला नहीं है, कामकंदला इतना चमत्कारपूर्ण काम कर गई और किसी के पहचान में वह न आया।" राजा को इस अपमान से क्रोध चढ़ आया और उसने कहा कि—"यदि तुम ब्राह्मण न होते तो तुम्हारा सिर उड़ा देता, तुम फ़ौरन हमारे राज्य से बाहर चले जाओ।" माधव इसके पहले ही उठ चुका था और यह कहता हुआ चल पड़ा कि "ऐसे मूर्ख राजा के यहाँ रहने में ही मेरा अपमान है।"

पर उसके गुण को पहिचानने वाली कामकंदला से यह न देखा गया। वह आग्रह कर के माधव को अपने घर ले गई और उसे छिपा कर रक्खा। दोनों एक दूसरे के रूप-गुण पर मुग्ध थे। कामकंदला ने वहाँ माधव से प्रेम-कला सिखाने की प्रार्थना की। कई दिन तक दोनों आकंठ आनंदोपभोग में रत रहे। अंत में माधव ने यह कह कर बिदा चाही कि यदि यहाँ हमारा रहना राजा को मालूम हो जायगा तो तुम विपद में पड़ोगी पर कामकंदला ने एक रात्रि और उसके यहाँ व्यतीत

करने की प्रार्थना की और माधव रुक गया। मध्य रात्रि में कामकंदला ने प्रार्थना की कि कोई ऐसा उपाय करो कि इस रात का अंत न हो। माधव ने बीन सँभाली और अलाप शुरू किया। कहते हैं कि उस अपूर्व संगीत के प्रभाव से चन्द्रमा की गति रुक गई और ग्रह उपग्रह आदि अपनी-अपनी धुरी पर रुक गये।

ख़ैर, आख़िर उसका संगीत ख़तम हुआ, रात बीती और सवेरा हुआ और माधव चलने को तैयार हुआ। इस अवसर पर कामकंदला का दुख बड़ा हृदय-विदारक है। माधव के जाने पर वह एक प्रकार से मर ही गई। किसी प्रकार सखियों ने होश दिलाया पर 'माधव' 'माधव' कहती हुई विक्षिप्त की सी अवस्था में रहने लगी। वह सूख कर काँटा हो गई और खाना-पीना सभी भूल कर जीवित ही मृत सी अवस्था में रहने लगी।

इधर माधव की अवस्था भी लगभग वैसी ही थी। सिवा रात-दिन रोने के और कोई काम न था। अंत में उसने बहुत सोच-विचार कर राजा विक्रम की शरण लेने की ठानी। उसने सुन रक्खा था कि वह बड़ा परोपकारी राजा है। यह तै कर वह उज्जैन पहुँचा, पर राजा तक उसकी पहुँच न हो पाती थी। पर अपनी अर्ज़ी राजा तक पहुँचाने का उसने एक उपाय निकाल ही लिया। वहाँ एक महादेव का मंदिर था जहाँ राजा नित्य आता था। उसी मंदिर में माधव ने अपनी वेदना-सूचक एक दोहा लिख दिया और राजा की निगाह में वह दोहा पड़ गया और उसने उसे दासियों को भेज कर पता लगाया। 'ज्ञानवती' नाम की एक चेरी राजा का संदेस लेकर माधव के पास पहुँची और अपने साथ राजा के पास लिवा ले गई। माधव को देखते ही राजा को विश्वास हो गया कि यह विरह पीड़ित कोई सच्चा प्रेमी है और कहा कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। माधव ने अपना और अपने गुण का परिचय देते हुए अपनी रामकहानी कह सुनाई। राजा ने आश्वासन देते हुए सहायता करने का वचन दिया पर पहले उसको बहुत ऊँच-नीच समझाया कि गणिका से प्रीति करना ठीक नहीं। पर

माधव ने कुछ इस ढंग से अपने सच्चे प्रेम का परिचय इतनी करुण रीति से दिया कि सारी राजसभा रोने लगी और सब को यह निश्चय हो गया कि यह सच्चा प्रेमी है और अगर कामकंदला इसे न मिली तो यह घुल-घुल कर मर जायगा।

अंत में राजा विक्रम ने कामसेन राजा के नगर पर चढ़ाई कर दी। पर जब नगर थोड़ी दूर रह गया तो वहीं ठहर कर वह कामकंदला के प्रेम की परीक्षा करने का निश्चय कर के छद्म-वेश से उसके घर गया, और कामकंदला को बड़ी बुरी हालत में, विरह में म्रियमाण अवस्था में पाया। पर, तो भी प्रेम की परीक्षा करने के इरादे से उसे यह ख़बर दी कि माधव तो वियोग में घुलते-घुलते मर गया। यह सुनते ही पिंगला की भाँति कामकंदला ने भी तत्काल माधव का नाम उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिया। राजा बड़ा चकराया और उदास होकर अपने खेमें में आया और यह दुखद समाचार उसने सभा में कहा। ग़ज़ब हो गया। इधर माधव ने भी अपनी प्रियतमा का निधन सुनकर वहीं दम तोड़ दिया। सारे कटक में हाहाकार मच गया। इधर राजा ने दो प्रेमियों का ख़ून अपने सर लेकर जब कोई उपाय न सूझा तो आत्म-हत्या करने की ठानी और चंदन की चिता तैयार करवाई और बहुत सा दान पुण्य कर सूर्य-नमस्कार कर चिता पर बैठ गया।

स्वर्गलोक तक यह बात पहुँची; देवी देवता सब अपने-अपने विमानों पर आरूढ़ होकर यह विचित्र दृश्य देखने पहुँचे। राजा के मित्र बैताल को भी यह ख़बर मिली। राजा अग्निदान की आज्ञा ले रहा था कि इसी समय बैताल ने पहुँच कर हाथ थाम लिया और राजा की नियति का सब हाल जान तुरत अमृत ले आया और माधव को जिलाया। वह कामकंदला का नाम लेता हुआ उठ बैठा। तब राजा वैद्य के वेश में अमृतकलश लेकर कंदला के यहाँ पहुँचे और उसे भी जिलाया और बहुत कुछ आश्वासन देकर खेमें में आये। वहाँ से राजा के यहाँ दूत भेज कर यह कहलवाया कि जिस किसी मूल्य पर हो आप

कामकंदला को हमारे हवाले कर दीजिये। पर उसने इसमें अपमान समझ कर युद्ध की ठानी।

दोनों में घमासान युद्ध हुआ चार प्रहर तक। अंत में कामसेन राजा पराजय स्वीकार कर, हथियार फेंक हाथ जोड़ विक्रम के सामने खड़ा हुआ और माफ़ी माँगी। फिर उसने कामकंदला को लाकर राजा के खेमें में दाख़िल कर दिया।

चिर विरही माधव और कामकंदला का मिलन हुआ और आर्त दुखहारी राजा विक्रम दोनों को लेकर अपनी राजधानी उज्जैन चला गया।

× × ×

विरह-वर्णन

इस काव्य की भाषा परिमार्जित अवधी है। चूँकि यह ग्रंथ छोटा और अभी तक अप्रकाशित है इसलिए इस संग्रह में यह समूचा दे दिया गया है। यह विरह प्रधान आख्यान है। दोनों ओर प्रेम की पीर समान हैं। विरह का व्यापक रूप से भी वर्णन किया गया है।

अगम अथाह अलेख अति, विरह समुद्र अगाध।
प्रीति हिरानी बुद्धि जनु, भूले ब्रह्म समाध॥
विरह समुद्र अगम अति आही। बूड़ि मरै नहिं पावै थाही॥
बुधि बल सौ कोउ पार न पावै। जौ नर सप्रेम गुन चढ़ि धावै॥
विरह डसत नर जिऐ न कोई। जौ जीवहिं तौ बौरा होई॥

इस पर थोड़ा कबीर का भी प्रभाव मालूम होता है। देखिए कबीरदासजी क्या कहते हैं—

विरह भुवंगम तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जिए, जिए तो बाउर होय॥

वियोग व्यथा के वर्णन में यह ग्रंथ अन्य प्रेममार्गी काव्यों के समकक्ष है। यद्यपि इसमें आध्यात्मिक व्यंजनाएँ कम हैं तथापि सूफ़ी सम्प्रदाय की मूल भावना प्रेम की पीर का वर्णन इसमें बहुत अच्छा है। विरह की दशा का वर्णन देखिए—

बुधि विद्या गुन ग्यान, प्रेम चाव धुनि हर्ष बल ।
सब तजि होइ अयान, जा घट विरहा संचरै ॥

इस काव्य में विरह वर्णन के अतिरिक्त संगीत के मादक प्रभाव का बड़ा सुंदर वर्णन है । महारास के अवसर पर जैसी दशा स्त्रियों की थी करीब-करीब वैसी ही दशा माधवानल की वीणा के प्रभाव से हुई थी ।

माधवानल-कामकंदला

प्रथमहि पारब्रह्म के सरनै । पुनि कछु रीति जगतरस बरनै ॥
पारब्रह्म परमेस्वर स्वामी । घट घट रहै सो अंतरजामी ॥
घट घट रहै लखै नहिं कोई । जल थल रह्यो सर्ब मय सोई ॥
जाकौ आदि अंत नहीं जानौं । पंडित कथैं ग्यान सोई मानौं ॥
ग्यानी होइ सो गुर-मुख पावै । खोजी होइ सो खोज लगावै ॥

मन वच क्रम सोवत चलत, जागत चितवन चित्त ।
संग लागि डोलत फिरौं, सो करता धरु चित्त ॥

जगपति राज कोटि जुग कीजै । सहज लाल छाजे थिति कीजै ॥
दिल्लिय पति अकबर सुरताना । सत्त दीप मैं जाकी आना ॥
सिंहन पति जगन्नाथ सुहेला । आपनु गुरू जगत सब चेला ॥
जब घर भूमि पयानौ करई । वासुकि इन्द्र आसन थरथरई ॥
गहि त्रिन दंत सरन सो आवै । थापहि फेरि भूमि सो पावै ॥

दंड भरै सेवा करै, वासुक इन्द्र कुबेर ।
गनु गंध्रव किन्नर सबै, जच्छ रहै होई चेर ॥

देस देस के भूपति आवैं । द्वारे भीर वार नहि पावैं ॥
कपै बहुत त्रास जी लैहीं । लै अकोर पर द्वार न दैहीं ॥
इक छत राजु बिधाता कीनौं । कहुँ दुर्जन कोउ रह्यो न चीन्हौं ॥
धर्म राजु सब देस चलावा । हिंदू तुरक पंथ सबु लावा ॥
आगैरेंवु महामति मंडनु । नृप राजा टोडरमल डंडनु ॥

जो मति विक्रम कीन, मंत्रु करत मनु चैन ।
सुनत वेद सुमिरत सदाँ, पुन्य करत दिन रैन ॥

सन नौ सै इक्यावन्नुवै आइ । करौं कथा अब बोलौं गाहि ॥
कहौ वात सुनौ अब लोग । कथा कथा सिंगार वियोग ॥

कछु अपनी कछु परकृति चोरौं। जथा सकति करि अच्छर जोरौं॥
सकल सिंगार बिरह की रीती। माधौ कामकंदला प्रीती॥
कथा संसकृत सुनि कछु थोरी। भाषा बाँधि चौपही जोरी॥

माधौनल सब गुन चतुर, कामकंदला जोगु।
करौं कथा आलम सुकवि, उतपति बिरह वियोगु॥

पहुपावति नग्र इक सुनौ। गोपीचंद राज वह गुनौ॥
धर्मपंथु दिन प्रति पगु धरई। पहुमी पवित्र पापु नहिं करई॥
तिहिपुर बसै सदाँ सुख त्यागी। माधौ विप्र नाम वैरागी॥
राजा पास प्रात उठि जावै। लै तुलसी दल देव पुजावै॥
देव पुजाइ विप्र फिरि आवै। प्रात भयें पुनि दरस दिखावै॥

बाँचै बेद पुरान, नौ ब्याकरन बखानई।
जोतिक आगम जानि, सामुद्रिक साँगीत सब॥

विद्या सोइ बृहस्पति जानौ। रूपु सोइ मकरध्वज मानौ॥
ताकौ रूप नारि जो देखै। पलक ओट जुग जुग भरि लेखै॥
जे सब नारि बसैं पुर माहीं। तिहि के निरखि गर्भ गिरि जाहीं॥
गावैं सरस बजावैं वीना। नर नारी मोहे भ्रम कीना॥

मनु लागै जिहि धाइ, सो पुनि मन ही मो बसैं।
जागत सोवत नित्त, देखहु आँखिन मैं लसैं॥
बिन देखें अकुलाइ, प्रान नहीं धीरज रहहिं।
निसु दिन भीजहिं चीर, नैना ही के नीर हिं॥

दिन एक प्रात भयो उँजियारा। माधौनल अस्नान सिधारा॥
करि मंजन पुनि तिलक सँवारैं। नाद मधुर धुनि मुख उच्चारैं॥
सुनत नाद मोहीं पनिहारी। सीसहु ते गागर भुमि डारी॥
सुनत नाद तिहि दीनैं काना। रीझि रहैं सब चतुर सुजाना॥
करैं राग मोहन के वेसा। ज्यौं ठग मूर करै वर वेसा॥

थके कुरंगन जूथ, सुनत नाद सुर ग्यान सब।
तब धाईं करि हूय, काम कमान चढ़ाइ के॥

इक त्रिय मोहि मुर्छित धर परही । इक त्रिय धरत सुद्धि नहिं रहही ॥
इक नैनन सों नैन मिलावै । तजि सर एक निकट चलि आवै ॥
एकन परत न चीर सँभारा । व्याकुल भईं छूटि गये बारा ॥
एकनि भूषन दए उतारी । एकनि तजी कंचुकी सारी ॥
एकै नारि चली उठि संगा । जैसें धुनि सुनि चले कुरंगा ॥

काम धनुष सरपंच लै, मारौ त्रिया सुनाइँ ।
वे मृगगति मोहीं सकल, द्विज पारधी की नाइँ ॥

एक नारि हँसि हँसि मुख जोवै । नैन नीर इक भरि भरि रोवै ॥
डोलै एक पवन ज्यों दिया । छुटे केस उघरि गये हिया ॥
करै राग माधौनल रागी । ज्यौं तन माँहि ठगौरी लागी ॥
माधौनल देख्यौ पनिहारी । ब्याकुल भई नगर की नारी ॥
तब उठि चल्यो नग्र कहँ सोइ । कहत चरित्र सप्र दिन सोइ ॥

गयौ मदन सर मारि, नारि डारियत हार सब ।
बिरह अनल तन जारि, तन मन द्वंद उदेग दैं ॥

नगर खोरि माधौनल आवै । त्रिया पुरिख गृह अन्न जिवावै ॥
सुनत नाद कर छीन सँभारी । भूमि अहार दीन सब डारी ॥
पूँछै पुरिष नारि सुनु मोही । ऐसे नैन दिये बिधि तोही ॥
कत तैं भोजन दियौ सो डारी । वेगि कहौ नहिं डारौं मारी ॥
बोली बचन कंत सुनि लीजै । स्वामी दोसु मोहि नहि दीजै ॥

माधौनल कियौ रागु, सुनि धुनि हौं बिस्मै भई ।
तहाँ जाइ मनु लागु, ताते गिरयौ अहार भूइँ ॥

तब सुनि कैं उठि चल्यौ रिसाई । नगर लोग सक्कवै बुलाई ॥
चलहु राइ के सनमुख होहीं । कहौ विप्र त्रिया सब मोही ॥
नग्र लोग बूढ़े अरु वारे । राजा आगैं जाइ पुकारे ॥
सुनौ राइ इक वचन हमारा । माधौनल मोहीं सब दारा ॥
पूछै राह कौन गुन कर ही । कैसें विप्र त्रिया मनुहरही ॥
करै नाद सब त्रिया लुभाहीं । मृग गति मोहि थकित ह्वै जाहीं ॥

कहै प्रजा राजा सुनौ, हम न रहै इहिं गाँऊ।
कै यह बेगि निकारिए, जिहि माधौनल नाँउ ॥

सुनि राजा जिय चिंता करहीं। कहा करौं जो परजा जरहीं ॥
पहिले पूँछि लउँ वेउहारा। तब माधौ को देउँ निकारा ॥
तब राजा पठवा इक बारी। माधौनल को ल्याउ हकारी ॥
गयौ पौरिया माधौ जहँ रहही। सीस नाइ विनती इक करही ॥
चलौ बेगि तुम राज बुलाए। परजा पवन कहन कछु आए ॥

माधौनल चिंता करी, मन मैं भयौ उदास।
माधौ धरि बीना चल्यौ, आयौ राजा पास ॥

अधिक मधुर धुनि बीनु बजावै। सरस राग रागिनि उपजावै ॥
चेरी बीस कराइ हकारी। सब पहिराइ कुसुंभी सारी ॥
तब राजा परतिज्ञा लेही। कमल पत्र पर बैठक देही ॥
माधौनल वीना कर गह्यौ। खस्यौ काम धीरज नहिं रह्यौ ॥
माधौ विप्र नाद अस कहा। भीजे चीरु मदन तब बहा ॥

तब राजा आइसु दयौ, चेरी दई उठाइ।
सब ही के पीछे रहे, कमल पत्र लपटाइ ॥

अचरज देखि राजा तब रहा। मिली प्रत्यंग्या जो गुन कहा ॥
उठि राजा गयौ पौरि पगारैं। तुम को ठौर न विप्र हमारैं ॥
तीनि पान कौ बीरा लयौ। राइ हाथ माधौ के दयौ ॥
तब उठि वरन अठारह पती। चल्यौ छाँड़ि के पुहुपावती ॥
बीना गहै बजावै रागा। छिन छिन उपजावै वैरागा ॥
दिन दस मारग रहयौ सुजाना। कामावति नगरी नियराना ॥

कामवती नगरी भली, काँमसैनि नृप नाम।
मन मैं माधौनल कहै, इहाँ करौं बिश्राम ॥

नगर लोग सब बसै सुकर्मी। ब्राह्मन छत्री बैस सुधर्मी ॥
तिहिं पुर मद गयद सो रहै। मदिरा नाम औरन सौं कहै ॥
मार सोइ सतरँज मैं होही। पुष्प पत्र लै बाँधै कोही ॥

दंड सोइ जो जोगी लेही। और दंड काहू नहिं देही॥
चंचल चोर कटाछ त्रिया के। जो नित चोरैं चित्त पिया के॥

दीपक वधिक वसै जहाँ, जो निसि बसै पतंग।
ऐसो नगर रच्यों बली, काम सैनि चतुरंग॥

तिहि पुर बसै चंद्र की कला। पातुर सुनि कामकंदला॥
ताकौ रूप बरनि को पारा। बरनत सहस जीभ पुनि हारा॥
कुंतल चिहुर चुवहिं ज्यों घाला। अंबुधार केधौं अलिमाला॥
मध्य माँग चंदनु घसि भरै। दूध धार विषधर मुख परै॥
कहुँ कहुँ पुष्प कहूँ कहुँ मोती। जनु घन मैं तारागन जोती॥

माँग अग्र मानिक दिएँ, औ मुक्ता गन संग।
छिन छिन जोति धरैं मनौं, मनि उछली जु भुजंग॥

करनन करन फूल छबि भारी। मन्द मयंक की कोटिन नारी॥
मनि मुक्ता लागै बैडूरज। मानौ घन महँ दिएँ दोइ सूरज॥
कर कुँकुम लै तिलक सँवारे। चैन मैन जनु बान सुधारे॥
भृकुटि चाँप चंचल जब मोरै। चितवन चारु चतुर चित चोरै॥
मीन मधुर पंजर मृग हारै। निरखत लोचन जुगम डरारे॥

पलक ओट अकुलाइ, चंचल नैकु न थिरु रहै।
श्रवन कोर लौ जाइ, निरखौं त्रिया कटाछ जब॥

नासा अग्र बेसर कौ मोती। घंट बीच रोहिन की जोती॥
तिल प्रंसहि वीव तुषारा। छिनु छिनु दारिज नु माछिनि हारा॥
नासा अग्र मोती इमि रहहीं। दीपक पुष्य करन कौं चहहीं॥
मृगमद तिलक रहै अति मानौ। निरखत अलिविंदु नीयर जानौ॥
रस बिनोद लागैं अहिछौना। लालच लुबुध लोभ जनु गौना॥

आलम अलकैं छुटि रहीं, बेसरि सौं अरुझाइ।
मानहु चारा चोंच तैं, अहि सुत लेत छुड़ाइ॥

पल्लघ विंब वँधूक लजाहीं। आस्वास रस भौंर लुभाहीं॥
दामिन दंत दिए जनु हीरा। सेत असेत अरुन के धीरा॥

सखि स्यौं हास करहिं जब कामिनी। कमल पत्र कैधौं जनु दामिनी॥
सरस्यौं बचन जु बोलि सुनावै। सहज मनहुँ बाँसुरी बजावै॥
लोग कहैं कोकिल कल नींकी। ताकी धुनि सुनि लागति फीकी॥

अबला बचन अमोल, प्रान धरन चिंता हरन।
श्रवन सुनत वे बोल, मुनि मनसा नहिं थिर रहैं॥

हरे पीत मनि लाल विसाला। रतन जटित सोहति कँठमाला॥
मुकताहल दोउ कुच बिच रहहीं। दुहुँ पुर मध्य जु सुरसरि बहहीं॥
कुच कंचन भरि साज सवाँरे। सुर सरि धरि जुग ससी दुधारे॥
चक्रवाक सरिता की धारा। मानहुँ मुनि मन वारहि पारा॥
कनक वेलि श्रीफल जुग लागे। किधौं पुष्प गुथि अति अनुरागे॥

अति कठोर कुच तन उठे, सवलैं सहित सुभाइ।
मनुहु मैन को भस्म करि, बैठै ईस चढ़ाइ॥

कनक बरन दुइ बाँह सुहाहीं। देखे नीत सँगीत सुहाईं॥
कनक टाड कर कंकन चलिया। फुद जू चामहि मुद्रिक पलिया॥
भुज सतूल अरु सीन कटाही। लगि फूली सुघरी जु सुहाही॥
सहज हंस तज्यौ कमल दिखावे। नखन अग्र किन्नरी बजावै॥
पलव पल्ल सोभी नख भारे। विद्रुम विंब कटक मनौ दारे॥

भुज चंदे की मंजुरी, मिलति एक के रूप।
मानहु कंचन खंभ तैं, द्वादस लता अनूप॥

उदर छीन रोमावलि देखा। कनक खंभ मृगमद की रेखा॥
नाभि निकट स्यौं नागिनि चली। जनु कुच कमल नलिन इक भली॥
नाभि पात सौं उठी सुहाही। कँवलहु तैं अति अवली आई॥
हृद कर संख ब्रह्म दै काढी। खंभ बेलि कंचन मनौ बाढ़ी॥
कै उलटी कालिंद्री बहही। गिरि गंगा परसन कौं चहही॥

इत तैं गंगा सुर चल्यौ, उत तैं जमुना अंभु।
कुंकुम चंग तुरंग भरि, मिलि परसै इक संभु॥

मृग अरु ससा सिंघ बन भागे। देखि मध्य उदि उपमा लागे ॥
मध्य भीन बोलैं ज्यौं आधे। कसनी कसी कुच नीके बाँधे ॥
जंघ जुगल कदली के खंभा। तिहि छबि को पूजै नहि रंभा ॥
नूपुर चूरा जे हरि वाजैं। छुद्रावलि घंटिका विराजैं ॥
घसि चंदन इक चोली कीनी। कंचुकि पहिरि पटोरी लीनी ॥

कुसुँभी सारी पहिरि कैं, बेनी गुही सँवारि।
राजा के मंदिर चली, कामकंदला नारि ॥

औसर चली कामकंदला। नगर लोग सब देखन चला ॥
माधौ बिप्र बात या सुनी। कहियतु कामकंदला गुनी ॥
तब उठि माधौनल सँग लागा। काँधे बीन धरे वैरागा ॥
मंदिर मध्य गयौ सब लोगा। माधौ विप्र पवरियन रोका ॥
माधौ कहै जानदे मोही। हौं नहि जाने दें द्विज तोही ॥

राजमँदिर कैलास सम, जान देउँ नहिं तोहिं।
तुहि बाम्हन देखत कछू, कहैं राज बुलावे मोहि ॥

पूँछि राय उत्तर कह ऐसी। जब तुहि पहिचाने परदेसी ॥
उहिंठाँ माधौ पँवरि दुवारा। राजा मंदिर होइ अखारा ॥
तंत गिरा गाइन बहु गाँवहि। द्वादस तहाँ मृदंग बजावहि ॥
द्वादस माँझ इक तुरिया दीना। दहिने हाथ अँगुरिया हीना ॥
टूटै तार भंग सुर होई। मूरख सभा न जानै कोई ॥

ऐसो को सुर ज्ञानि, राज सभा मूरिख सकल।
ताल भंग को जानि, द्वादस तहाँ मृदंग धुनि ॥

ताल भंग माधवनल सुनही। द्वारे बैठि सीस बहु धुनही ॥
ताल कुताल सत सुर जानै। सब पुरान संगीत बखानै ॥
माधव कहै पौरिया आवहु। राजा आगैं जाइ सुनावहु ॥
द्वारे बैठि विप्र इक आही। सकल सभा सौं मूरखि कहही ॥
द्वादस माहिं तूरिया अनारी। दहिनैं हाथ अँगुरिया चारी ॥

सात चारि के मद्धि है, उठिकै देखौं ताहि।
चूकै तार जो पाव मिसि, पातुर दोस न आहि॥

सुनत पँवरिया उठि किन धावँही। राजा आँगैं जाइ सुनावहिं॥
बिप्र एक है पँवरि दुवारा। निर्त ताल सब कहै बिचारा॥
कर मीजै सिर धुनि धुनि रहई। सकल सभा सौं मूरिष कहई॥
कहै जु तुरिया द्वादस माहीं। दच्छिन हाथ अँगुरिया नाहीं॥
सात चारि के अंतर रहै। ऐसी बात बिप्र इकु कहै॥

ताही ठौर को तुरिया, राजा लियौ हकारि।
हतौ अँगूठा मैन को, तरस अँगुरिया चारि॥

मिली बात माधौ जो कही। सभा सकल चक्रत ह्वै रही॥
कहै राज सुनि रे दरबारी। बेगि जाइ कैं ल्याउ हँकारी॥
अयौ पौरिया माधव ठाँईं। पाउ धारिये विप्र गुसाईं॥
राजा मंदिर माधौ चला। सुंदर विप्र मदन की कला॥
कँठ सोहै मौतिन की माला। कानन कुंडिल नैन विसाला॥

झीने पट की धोवती, उपर उपरनी झीन।
सीस पाग वैना धरे, राज-मंदिर पगु दीन॥

सभा मध्य माधौनल गयौ। बेगि लोगु सब ठाढ़ो भयौ॥
आवत माधौनलहि निहारा। सिंहासन तजि भये नियारा॥
माधौ ब्रिप्र चिरंजी कीन्हौं। आसिर्वाद नृपति कहँ दीन्हौं॥
राजा दियौ सिंघासन टारी। ता पर बैठे रूप मुरारी॥
बैठ्यौ ब्रिप्र सिंहासन जाई। देखि लोग सब रहे भुलाई॥

कै रे इंद्र कै चंद्र है, कैं कान्हर कैं काम।
कै कुबेर के जच्छ हैं, कै किन्नर कै राम॥

कनिक मुकट मुद्रिक मनि माला। माधौनल कौ दीन भुवाला॥
मुद्रिक टोडर दये उतारी। पहिराये भूषन सब भारी॥
टका कोटी द्वै दछिना दीनी। स्वस्ति बोलि माधौनल लीनी॥

चंदन खौरि तिलक सरसाखैं। पोथी काँख उपरना काँधैं ॥
बैठि सिंघासन बहुत सुखु पायो। दुख सँताप लै गंग बहायौ ॥

गुन देखैं गुनिजन सुखी, निर्गुन होइ जनु कोइ।
राय रंक सब बीच लै, जौ रँपेट गुन होइ ॥

ऊँच नीच पूछहिं नहि कोई। बैठहि सभाँ जौर गुनु होई ॥
गुनि पुरिष जौं परभुमि जाई। त्यों त्यों मँहगे मोल बिकाई ॥
जैसे पुत्रहि पाले माई। त्यों गुनु रहै सदा सुखदाई ॥
गुन बिन पुरिष पंख बिन पंखी। गुन बिन पुरिष अँध ज्यों अंखी ॥
गुन बिन पुरिष पत्र बिन पंखी। गुन बिन पुरुष अंध बिनु आँखी ॥

संगति की तौ गति उठत, तंत कृति तिहिं काल।
बहुरि अलापै राम षट, पंच पंच सँग बाल ॥

एक राग सँग पाँच रागिनी। संग अलापै आठौ नंदनि ॥
प्रथम राग भैरव उच्चरही। पाँचौ कामिनि संग सुहाहीं ॥
प्रथम भैरवी पुनि बिलाविल। पुनि जाकी गावै बंगाली ॥
पुनि असावरी औ बैरारी। ये भैरों की पाँचौ नारी ॥
पंचम हर्ष दे साथ सुनावै। पींगाली मधु माधौ गावै ॥

ललित बिलावलि गावहीं, अपनी अपनी भाँति।
अस्ट पुत्र भैरों कहै, गाइनि गावै पाँति ॥

दूती मालकौंस आलापै। पंच कामिनि संगति थापै ॥
गौंडी काटी देव गँधारी। गँधारी सी हुतीं उच्चारी ॥
घनासिरी ये पाँचौ कामिनि। मालकौंस के संग सुभाँमिनि ॥
मारू मस्तक अंग मेवारा। प्रबल चंद्र कौसिक औ भारा ॥
घूँघट और भौंरन दग गाए। मालकौंस आठौं सुत भाए ॥

पुनि आयो हिंडोल, पंच कामिनि अस्ट सुत।
उठै सो तान कलोल, गाइन ताल मिलावही ॥

तेलंगी पुनि देव गिराइ। वासंती सिंधुरी सुहाई ॥
सा अहेरि लै आया राजा। संग अलापहि पंच भारजा ॥

सुर माँ नंद भस्म करि आई। चंद्र बिंब मंगली सुहाई॥
सरसवान औ आहि विनोदा। गावैं सरस बसंतक मोदा॥
अस्ट पुत्र मैं कहे सवारी। पुनि आई दीपक की बारी॥

काछाली पट मंजरी, टोडी कही अलापि।
कामोदी औ गूजरी, सँग दीपकैं थापि॥

काल काल औ कुंतल रामा। कमल कुसम चंपक के नामा॥
गौड़ी कान्हरिय कल्याना। अस्ट पुत्र दीपक के जाना॥
सब मिलि वहि श्री रागहि गावैं। पंचौ संग वरंग अलापै॥
बैराटी करनाटी धरी। गौरी गावैं आसावरी॥
पुनि पाछैं सिंधवी अलापी। सिरी राग सँग पाचौ थापी॥

सावा सारँग सागरा, औ गंधारी भीर।
अस्ट पुत्र श्री राग के, गोल वुंड गंभीर॥

अष्ट मेघ राज वै गावैं। पाँचौ संग वरंगनि ल्यावैं॥
सौर गौड़मल्लारी धुनी। पुनि गावै आसा गुन गुनी॥
ऊँचे सुर सों सूहौं कीनी। मेघ राग सँग पंचौ चीन्ही॥
बीरा धर गज अरु केदारा। चंडोली धर नित उजियारा॥
पुनि गावै बासकर औ स्यामा। मेघराग पुनि तिन के नामा॥

अस्ट राग ये सकल सँग, रागिनीय गनि तीस।
सब सुत रागन के कहे, अठारह दस बीस॥

गयौ राग रागनि संगीता। अब बरनौं मैं सभा संगीता॥
रंगभूमि बहु भाँति सँवारी। ताल मिलाइ करैं पतिहारी॥
दीपक दीवती चले चहुँ भाँती। बहुत मसाल मैन की बाती॥
अंतर वोट पिछौरी दीन्हीं। पहुप अँजुली दुहुँ कर लीन्हीं॥
सब मिलि श्री राग वै गावैं। संकर गौरि गनेस मनावैं॥

षरज रिषभ गंधार, मध्यम पंचम धैवतो।
औ निषाद उच्चार, ये कवि गाये सप्त सुर॥

पुनि मिलि संग एक सुर कीन्हाँ। रंग भूमि पातुर पग दीन्हाँ ॥
सुर सुर मध मध धिपि धिपि बोलहिं। तार धार सँग लागे डोलहिं ॥
तथेइ ताथेइ ताता थेइ करहीं। तनु थकत न थक मुख उच्चरहीं ॥
सुधिप सुधिप सुधिप धमधमकहिं। झझकत झझकत लाल तरंगहि ॥
झंक झँझक्कत उठत तरँग रंग। अरी उच्चारहिं दँद दँद मिरदँग॥
प्रथम ताल औहै झप ताला। सकल ताल डोलैं इक ताला ॥
राग दाव नरपतिहि प्रधाना। प्रगटे सप्त भेद सुर ज्ञाना ॥
दुदुंर छंद धुरपद संचारहिं। ठही रीत जनु इंद्र अखारहिं ॥
धुनि देसी कंदला दिखावै। अच्छर अर्थ हस्त पल्यावै ॥
थिरकी लीन तार जब तोरहि। नैन कोर माधो सो जोरहि ॥

सुर सुंदर दोहा षटपदा, और बिस्मै पद गाइ।
बूझै चतुर बिलच्छन, माधौनल सब भाइ ॥

पुनि गुन काम कंदला करई। जल भरि सीस कटोरा धरई ॥
भृकुटी चाँप चँचल मुख मोवहि। कर अँगुरी सौं चक्र फिरावहि ॥
दीप जोति इक भँवर उड़ाई। कुच के अग्र सो बैठो जाई ॥
जब लागै तब दैं दुख डारहिं। मनहु भवंग समै सरसावहिं ॥
चंदन बास लीन ह्वै रहा। बैठो भाँवर प्रेम रस भरा ॥

छिन छिन काटहि मधुकरा, अस्तन वेदन होइ।
माधौनल सब बूझही। और न बूझै कोइ ॥

भेंटैं पवन सुख वासु न आवइ। अस्तन श्रोत समीर चलावहि ॥
ज्यों कर छुहा चक्र गिरि परई। कामकंदला चौगुन धरहीं ॥
पवन तेज मधुकर उड़ि चला। माधौनल बूझी यह करा ॥
तब राजा के नैन निहारै। मूरखराज न क़ला बिचारै ॥
रीझ्यौ माधव कला बिचारी। मुद्रिक टोडर दए उतारी ॥

कनक मुकुट मनि माल सब, टोडर दए उतारि।
टका कोटि दै दच्छिना, दीनी माधौ डारि ॥

चतुर चतुर सो नैन मिलावहि। दुहुतन मदन उमगि बहु आवहि ॥

दूरि दूरि देखैं मुरि मुसुकाही। ऐसे नैन न नेकु अघाहीं ॥
जब पारखी नाद मुख गावैं। सुनतहि मृग हिय मोहित ह्वै आवैं ॥
हरिनी कहै हरिन का कीजै। रीझि पारखी कौं का दीजै ॥
हमरैं कहा दैन कौ दाना। कहैं कुरंग सो दीजै प्राना ॥
तब पारखी धनुष संधाना। मृग हियरा आगे कै दीन्हां ॥

धनि कुरंग जिनि राग सुनि, रीझि न राखे प्रान।
वैन करत वलि विक्रमा, दियौ न ऐसो दान ॥

धारा भोज लच्छ जिनि दीनौ। करन वैन वलि विक्रम कीनौ ॥
ये सब मुए मीचु के मारे। रीझि प्रान नहिं दिए पियारे ॥
लच्छ लच्छ जे त्यागहिं दाना। तो नहिं पूजहि हिरन समाना ॥
कह राजा दुनु विप्र उदासी। कौन रीझ तैं त्यागी रासी ॥
कहै विप्र हौं कला विचारी। औ मुग्धा सब सभा तुम्हारी ॥

नाचत त्रिय कुच अग्र पर, मधुकर बैठ्यो आइ।
अस्तन स्रोत समीर सों, दीनौ भँवर उड़ाइ ॥

तू राजा अविवेकी आई। गुन औंगुन बूझौं नहिं ताही ॥
मै विद्या परवीन सुजानाँ। रीझि कला नहिं राखौं प्राना ॥
क्रोधवंत राजा उठि कहै। ढीठ विप्र चुप क्यों नहि रहै ॥
मारौं खड्ग टूक द्वै करौं। विप्रघात अपजस सौं डरौं ॥
जो राजा तू मारै मोही। कला रूप ह्वै व्यापौं तोही ॥

पतित करौं तुहि लोक मह, स्वर्न लोक हरिद्वार।
जग मैं अपजसु पावही, सकल कहै हत्यार ॥

राजा ब्रह्म हत्या जो करै। कलि मैं कुस्टी ह्वै अवतरै ॥
तीरथ कोटि जग्य जो करै। तबहुँ न ब्रह्म दोष तैं तरै ॥
सुनि राजा कुछ कहन न पारै। क्रोधवंत मनही मैं विचारै ॥
कह राजा जह लग मोर राजू। छाँड़ि जाहु तहँ लगि तुम आजू ॥
जो तोहि इहां बहुरि सुनि पाऊँ। खाल खैंचिकर भूस भराऊँ ॥

बोलहि क्रोध न बाल, बेगि निकारहु नग्र तें।
भूस भराऊँ खाल, जो कोउ राखै देस मैं॥

तब सो वचन माधवनल कहै। तोरे नग्र राइ को रहै॥
मैं गुनिवंत भूमि पर बेसा। चरन धोई करि पियें नरेसा॥
यह सुनि नृप मंदिर मैं जाई। नीच सीस करि सासैं लेही॥
राजा मन मैं चिंता करही। फिरि फिरि दोस कर्म को देई॥
मैं दिन राति सभा संचारौं। त्यागहुं लच्च लोभ नहिं करौं॥

जो दच्छिन ध्रुव अस्तवै, तम अग्नि सिवराइ।
पश्चिम भान उदै करें, तऊन कर्म गति जाइ॥

सम दुग भीर होइ जौ थाहाँ। गंगा पश्चिम करैं प्रवाहाँ॥
पंख लागि कै सिला उडाँही। पाहन फोरि कमल विहसाँही॥
जौ इतनी विपरीत चलावै। तऊ न कर्म सौं छूटन पावै॥
कर्म हेत हरिचँद जलु भरा। कर्म देत वलि सर्वसु हरा॥
कर्म हेत पांडव फल खाये। कर्म रेख रघुपति बन आये॥

सोई कर्म मनुष्य मैं, कोटि करावहि भेख।
सो कवि आलम ना मिटै, कठिन कर्म की रेख॥

चित चिंता माधव गहि रहा। तब उठि कामकंदला कहा॥
कवन सोच सोचहु सग्याना। विद्याधर तुम चतुर सुजाना॥
तुम सुजान जाना गुन मोरा। मैं कुछ गुन पहिचानहुँ तोरा॥
मधुकर अहि कमलन गुन जानैं। दादुर कहाँ पीउ पहिचानैं॥
नाच कूद कछु अँध न देखैं। रूप कुरूप एक सम लेखैं॥

बहिरौ आगे जो कोऊ, संख बजावै आइ।
वह अपने मन जानहीं, कछु अमृत फल खाइ॥

चलहु बिप्र घर बैठहु मेरे। चरन धोई सेवहुँ कर जोरे॥
प्रेम कथा कछु मोहि सुनावहु। काम अग्नि की तपनि बुझावहु॥
मैं रोगी तुम वैद गुनानी। सोहि सँजीवनि देहु सो आनी॥

काहे गोरिख फिरहि अकेला। अब सँग लाइ करहु मोहि चेला॥
मैं भई धूधल तू सूरज मेरा। तू चंदा हौं भई चकोरा॥

तू मधुकर हौं कमलिनी, वैस वास रसलेहि।
भरै बूँदते स्वाति जल, ऐस बूँद भरि देहि॥

सुनहु वारि माधौनल कहई। इहि जग नेहुँ नहीं थिर रहई॥
जो थिर रहै तो कीजै नेहू। बिछुरि सँताप देह को देहू॥
नेह लगाइ जो बिछुरै कोई। निस दिन रोम रोम दुख होई॥
नेह जैसे खांडे की धारा। दह दिस फिरै छुअन कौं पारा॥
सखी एक माधौ पहिं आई। चलहु सेज पर बैठहु जाई॥
उठि माधौनल बैठे सेजा। देखत काम तजै तन तेजा॥
कुसुम मुकट सिर केसर सोहै। निरखत मकरध्वज मन मोहै॥

उर फूलन की माल, रतन जटित कुंडल दिपै।
मृगमद तिलक सो भाल, कर बीना माधौ गहै॥

कामकंदला करयो सिंगारा। अरून फूल के पहिरे हारा॥
तापर पहिरि कंचुकी झीनी। सोधै छिरकि बेल सौ भीनी॥
पुष्प गूँथि वैनी बनवाई। चंचल गात प्रवीन सुहाई॥
दियो लिलाट चँदन को टीका। मध्य विंदु विंदुन कौ नीका॥
दये न लेइ दृग ओर करि अंजन। पलौ ओट जनु फरकहि खंजन॥

कुसुँमी सारी पहिरि सुजान, अंग अंग भूषन किये।
मुख भरि खाये पान, दाड़िम दसन विराज ही॥

कहै कंदला सुनौ सहेली। मोहि सिखावहु प्रेम पहेली॥
अब लौं मुग्धा हति अलबेली। सिखवहु रस की रीत सहेली॥
पुरुष संग रचि सेज न जानहुँ। प्रथम समागम जिय पहिचानहुँ॥
वह सुजान माधवनल आही। सब अँग कोक बखानहुँ ताही॥
चौदह विद्या कोक बखानै। अंग बास मनमथ की जानै॥

कोक कला हौं ही कहौं, सब विधि अरच बखानि।
और सिखावहु मोंहि कछु, पूँछहु गुन जन मान॥

कहै सखी सुन हो कँदला। तो तै रस जानै को भला ॥
जहाँ वासु मनमथ को जानौ। तिहि ठाँहरिसु निकट जनि आनौ ॥
जहाँ अंग मनमथ रह तहाँ। छिपन कियौ रहियों पै तहाँ ॥
कोक रीति कंदला सिखाई। माधौनल पै सखी पठाई ॥
माधौ निरखि रीझि कै रहा। तिहि छिन आइ मदन तन दहा ॥

मदन धनुष सरपंच लै, माधौ सनमुख आइ।
कामकंदला निरखि कै, सरन सएन गुहिराइ ॥

मिलि प्रजंक पर जुगल किलोलहिं। बचन चातुरी दोऊ बोलहिं ॥
सखी सिखाइ कंदला गई। आवर मंदिर ठाढ़ी भई ॥
बैठि कंदला माधव पासा। सूर संग जनु चन्द प्रकासा ॥
जोई कछु कोकिल की रीती। तैसिय रीत रची विपरीती ॥
दोउ कामवंत भरि जोबन। सुंदर सुघर सुजान विलच्छन ॥

परसन लालन वै पतन, त्रिया पुरुष सुख लीन।
फुटक बदन उमगे रहैं, भये पंचसर हीन ॥

किलकत वोलत लोक कहानी। भयौ भोर प्रगट्यो जु बिहानी ॥
कामकंदला परिहरि सेजा। भइ बिहाल तन रह्यौ न तेजा ॥
झलकैं पलक उनीदे नैना। अति जम्हुआइ आवहिं नहि वैना ॥
कँवल प्रवेस भँवर जो किया। कोस झकोर सकल रस लिया ॥

सिथिल गात कंचुकि पहिरि, बिछुरि माँग लट छूटि।
अधर निरखि औ नख निरखि, गये कंचुकि बँध फूटि ॥

पून्यो जोति ज्यों कामकंदला। है प्रगटी परिवा की कला ॥
डोलति चलति मनहुँ मतवारी। पीत वसन मुख भयौ सवारी ॥
सखी आनि छिरकहिं मुख पानी। सुरति रीति औ सब पहिचानी ॥
उरझे बार हारनि न निवारहिं। सब अँग भूषन सखी सुधारहिं ॥
मुख पखारि पुनि पान खवावहिं। नखछत महँ कुमकुमा लगावहिं ॥

भवँर बास रस लेइ कै, भौंर रहे लपटाइ।
सूर तेज तैं कुमुदनी, रही अतिहि कुम्हिलाई ॥

बोलहिं सखी चलहु मगु रंजन । सरवर जाइ करहिं हम मज्जन ॥
माधव विप्र धाम करि धीरा । गईं सकल सरवर के तीरा ॥
गई कंदला सरवर पासा । चकही जान्यौ चंद्र प्रकासा ॥
चकही बिछुरि गईं भुमि भूली । बाँधे कमल कुमुदनी फूली ॥
चक्रवाक उड़ि चले अकासा । अथवा चंद सूर परगासा ॥

सखी तरायन संग, कामकंदला विधुवदन ।
चकई मन भयो भंग, कमल देखि संपुत गह्यौ ॥

तेल सुगन्ध अरगजा कीन्हाँ । अंग उबटना मज्जन कीन्हाँ ॥
करि मज्जन सब बाहिर आईं । चंपक बदन सुदेस सुहाईं ॥
कहुँ कहुँ बूँद एक छबि बनी । चंपक लता ओस की कनी ॥
सजल ओस अलकै घुँघराली । ऊपर दलति कंदला डारी ॥
अंगन बूँद चुवहिं धर जोती । जनहु भुवराम उगिलहिं मोती ॥
कुटिल स्याम चिहुरा घुँघरारे । डोलै मधुप जनहु मतवारे ॥

नीर चुवहिं चिहुरा सजल, बदन निरखि छबि माल ।
मनहुँ पान मकरंद पर, पवन करत अलि जाल ॥

डोलहिं कामकंदला बाला । चिहुर चुवहिं मोतिन की माला ॥
निरखत अलक उलटि घुँघरारी । अमृत लगी नागिन ज्यों कारी ॥
कै सावक अलिरस अब डोलहिं । सखी सबहिं उपमा कौं बोलहिं ॥
कुटिल कुटिल दोऊ छबि लीन्हैं । कहूँ रसिक मन प्यासे दीन्हैं ॥
सो जेहि फँद्यो सो निकस नहि पारै । जो जिय सकल जन्म पचि हारै ॥

मूलन चिहुर चुवाहि, सखी कहैं कंदल सुनहु ।
बंधन सुरत डराहि, उचेलुट्यो चिहुरा सजल ॥

सुनि कंदला धाम कहँ चली । नखसिख बरन चंपे की कली ॥
कहैं सखी सो चलै अवासा । माधौनल जनि होइ उदासा ॥
गवनम राज मंद की नाई । छिन एक माँझ मँदिर मैं आई ॥
सखी गईं सब अपने धामा । माधौनल मैं आई वामा ॥
कहै कंदला माधौ ठाऊँ । अब सरवर मज्जन नहिं जाऊँ ॥

कँवल देखि संपटु गह्यौ, चकही संग बिछोई।
मो मुख पुरन चंद सम, निरखत दुख अति होइ ॥

वह कलंक की कला दिखावहि। पून्यो चंद सवानहिं आवहिं ॥
तू गंभीर सहस रस काला। समताँ लै ऊपर कै पला ॥
तव मुख रूप रैन दिन नीको। सूरज होइ देखि कै फीको ॥
रोस बचन जब माधव कहई। भुज भरि कामकंदला गहई ॥
बैठि सेज पुनि करहु बिलासा। महकत जेहि ठाँ सकल सुवासा ॥

मधु कुरल विध्यौ मदनरस, को ये पवन मदनेमु।
नैन प्रान तन मन परस्यौं, छिन न प्रेम कैं प्रेमु ॥

ऐसे बचन जौ राजा कहई। माधव सूर चेत जिय धरई ॥
पुँछहु कामकंदला तोही। अब मैं चलहुँ विदा दै मोही ॥
राजा बात सुनै मग पावहि। मोहि तोहि लै भार भुकावहि ॥
कहै कंदला बूझै नहिं तोही। ऐसे बचन सुनावहु मोही ॥
तोहि चलत मोरे प्रान चलाहीं। पलक ओट आँखिनि अकुलाहीं ॥

चलन कहत है मित्र, स्रवन सुनत प्रानहि चलहिं।
अति ब्याकुल मन चित्त, सजल नैन भरि भरि ढरहिं ॥

तुम सुजान माधव सब जानहु। राज कहे कर विलग न मानहु ॥
राज सिद्ध धनमद जिहि होई। सकल वीच बस करै जु कोई ॥
कहि माधो सुनि तेरी चिन्ता। राज अपनो होइ न मिता ॥

राजा त्रिया सुनारि, बिटिया रोकष आगि जल।
पाँसा साँपिनि हारि, ए दस होइ न आपने ॥

यह जिय जानि सोचि करि कहौं। दिन दस जाइ और पुर रहौं ॥
यह जग में बिधि कियो सँजोगु। जिहि मिलना तिहि होइ वियोगु ॥
कर्म रेख सों कछु न बसाइ। जो विधि लिख्यो सो मेटिन जाइ ॥
मिलन बिछोह बिधाता कीन्हाँ। दमयंती नल को दुख दीन्हाँ ॥
मिलि बिछुरै जानहिं दुख सोई। बिछुरि मिलन दुँहु तन सुख होई ॥

आलम मिलन बिछोह, तीछूण सकल सँताप ते।
तपत अंग जनु लोह, बिरह अगिन इमि पर जरहि॥

बोलहि नारि बचन अन चैनी। माधव रहहु आजु की रैनी॥
ललित कुसुम भरि सेज बिछावहुँ। भुज भरि अंकम भरि लपटावहुँ॥
परी साँझ भइ निसि अँधियारी। सखी पहुप भरि सेज सँवारी॥
बहुरि सिंगार कंदला कीहें। अंग अंग लै भूखन दीन्हें॥
करि सिंगार माधौ पै आई। जुगल सेज पर बैठे जाई॥

आगम बिरह वियोग, बिछुरन सूल जु रहत जिय।
मिलत मैन संजोग, बचन वियोगिनि उच्चरै॥

सुबचन काम न कंदला कहई। रजनी बीति अल्प ह्वै रहई॥
ऐसा कछु कीजै उपचारा। बाढ़ै रैनि न होइ सकारा॥
तब माधौ बीना कर लीन्हा। बिधुरथ मृगन श्रवन सुनि दीन्हा॥
सरस बजावहि वीन सुरंगा। टिक्यौ चंद थकि रहे तुरंगा॥
सरवर चक्रवाक अकुलानै। बाढ़ी रैनि न होइ बिहानै॥

रहौ सदा अधरात, राहु जाइ सूरज मिलहु।
चलन कहत पिय प्रात, रैनि छिमाखी होइ रहौ॥

बढ़ी रैनि नहि होइ उँजियारा। तब माधव धरि बीन विहारा॥
थक्यौ नाद मृग चल्यौ उदासा। अथयों चंद सूरज परकासा॥
बीती रजनी पृथ्वी जागी। माधवनल उठि भयौ विरागी॥
पुनि कामा सो अग्या लेई। आग्या लै मारग पगु देई॥
कहै नारि हौं ही तुम थाहू। हौं न कहौं माधौनल जाहू॥

रसना पाकौ सोइ, चलन कहत जो मित्र को।
मंद द्रिस्टि मति होइ, जो निरखै बिछुरन सजन॥

करि धोती पोथी करि बाँधे। उठ्यो विप्र वीना धरि काँधे॥
गहि रही कामकंदला बाहीं। हौं तोहि जान दैउ जो नाहीं॥
कहति काम ये मीत बताउ। कैं जु चले मन मोर लुभाउ॥

अहो मीत सज्जन परदेसी। विद्याधर मनमोहन वेसी ॥
मारि कहा रिनि मेटौं दाहू। ता पाछैं तुम पर भुमि जाहू ॥

नैन झरत जिमि मेह, गरब देह भीजत सकल।
बिछुरत नयौ सनेह, मन ब्याकुल तन थकित भय ॥

कहै त्रिया पूजै आस तिहारी। कर अंजुल मुहि दीजौ वारी ॥
प्राननाथ अब क्यों इच्छा आवै। ताके आँसू भरि भरि आवै ॥
रति गति मति लै गवनहु मोरी। लै सुखु दैं दुखु संघहु जोरी ॥
नेहु नाव तवगुन करि लीना। छाँडि वियोग समुद महँ दीना ॥
बिन गुन नाउ लगहि नहिं तीरा। करि हा हीन झकोरहि नीरा ॥

नैन समुद तारंग, प्रीतम विनु उमगे फिरहिं।
विनु गुन वोहित अंग, बूड़हि सो त्रिय कंत बिन ॥

तजि समीप जिनि करहु बियोगिनि। तुम बिछुरत हैहौं हम जोगिन ॥
कंथा पहिरि जटा सिर केसा। घर घर फिरहुँ तपस्विनी भेसा ॥
मुद्रा पहिरि भस्म सिर लाऊँ। मुख माधौ माधौ गुहिराऊँ ॥
किंगरिय गहि दिन रैन बजैहौं। जोगिनि ह्वै माधौ गुन गैहौं ॥
घर घर वन वन ढूढौं तोही। सो कछु करौं मिलौं जो मोही ॥

खंड खंड तीरथ करौं, कासी करवत लेहुँ।
मन रछ्या करि मरि जियौं, ढूँढ़ि मित्र को लेउँ ॥

जिन दै जाहु बिरह के हाथा। पाइन परहुँ लेहु मुहि साथा ॥
ये हो मीत पंड़ित पंइडोही। बाट माँझ जिनि छाड़हु मोही ॥
मोहिं मारि जाहु पिय नाहा। छाँड़हुँ प्रान न छाड़हु बाँहा ॥
चंद्र बिलोकत सकल चकोरा। चकवी सती होई जो भोरा ॥
नैन सकल निरखत भावंता। जिय दूखत सुनि बिछुरि भवंता ॥

आलम प्रीतम के मिले, अंग अंग सुख होइ।
पलक ओट जग लाज तैं, रहौं सकल सुख होइ ॥

कहै नारि सुनि विप्र उदासी। मेरे ग्रह जो करहु निवासी ॥
जिहि मुख सुखद बचन सुनावहु। तेहि मुख काहे चलन कहावहु ॥

माधो नैन नीर भरि आये। कामकंदला बचन सुनाये ॥
बोलै विप्र नैन बरसाहीं। सुनहु नारिय छाँड़हु बाहीं ॥
तब मुख निरखि नैन सुख पाउँ। बिछुरि जांन कै वहि मरि जाहुँ ॥
भावंता के बिछुरनै, नैन उमगि जल धार।
मन अधीर तन पीर अति, बिरह उदेग अपार ॥

माधव-कामकंदला-वियोग खंड

सखी आइ कर बाँह छुड़ाई। चल्यो विप्र त्रिय गई मुरझाई ॥
काम मूर्छित धरनि मह परी। सखी आइ करि अंकर भरी ॥
लै करि सखी सेज पर धाई। तन व्याकुल जनु मिरगी आई ॥
अधर सूक जिय रहै निरासा। सखि जीवन की छोड़ी आसा ॥
मूदि नासिका छिरकहिं पानी। पुहुप मूरि औषद बहु आनी ॥
करि उपचार सखी थकी, रहीं बिसूरि बिसूरि।
बिरह भुवंगम वा डँसी, ताकौ मंत्र न मूरि ॥
पुनि इकु मंत्र सखी मिली थापहिं। कान लागि माधवनल जापहिं ॥
माधौ माधौ उहिं गुहिरायौ। जागि नारि विप्र जनु आयौ ॥
सुनत नाँउ जब नैन उघारे। श्रवन नैन जल मानहुँ नारे ॥
सूनौं भवन देखि बिनु मिंत्रा। भई पीत तन व्यापी चिंता ॥
बिन काँदव जिमि कमल सुखाई। बिना सूर्ज ज्यों तेज मुरझाई ॥
जैसे जल स्यौं मीन, घरी एक ज्यों बिछुरई।
सदा रहै तन छीन, छिन ही छिन दुख संचरै ॥
यह हिय वज्र वज्र तैं गाढ़ा। पाल्यौ वज्र वज्र मैं बाढ़ा ॥
जा दिन मीत बिछोहा भयऊ। तँवकि निखंड खंड ह्वै गयऊ ॥
बिछुरन जस भा ताल तरकै। पापी हियौ नेक नहिं फरकै ॥
अैसे निलज रहत नहिं प्राना। मीत विछोह सुनत किमि काना ॥
गये न प्रान मीत के संगा। अैसे निलज रहत गहि अंगा ॥

आलम मीत विदेसिया, लै गयौ संपति सुष्प।
नैन प्रान तन विरह बसि, रहे सहन को दुष्ष॥
गयो विप्र चित्त उचाटउ। अब कहँ पाऊँ मीत बतावउ॥
तीन्या अपने होई न कोई। छिन इक बिछुरै नैन दुख होई॥
चंदन जान नहिं पीर, तादिन भरहि चकोर दूख।
ब्याकुल रहै सरीर, निसि अँधियारी सीस धुनि॥
तजि स्नेह हम धौन लगायौं। कामकंदला बहु दुख भयौं॥
दिन बीतै रजनी ज्यों आवै। भरै नैन जल पलु न लगावै॥
खिन माधौ माधौ गुहिरावै। खिन भीतर खिन बाहिर आवै॥
बिरह ताप निसि सेजन सोवै। कर मीजै सिरु धुनि धुनि रोवै॥
ऐसे दुख करि रैन बिहावै। कोटि जतन बासर नहि पावै॥

जो दिन हो इतो निसि रटै, जो निसि होइ तो प्रात।
भा दिन सांतिन रैनि सुख, बिरह सतावत गात॥
कामवंत बिरहा बसि भई। बिद्याबुद्धि सकल नसि गई॥
नृत्य गीत गुन की चतुराई। गति मति आनि विरह बौराई॥
जिहि तन मन विरहा संचरै। सो जिउ जीवै नहिं पुनि मरै॥
बिरह अनल सोइ लै सुख जारइ। रोम रोम वेदनि संचारइ॥
पाउ हर्ष सुख रहै न कोइ। जिहि सरीर विरहानल होइ॥

बुधि विद्या गुन ग्यान, प्रेम चाव धुनि हर्ष बल।
सब तजि होइ अयान, जा घट बिरहा संचरै॥
कामकंदला भई वियोगिन। दुर्बल जनू वर्स की रोगिनि॥
अंजन मंजन भोग बिसारे। सजल नैन बहैं जल के नारे॥
वस्त्र मलीन सीस नहिं धोवे। लंक टेक माधौ मग जोवै॥
नींद न भूख न भावै पानी। काया छीन दीन मुख बानी॥
हा हा आइ स्वास के गाढ़े। छिन छिन बिरह अनल तन बाढ़ै॥
हा हा प्रान न संग गय, जब बिछुरे भावंत।
कर मीजै वस्तर धुनै, गहै अँगुरिया दंत॥

पलक बाह नहि रहहिं नियारे। मंगन भये नैन के तारे॥
माधौ पीर कंदलहि व्यापी। मनमथ अंग तपति त्रिय तापी॥
तोरै तनु मनु डारै रहही। हृदै पीर नहिं का है कहही॥
छिन अचेत छिन चेतहि आवहि। पुनि पुनि बिरह बिया तन तावहि॥
स्वास लेत पिंजर ज्यों डोलहि। हाहा सजनी मुख नहि खोलहि॥

रकत न रहै सरीर, पीत पत्र के बरन तन।
डोलत अतिहि अधीर, पवन तेज नहिं सहि सकत॥

सखी आनि मुख नीर चुवाहीं। हिदै तपत घसि चँदन लगावहिं॥
कुसुम सेज पर जो पगु धरई। तिहि छिन काम अग्नि पर जरई॥
त्रिविध पवन त्रिय सहै न पारै। चंदन चंद अधिक तन जारैं॥
पीक मधुर धुनि बोल सुनावैं। मदन घाउ पर जन विष लावै॥
गीत नाद रस कवित कहानी। श्रवन सुनत वे बिष सम बानी॥

अकुलाई तन विरह के, रस सँजोग रसुलीन।
ते सब काम वियोगि, निसि बासर दुख दीन॥

माधव-विरह-वर्णन खंड

बिछुरै कामकंदला नारी। माधौनल मन भय दुख भारी॥
बिरह के साँस जु हिरदैं बाढ़ैं। गहि गहि आहि आहि कै काढ़ैं॥
बन बन फिरै नैन जल धोवै। विरह सँताप नींद नहिं सोवै॥
छिन बैरागी बीनु बजावै। सूखे गात अगिनि जनु लावै॥
मन चिंता करि त्रिया वियोगी। गोरख ध्यान रहैं जिमि जोगी॥

अगम अथाह अलेख अति, विरहै समुद्र अगाध।
प्रीति हिरानी बुद्धिजनु, भूले ब्रह्म समाध॥

बिरह समुद्र अगम अति आही। बूड़ि मरै नहिं पावै थाही॥
बुधि बल स्यै कोउ पार न पावै। जौ नर सप्रँग गुन चढ़ि धावै॥
विरह डसत नर जिए न कोई। जौ जीवहि तौ बौरा होई॥

विरह चिनग जिहि तन पर जारैं । छिन छिन विरह अगिनि विस्तारैं ॥
सोह अगिनि माधौंदल लागी । वीनु बजाइ रहे वैरागी ॥

हिएँ हूक भरि नैनजल, विरह अनल अति हूम ।
अंतर धर संवर बरै, स्वास प्रगट भइ धूम ॥

जिय बिनु सूक पत्र ज्यों डोलै । सूल सहित माधौनल वोलैं ॥
निस दिन विप्र पीर करि रोवहि । वन पंछी निसि नींद न सोवहि ॥
बाघ सिंह कोइ निकट न आवहिं । चहुँ दिस विरह अग्नि अति धावाहिं ॥
विरही नैन सजल मुख भरे । सीतल होत तपत जिहि हरे ॥
स्वासा वेग नैन भरि पानी । सानल गत विरहा की जानी ॥

वस्त्र मलीन उदास तन, उभय स्वास बहु लेइ ।
नींद भूख लज्जा तजै, विरही लच्छन एइ ॥

माधौ नैन रहे भरि आँसू । सूखी चर्म रुधिर अरु माँसू ॥
तब माधौ मन माहिं विचारहि । बिरछ बासु मन आपु सँभारहि ॥
अहो वन विरह जोर मरि जाँहू । कामकंदलहि हौं न मिलाऊ ॥
अब खोजहु कोउ जग उपकारी । मिलवहि मोहि कंदला नारी ॥
ढूँढौं पर वेदनि जिहि होई । दुख खंडन नर जौ कहूँ होई ॥

लच्छ दैन संकट हरन । जीवन प्रन मति धीर ।
तिहि के कलि उत्तम करम, ते खंडहिं पर पीर ॥

विक्रम-सहायता खंड

यहै मंत्र माधवनल लागा । बल सँभारि वन तजि मग लागा ॥
कोइ न भयउ कलि त्रिया वियोगी । माधौनल जो भरथरि जोगी ॥
जगय विचारि माधौनल कहै । चल्यौ जहाँ नृप विक्रम रहै ॥
पर दुख हरन दसौं दिसि दैनी । सुनियतु बिक्रम नग्र उजैनी ॥

सुध संगति बहु करेत है, जो मन उत्तम होइ ।
पर दुख खंडन तौ गनै, नेह दान मुहि दोइ ॥

काम के बस माधौनल चला। किहि विधि मिलै कामकंदला ॥
वीना विरह साथ जो लीन्हे। नींद भूँख प्यास बस कीन्हें ॥
मारग चलैं सकल दुख लैने। पहुँच्यौ जाइ नगर उज्जैनै ॥
धर्मपुरी सब नगर सुहावा। हाट पटन बहु देखि बनावा ॥
चहुँ दिसि नगर बाग फूलवारी। ताल कूप सलिता बहु भारी ॥

कनक खचित मनि मंदिरनि, कलस धुजा फुहराति।
राव रंक नहिं चीन्हिए, पूरन पुर जिहिं भाँति ॥

अति वियोग माधौ कौ भउऊ। ततखिन चलि मंदिर में गयऊ ॥
पुनि पुनि हाट पटन फिरि देखै। आनंद पुरी बराबरि लेखै ॥
छत्तिस पुरी नगर बैपारी। बैठे हाट महाजन भारी ॥
कहूँ नाच कहुँ पेखन हौंई। कहूँ पवारा गावत कोई ॥
कहुँ रामायन भारत होई। कहुँ गीता कहुँ भागवत होई ॥

कहुँ पंडित द्वै सहस हैं, कहूँ करहिं कवि वाद।
कहूँ मल्ल बिह्वल भिरहिं, कहूँ गीत कहुँ नाद ॥

अति उदास माधौनल भयऊ। तब राजा के मंदिल गयऊ ॥
राजमँदिर मनिगन उँजियारा। कै विधना कैलास सुधारा ॥
द्वारैं पंडित तापस ज्ञानी। देस देस के भूपति जानी ॥
द्वार भीर नरपति कैं होई। नैकु जुहारु न पावहि कोई ॥
देखि विप्र मन भयउ उदासा। राज भैंट की तजि जिय आसा ॥

दिन उदास दहुँ दिसि फिरहि, नैन द्दगन के नीर।
येक न काहूँ सौं कहै, अंतर गति की पीर ॥

दिवस ब्याधि माधौ कौं लागी। मन महँ कामकंदला जागी ॥
विप्र एक संग करि लीन्हाँ। करि अहार माधौ मो दीन्हाँ ॥
करि अहारु माधौनल गयौ। नदी तीरक उदक जो भयौ ॥

हाटक यह धारे सकल, भरहिं वारि पनिहारि।
येक नारि मज्जन करहि, अंग मलाइ सुधारि ॥

कनक कलस भरि सबरी नारी। धरि धरि सीस चलहिं ते वारी॥
मारग छाँड़ि चलहिं ते नारी। तोरहिं फल औ फूल उपहारी॥
येकै चलैं घूँघट पट डारैं। चंदन वंदन तप अंगारैं॥
लखि चरित्र माधौ मुख फेरा। दुख व्यापौ तहँ कामा केरा॥
निसु दिन रहै तहाँ चितु लाई। पाहन रेख न मेटी जाई॥

द्रग पूरन की तारिका, मूरति रही समाई।
जित देखौ तित सो त्रिया, पलक न इत उम जाइ॥

दिन इक माधौ गयौ सुजाना। मंडप महादेव कौ जाना॥
मंडप देखि भेख मन भावैं। तहाँ राई विक्रक नित आवैं॥
तिहिं मंडप माधौनल गयौ। विरह ताप ब्यकुल मनु भयौ॥
जामैं विरह ब्यापै सोइ जानै। अन जानत मुख कहा बखानै॥
मन उदास माधौनल भयऊ। दोहा लिखि मंदिर महँ गयऊ॥

कहा करौं कित जाऊँ हौं, राजा रामु न आहि।
सिय वियोग संताप वस, राधौ जानत ताहि॥

रामचंद्र नहिं जग महँ आहीं। सिया वियोग किधौं दुख जाहीं॥
राजा नल पृथिवी सौं गयऊ। जिहि बिछोह दमयंती भयऊ॥
वनवासी अरु भेद सँजोगी। राजा फूहर वाचर भोगी॥
विछुरत त्रिया भयउ सो जोगी। भरत राज पिंगला वियोगी॥
राजा रतनसेनि नहिं भयऊ। पदमावति लगि सिंघल गयऊ॥

मधुकर कमलहि आहि, कोजि मालती वियोगु।
ये सब गये जगत्र मैं, विरही करि करि जोगु॥

दोहा लिखि माधौ वैरागी। गयौ नगर कामा अनुरागी॥
तिहि मंडप राजा पगु धरई। महादेव की पूजा करई॥
पूजा करि प्रदच्छिना देई। राज दृष्टि दोहा पर गई॥
दोहा बाँचि राज यह कहई। विरह अग्नि किहि ब्यापति अहई॥
मोरैं पुर विरही कोउ आवा। विरह वियोग सताप सतावा॥

आलम ते नर तुच्छ मति। जे पर हँथ मनु देहिं।
सुख संपति लज्या तजैं, दुख विरहा सोइ लैंहि॥

राजा कहैं सुनो सब कोई। देखहु नर बिरही सो होई॥
मोरे नग्र दुखी जो रहई। सकवंसी मोसौं को कहई॥
अब जो सों विरही नर पाँउ। सुनि वेदनि सब तुरत नसाँउ॥
कोइ वह पुरुष ढूँढ़ि सो ल्यावइ। राजा कहै लच्छि सो पावइ॥

दुख खंडन नृप दयानिधि, तन पीरे पर पीर।
पुनि पुनि चित चिंता करहि, यह विक्रम मति धीर॥

राजा अन्न पान नहिं भावहि। मन बच जब लग जो नहिं आवहि॥
नर नारी सब ढूँढ़न धाईं। विरही लच्छिन सकल बुझाईं॥
ढूँढ़हिं हाट पटन फुलवारी। ढूँढ़त बन महँ झूलत वारीं॥
ज्ञानवती दूती इक अहई। विरह वियोग खेल सब रहई॥
सो चलि जिहि मंडप महँ जाई। माधौनल ता छन गयो आई॥

तन दुर्बल अखियाँ सजल, भरि भरि लेत उसास।
चित उचाट मन चटपटी, विरह उदेग उसास॥

मन उचाट छिन बीच बजावहि। जोरे सुनहिं तिहिं विरह सतावहि॥
खिन खिन कामकंदला रटई। स्वाति बूँद को चातक चहई॥
ज्ञानवती त्रिय सुन मुख बानी। मन मह कही यहै सुग्यानी॥
विरही पुरुष आइ यह सोई। जाकर दुख राजा कौं होई॥
कामकंदला त्रिया वियोगी। तन मन छीन भयौ सो जोगी॥

मन मारैं वस्तर मलिन, द्रग भरि ऊँचे साँस।
तन दुर्बल पिंजर झलक, रंजक रकत न माँस॥

ज्ञानवती छिन इक कहि बानी। सखी बीस दस आनि तुलानी॥
कहै सखी सौं सो यह वह आही। नरनारी ढूँढ़त सब जाही॥
अब लै चलहु वेगि गहि बाहाँ। सुखु पावइ विक्रम नरनाहाँ॥
पूछहि बात न नल मुख बोलहिं। दुर्बल गात पवन ज्यौं डोलहिं॥
जो कछु बोलहिं उतर नहिं देईं। नीचे नैन स्वाँस भरि लेईं॥

रहै ताहि को ध्यानु, मन माला हित मंत्र जपि।
ज्यों जोगी करि ज्ञान, स्रवन सुनत नवगति मुखहि॥

बोलहि सखी सुनहु बैरागी। बिरह ताप सुख संपति त्यागी ॥
बोलहु बचन पीर सब कहहू। काहे दीन छीन तन रहहू ॥
ताकी सप्ति मानि मन बोलौं। जिहि वियोग विरहा बस डोलौं ॥
छिन एक बचन कहै छिन रोवहि। नीरज नैन कमल मुख धोवहि ॥

दुख को बात दुखिया कहै, दुख वेदनि सुख त्यागि।
दुख समुद्र सोइ परयो जो, रह्यो अंग दुख लागि ॥

बिछुरत कामकदला नारी। माधौनलहि भयौ दुख भारी ॥
पुनि मुख कहै विरह की रीती। अपनी कामकंदला प्रीती ॥
अति उचाट मुख विरह बखानै। जिहि यह ब्याप्यौ सोई जानै ॥
माधौ पीर सखी कौ व्यापी। विरह वात सखी सब थापी ॥
सुनत बचन त्रिय अंग पसीज्यौ। नैननीर कंचुकि तन भीज्यौ ॥

हौं वलि वलि जिहि जीव, पर वेदनि जिहि वेधियौ।
धृक ते पाहन हीय, नीदन भिदहिं पषान मैं ॥

बोलहि ज्ञानवती गुन नारी। चलहु विप्र अब नगर मँझारी ॥
हम राजा विक्रम की दासी। तुम वेदनि मन माहिं उदासी ॥
हम पठई राजा तुम पासा। चलहु वेगि मन पूजै आसा ॥
चल्यौ विप्र माधौ उहि संगा। त्रिय वियोग तनु रहयौ न अंगा ॥
जहँ सक वंदी हुते नरेसा। राजा मंदिर मैं कियौ प्रवेसा ॥

ज्ञानवती इमि उच्चरहि, सो विरही है आइ।
विप्र देखि राजा उठयौ, कीन्हौं आदर भाउ ॥

राजा वरन देखि कै कहैं। नख सिख विरह अनल तनु दहै ॥
मूरति नयन रोइ जल धारै। कुंदन देह नेह बस मारैं ॥
पूछहिं राइ सुनहु द्विज देवा। अज्ञा होइ करहुँ सो सेवा ॥
कवन देस जासौं पग धारे। दरसन देख्यौ भाग हमारे ॥
अपनो नाँउ कहौ वैरागी। किहि के नेह फिरहु सुख त्यागी ॥

किहि कारन भये बिरह बस, दुख सँग फिरहु उदास।
कहौ विथा हिय पीर सम, विधि पुजहिं सब आस ॥

राजा मो माधवनल नामा। उत्तम संग करहुँ बिस्रामा ॥
विद्या पढ़ेउँ करन संगीता। सामुद्रिक जोतिक गुन गीता ॥
काव्य कोक आगमहि बखानहुँ। पिंगल पढ़ेउँ सकल गुन जानहुँ ॥
कर मृदंग गति बीन बजाऊँ। षट रस राग रागिनि सँग गाऊँ ॥
नृत्य चतुर्गन बैद विनानी। खेल चातुरी उकति कहानी ॥

पसु भाषा औ जल तरन, धातु रसाइन जानु।
रतन परख औ चातुरी, सकल अंग सग्यानु ॥

पुहुपावति नगरी मों ठाऊँ। गोबिंद चंद राज को नाऊँ ॥
कर्म रेख सन विर्गहु भयऊ। तिहिं मोहिं देस निकारौ दयऊ ॥
तब मैं आन उदास मनु कीन्हाँ। कामावती नगर पगु दीन्हाँ ॥
कामसैनि राजा तहँ आहीं। सुरनर सकल सराहैं ताहीं ॥
तिहि पुर कामकंदला नारी। रूप राग विद्या दस चारी ॥

नैन लगे तिहि रूप, तजि गुन बुधि बल चातुरी।
ज्यों दादुर वस कूप, निकसत परहि जु विरह बस ॥

जा दिन मोर जन्म जग भयऊ। चित परि जहाँ ब्रह्म लिखि गयउ ॥
मो त्रिय निरख न बिसरहिं काहू। चित कर ध्यान रहैं द्रिग वाहू ॥
अँखियन से जिहि अँखियन लागीं। जिहि निरखत सुख संपति त्यागी ॥
अनुपम रूप विधाता दीन्हाँ। आँखिनि निरख जीउ हरि लीन्हाँ ॥
जिय बिनु सदा रहैं नहिं आसा। हिरदै नाहिं जु कियौ निवासा ॥

भावंता के मिलन कौं, हा हा पंख न कीन।
नैन तपत हैं दरस कौं, तन परसन को जीय ॥

पंडित गुनी सकल बुधि ग्यानी। देखि विप्र मुख रह्यो बिनाँनी ॥
राजा देखि अचंभौ रहई। कुछक उतरु माधव कहँ दअई ॥
हौं पंडित तुम जगत गुसाईं। सब गुन पूरन काम की नाँईं ॥
तुम देखत त्रिभुवन वस होई। तुम ही वस्य करहि जो कोई ॥

यह मन मानिक वस करन, वाति अंत लै देहु।
विरह वस्त्र सुख त्यागि कै, दुख बियोग सब लेहु ॥

सुनि राजा माधौनल कहई । यह मनु जौ अपनै बस रहई ॥
नैन बसीठ डीठ अति आँहीं । आपहिं मनु दै फिर अकुलाहीं ॥
निरखत नैन कंदला नारी । लाग्यों मनु दीन्हौं तनु डारी ॥
तिहि बिछुरत अन्न अंबु न भावहिं । छिन छिन प्रेम अधिक मन आवहि॥
मित्र वियोग बिरह दुख होई । जिहि दुख परै जानिहै सोई ॥

बिछुरत ऐस वियोगु, स्वास उर्द्धसी लैं रहै ।
अब विधि करत सँजोगु, नातर प्रान विमुक्त ह्वै ॥

राजा कहैं सुनहु गुनरासी । गनिका सौं नहिं प्रीति गनासी ॥
राजा पूँछहि विप्र सुजाना । कहियौ उद्घासी पुनि ग्याना ॥
जब लगि माडो की नहिं रीती । तबलौं हीं गनिका सौं प्रीती ॥
गनिका प्रीति न सदा चलाई । धन सौं प्रीत बिन धन चलि जाई ॥
केलि फूल दासी कौ हेतू । रूर रंग अंतरगति सेतू ॥

नैन अनत चैना अनत, अनतै चित्र निवास ।
जनि पातर परतीत करि, विस्वा बिसु विस्वास ॥

बालहिं विप्र सुनहु नर भारी । आँखिन बीच सुदेखेहुँ नारी ॥
जो जेहि राता सो तिहि भावहि । तेहिं विनु सून द्रिस्टि जगु आवहि ॥
जो जाके मन माँह बसाई । तजि वंदन सालहि गज पाई ॥
सत समुद्र सलिता जलु वहई । चातक स्वाति बूँद कौं चहई ॥
तारा गगन भरे दुति मंदा । दुखित चकोर रहै बिनु चंदा ॥

जो जिहि राता होइ, निसि वासर सो मन वसहि ।
ता बिनु जियै न कोइ, बिछुरत हर जल मीन ज्यौं ॥

जो चाहौ सो हम पर लेहू । तजौ विप्र गनिका सौं नेहू ॥
हौं तो तजौं नेह कर धरई । यह मन जौं अपनै बस करई ॥
गुन धन जीव कंदला लीन्हाँ । दुंद उदेग मोहि कर दीन्हाँ ॥
रकत माँस कछु रह्यो न चीन्हाँ । आँसू रुधिर हिदैं करि लीन्हाँ ॥

जब लगि जीवहुँ मरि जियहुँ, स्वर्ग नर्क विस्राम ।
तब लगि रटौं विहंग ज्यौं, कामकंदला नाम ॥

सो मतिहीन वज्र तनु होई। संग्रह नेहु न जीवै कोई॥
पूरब जन्म कोटि जौ करई। तब सो नैकु पंथ पगु धरई॥
मानुस पसु अंतरु यह अहई। माधव सोइ नेहु जो बहई॥
ब्रह्म ग्यान पावै पुनि सोई। जिहि तन तेज नेह कौ होई॥

अंध कूप मैं देहु, गुत प्रगट कोइ नहिं लखहि।
जानै दीपक नेहु, तब सब देखैं रूप गुन॥

माधौ बचन सुनै जो कोई। सकल सभा को आवै रोई॥
जो रे सुनै सो देखन धावै। जो देखै तेहि विरह सतावै॥
नारि बैठहीं ह्वै इक संगा। करैं बात तब दहैं अनंगा॥
नगर एक आयौ बैरागी। अति सुंदर रस जान सुखत्यागी॥

प्रेम नैम करि रैन दिन, अंग चढ़ायौ राख।
सुनै धुनै सोउ सीसकर, दुंद बिरह अस भाष॥

एक समै विक्रम नर नाहाँ। गहि लीनी माधव नल बाहाँ॥
विप्र संग लै धाम सिधारा। दीप मसाल मनिगन उँजियारा॥
मंदिर जोति मानौ कविलासा। चंदन मिली अनूपम वासा॥
कनक भूमि पाटंबर वासी। कुंकुम छिरकत केसरिरासी॥
तिहिं मंदिर सिंहासन छाजा। तिहि पर बैठि विप्र अरु राजा॥

कवित नाद गुन चातुरी, अर्थ ज्ञान सिंगार।
जो राजा मुख उच्चरहि, सो माधौ करै विचार॥

जो बूझै विद्या नर नाहा। सो संपूरन माधौ माहा॥
तब राजा उठि चरन पखारे। अहो विप्र तुम ईस हमारे॥
माँगहु मन इच्छा जो होई। अर्थ द्रव्य हम पुजवहिं सोई॥
मागौ यहई बात सुनि लीजै। मो कहँ कामकंदला दीजै॥
जिहि कारन हम तन मन खोयौ। रकत धार निसि बासर रोयौ॥

बेगि देहु करतार, बिव अँखियन पुनि पंख वलु।
उड़ि देखौं इक बार, भावंता के दरस कौं॥

राजा कहै सुनु विप्र गुसाईं । दिन दस रहौ नलन की नांहीं ॥
दल पैदल सैना सँग लेऊँ । लै तुहि कामकंदला देऊँ ॥
वर वर बूझि जीति मुह मागैं । राजा बाँधि देउ तुहि आगैं ॥
दिवस दिवस राजा बौरावहिं । माँगि विप्र इहिंठा चित लावहि ॥
यह मन दियौ प्रैम चित मोहा । रह्यो लागि चुंबक जनु लोहा ॥

मोहन मूरति चित्र लखि, चित पर धरी सुधारि ।
सो पलु भूलै महि कहूँ, जो बीतैं जुग च्यारि ॥

विप्र संग विक्रम नल भारी । गयौ संग लै भूमि सँवारी ॥
गंध्रव गुनी आये बहुभारी । राजा करहिं विप्र मनुहारी ॥
ताल पखावज बोलि मँगाये । गाइन गुनी कपरिया आये ॥
कमल बदन मृग नैन सुहाई । पतुर बीच काछिकैं आई ॥
मध्य छीन औ भूखन सोहै । नैन निकट करि सब मन मोहै ॥

एक भूमि वैडारिये, दामिनि ज्यों छिपि जाइ ।
पुष्प लता जिमि पायन, धुनि अति चंचल फहराइ ॥

नर निक्रम औ विप्र उदासा । देखहु नैन करहु मन हासा ॥
करन कपोल विप्रै धरि हाथा । नैना भरि नीचे करिमाथा ॥
बोला राउ नैन कत भरहू । देखौ नाचर हंस जिय करहू ॥
मैं माँग्यौ कित सावक साजू । देखौ विप्र नृत्य तुम आजू ॥
माधौनल आगु करि लीन्हाँ । जिहि जहँ नेह पसारा कीन्हाँ ॥

धनि विक्रम सक बंधिया, पर दुख हरन नरेस ।
विप्र काज कौं उठि चल्यौ, छाँड़ि धाम धन देस ॥

कंदला-प्रेम-परीक्षा खंड

जोजन दस नगरी जब रही । राजा सींव आनि पुनि गही ॥
राजा मंत्र एक जियँ धरैं । इक रन बीच सैन दुइ करैं ॥
सँग खवास राजा असवारा । आयो नग्र लगी नहि बारा ॥
जाके नग्र विप्र हैं दुखी । सो त्रिय देखहू सुखी कि दुखी ॥

राजा पूछैं नम्र मैं, कामकंदला नाम।
कहियत गुनी विचित्र हैं, कौन ताहि को धाम॥

मंदिर पूँछि सो लियौ नरेसा। उत्तर पौरि महँ कियौ प्रवेसा॥
भीतर मंदिर पौरिया जाई। कामकंदला बात जनाई॥
उत्तम पुरिष पौरि इक आवा। राजबंस कोइ रूप दिखावा॥
सुनि कै दासी पौरहि आई। राइ मँदिर लै गईं लिवाई॥
चित्रसार राजा वैसारा। बहुत दीप दीपक उँजियारा॥

कामकंदला बिरहवसि, वस्तर गात मलीन।
मुख माधौ माधौ रटै, होइ सो छिन छिन छीन॥

नृत्य गीत विद्या चतुराई। गईं बिसरि गुन की अतुराई॥
बदन मलीन पीत रँग भयऊ। रकत माँस सूखि सब गयऊ॥
राजा बोलहि मीठे बैना। बिरहिनि नारि न जोरहि नैना॥
राजा बोलहि उत्तर नहिं देई। वरुनी छूटि नैन भरि लेई॥

गनिका गृध सौं काज, ऊँच नीच चीन्हैं नहीं।
बोलहिं बचन जे लाज, बस करि राखैं पर पुरिष॥

ऐसे बचन ना कहौं भुवाला। विरह वसी जनु खाई काला॥
सुनु विप्रहि दर्सन करि दीन्हा। देषत ताहि नैन हरि लीन्हा॥
देखौं ताहि जौरे मन भाई। तिहिं देखत दोंउ नैन सिराई॥
मन धन जीउ विप्र लै गयऊ। तिहि बिनु सून द्रिस्टि जग भयऊ॥
सो प्रीतम दै गयौ ठगौरी। तजि गुन रूप भईं हौं बौरी॥

जेहि मारग प्रीतम गये, नैन गये तेहिं मग्ग।
दै दूनौ दुखु बिरह सौं, करि सूनो सब जग्ग॥

तब बल पग परसै वरनारी। रोसवंत कीन्हौं सुख वारी॥
कहै कंदला सुनु नृप भारी। जक्त पूज्य तुहि लाज हमारी॥
ज्यौं हिय माँझ गुप्त जिउ रहई। त्यौं द्विज रहै सदा सुख दाई॥
दुज मन माँहि निवाज जो कीन्हाँ। बोलनि तजि रसना हरि लीन्हाँ॥

आलम प्रान पयान अब, करत हिएँ अन आस।
निसि वासर द्रग तारका, प्रीतम कियो निवास ॥

राजा बूझि देखु इमि बाता। यह वह राती वह एहि राता ॥
इहि के विरह विप्र दुख लीना। विप्र के विरह त्रिया तन छीना ॥
दुहुँ की प्रीत रहीं दुहुँ छाई। दोऊ मन तन रहे भुलाई ॥
इन मैं अधिक विरह कौ टीका। जिमि आँखिनि कौ मारग नीका ॥
ज्यौं सरवर महँ कमल रहाई। बिछुरत नींद रहै कुम्हिलाई ॥

मालति लुबधी अलिरसहि, अलि मालति मकरंद।
बिछुरन विरहा सूल सम, दही विरह के द्वंद ॥

नर के प्रान नारि के संगहिं। नारि के प्रान पुरिष के संगहिं ॥
राजा निरखि रीझि मन माही। इन महँ प्रीति कपट कछु नाहीं ॥
इहिं जिय प्रीति रीति कौ गहई। त्रिया विरह लगि अति दुख दहई ॥
चाहौं नैन नींद नहिं आवहि। दुहुँ तन अन्न पान नहिं खावहिं ॥
ब्रह्म लोक अमीरस जानहुँ। गुन गंधर्वहि प्रीति बखानहु ॥

आलम ऐसी प्रीत पर, तन मन दीजे वार।
गुप्त प्रगट अँखियाँ मिलैं, दियौ कपट पट डार ॥

राजा निरखि वियोगिनि नारी। पूँछहि गुरुजन सखी हँकारी ॥
किहि लगि इहि की सुधि बुधि गई। किहि के हेत नेक बस भई ॥
कहै सखी सब कामिनि पीरा। सुनत नैन भरि आवहि नीरा ॥
विप्र एक माधौनल नामा। तिहि के विरह याहि यह कामा ॥
सो प्रीतम दै गयउ ठगौरी। तन मन लाइ प्रेम की ठौरी ॥

यह पपीह पिउ पिउ करै, छिनु अचेत छिनु चेत।
औरन सुख विरहा अनल, भयौ बरन तन सेत ॥

रूपवंत अति काम के भेसा। सो दुज छाँडि गयौ परदेसा ॥
कैंधो चहइ इंदु ठगि गयऊ। कैधों बरस मदन कौ भयऊ ॥
मोहन रूप विप्र वह आवा। नैन लगाइ तिहि मन बौरावा ॥

ताकि चाह कोइ नहि कहई। तिहि बिनु त्रिया बिरह बस भई ॥
अन्न नीर एहि नींद न आवहि। दिन उदेग निसि रोइ गवावहि ॥

मित्र वियोगिनि नारि, धारावरि सहि नैन जल।
रही रोइ पचि हारि, तन तन दुंद उदेग करि ॥

कपट बचत राजा उच्चरई। दुहुँ की प्रीति रीझि कै रहई ॥
मैं देख्यौ माधौनल जोगी। पुर उजैन रह त्रिया वियोगी ॥
नारि वियोगु ताहि दुख भयऊ। विरह के सूल विप्र मरि गयऊ ॥
ऐसे बचन जब राज सुनाए। त्रिया बधन कहँ जम उठिं धाए ॥
सुनत कंदला विस भरि गयऊ। धरनि पछार खाइ मरि गयऊ ॥

आलम मीत वियोग को, सबद परयौ जब कान।
लोभ न कीनौ स्वास कौ, गए आहि सँग प्रान ॥

सुनत पिंगला जैसो कीन्हा। ऐसे जीउ कंदला दीन्हा ॥
सखी आनि करि नारि रिखाई। मानहु काल बासुकी खाई ॥
बैठे दसन जीभ भइकारी। किलकै नहि छुटि गइ जब नारी ॥
रोवै सखी छोरि कै केसा। राजा जिय मँह करहि अँदेसा ॥
जिहि लगि विप्र इतो दुख लीना। सो त्रिय बचन कहत जिय दीना ॥

अति वियोग मालति सुनत, सूखे पल्लव मूल।
दुखित साल भये कलित बस, कलह सकत त्रिय सूल ॥

गये प्रान छिन में मरि गई। राजा के मन चिंता भई ॥
सीस धुनै राजा पछिताई। कइ अपराध कियों मैं आई ॥
प्रथमै तिरिया बध मैं कीन्हाँ। घोलि हलाहल देखत दीन्हाँ ॥
जो जनतेउँ त्रिय देइ पराना। कत हौं वचन सुनाएउँ काना ॥
उत्तर कवनु विप्र कौं देऊँ। वह मरि जाइ दोष द्वै लेऊँ ॥

गात सरोवर पंच वग, प्रान हंस उहिं वारि।
पिसुन बचन किये व्याधि विधि, दीनौ सकल बिडारि ॥

राजा कहै सखी सुनु बैना। विरह दुखित भइ मूँदे नैना ॥
विरह तेज मुर्छित तन नारी। लै आयउ गर रूधि हकारी ॥

यह के प्रान स्वर्ग नहिं गयऊ। पंच भूत आतमा मूर्छित भयऊ ॥
यह त्रिय करे काल नहिं आयउ। आहि के संग प्रान उठि धायउ ॥
जा तन मैं विरहा नल रहई। सो तनु आइ कालु नहिं दहई ॥

गये प्रान तन फिर्यौ न जिहि, इहाँ गगन जिमि दूरि।
हौं पारस जिहि कर छुवौं, सीतल जीवन मूरि ॥

इहि विधि विक्रम भयौ उदासा। नारि उठि चल्यौ निरासा।
कर मींजै पछिताइ नरेसा। नीच माथ कै करै अदेसा ॥
ग्रंथ गँवाइ ज्यौं चलै जुवारी। तैसे चल्यौ राजा मनु मारी ॥
जाम तीन जामिन के भयऊ। राजा उतरि कटक मैं गयऊ ॥
जहँ तँबुआ साजे सै वारा। तिहिं तँबुआ राजा पगुधारा ॥

राजा नैननि नींद नहिं, अन्न न भावहि पान।
मन झंखत झुरखत तभन, सोचत भयौ विहान ॥

माधव-प्रेम-परीक्षा खंड

भयौ प्रात बैठ्यौ दरबारा। राजा माधौनलहिं हँकारा ॥
सभा माँझ नल बैठे आई। राजा विप्रहि बात सुनाई ॥
जब लगि विप्र कथा यह भई। सो त्रिय विरह ताप मरि गई ॥
सुनत बात माधौनल काना। तुम पर दिये कंदला प्राना ॥
सुनत बात द्विज बिस भरि गयऊ। धरनि पछार खाइ मरि गयऊ ॥

दँव दाधी मालति सुनत, अति दाध्यौ तिहिं ठाहिं।
अलि मालति बिनु नहिं जिए, अलि बिनु मालति नाहिं ॥

राजा वचन सुनत द्विज काना। इहि के संग दिये मुहि प्राना ॥
माधौ सकल सभा उठि धाई। स्वास नासिका मूँदैं जाई ॥
पंडित गुनी वेद उठि धाए। जोगी मंत्र गारुहू आए ॥
ओषधि मूर मंत्र करि थाके। फरे न एक जियहि गुन ताके ॥
सीतल गात विप्र कौं भयऊ। मन धन जीउ स्वास संग गयऊ ॥

आलम ऐसी प्रीति करु, ज्यों वारिज अरु वारि।
वह सूखे वह ना रहै, रहै मूल दल जारि॥

विक्रम-चितारोहण खंड

करि उपचार लोग सब हारे। राजहिं देखि आँसु भरि ढारे॥
प्रथमहि तिरिया वध मैं कीन्हाँ। पुनहि विप्रहि जानत विष दीन्हाँ॥
नर मारत कोइ मोखु न पावै। ब्रम्हन वध्य नर्क उठि धावै॥
दोनों वध कीने मैं आई। चिहुरचि अग्नि जरौं मैं जाई॥
मैं विस्वास गुप्त जिय धारा। छलु करि जीउ दोउ कर हारा॥

प्रेम नैम निरखत रहत, यह नर नाहिन दोष।
भगत करत जिहि प्रीतमहि, तिहि नर नाहिन मोष॥

सकल कटक मैं परयौ हिरोरा। छूटैं फिरैं हाँथि औ घोरा॥
रिंध्या नाजु कोइ नहिं खाई। सैना उठी सकल अकुलाई॥
जिहि कै कारन इतनौ कीन्हों। तिहि द्विज वचन सुनत जिउ दीन्हों॥
उठि राजा विक्रम वल वीरा। बैठ्यौ जाइ नदी के तीरा॥
मलयागिरि के काठ उठाए। चंदन अगर बहुत लै आए॥

कियौ हेम संकल्प लै राजा, कर लैं वारि।
घीउ कलस जहँ डारि कै, साजी चिता सँवारि॥

लोग बैठि राजा समुझावैं। नेगी नेह लोग सब आवैं॥
कहैं लोग राजा तुम जरहू। थोरी बात लागि तुम मरहू॥
राजा येतो दुख जिनि करही। कोतिक नारि पुरुष जो मरही॥
उठि कै चलहु कटक कौं जाही। नातर जरै सैन सँग याहीं॥
घर भर लोग कटक मैं मरई। उठि किन चलहु सांति जब परही॥

जग समुद्र सुख दुख करम, ना तिहिं मेटन पार।
राज मरन व्यापहि सकल, जिहिं पृथिवी को भार॥

राजा कहै सुनहु सब कोई। जिहि विधि हानि धर्म की होई॥
इहि जग माँह मरन सब आये। राजा रंक काल सब खाये॥
जाको सब जग अपजस करई। जीवत सुयौ पाछै का मरई॥
शिक्षा दई सब ही गहि रहे। आप आप को चित गहि रहै॥
उठि राजा कीन्हें अस्नाना। धोती पहिरि दिये बहु दाना॥

गंगा जल अस्नान करि, द्वादस तिलक बनाइ।
नमस्कार करि भानु को, बैठि चिता मैं जाइ॥

बैताल खंड

स्वर्ग लोक महँ बात चलाई। जीवत जरत है विक्रमराई॥
देवी देवता सब उठि धाये। चढ़ि बिवान सब देखन आये॥
गन गंधर्व किन्नर सब गुनी। तब बैताल बात यह सुनी॥
जाकों मित्र वीर बैताला। सुनत वचन आयौ ततकाला॥
राजा अग्नि दैन कौं चहई। तिहि छिन आइ बाहँ पुनि गहई॥

तू सकबंधी चक्कवै, सिंह सूरपति सेस।
किहि कारन तू जरत है, पर दुख हरन हरेस॥

राजा कहै सुनहु बैताला। मैं बड़ पाप आपकौ घाला॥
पहिले तिरिया वध मैं कीन्हाँ। पुनि मैं जीउ विप्र को लीन्हाँ॥
जिहि कारन पावक मैं जरहूँ। जम के त्रास नर्क तैं डरहू॥
कह बेताल राजा जनि जरहू। ऐसी बात लागि जनि मरहू॥
खिन मैं अमृत ल्याऊँ जाही। विप्र नारि तुम देहु जियाही॥

आलम उत्तम सोइ, अपजस तैंकर का करहि।
रहत न लज्जा होइ, आपु बुराई कान सुनि॥

कहि बैताल सुनहुँ वलवीरा। मैं लाऊँ जीवन कौ नीरा॥
बेगहि गयो वीर बैताला। सुधाकुंड तहँ होते ब्याला॥
परकत नयन बिलंब न लावा। तुरत वीर अमृत ले आवा॥

पहिले लै माधौ कौं दीन्हाँ। तिहिं यह प्रेम पसारा कीन्हाँ ॥
सुधा पियत माधौनल जागा। आये प्रान सुन्न सब भागा ॥

नैन उघरि स्वासा चली, कियौ प्रान विस्राम।
कामकंदला कंदला, लेत उठ्यो मुख नाम ॥

उठ्यो विप्र राजा सुखु पावा। तिहि छिन उतरि चिता स्यौं आवा ॥
तब बैताल के चरन पखारे। प्रान जात तुम रखे हमारे ॥
कियो अनंद बाजा बहु बाजहिं। अर्ब खर्ब अति द्रब्य लुटावहिं ॥
सुनि सुख सकल खलक महँ भई। नर नारी की चिंता गई ॥
राज कहै हौं तब सुख पाऊँ। लै अमृत कंदला जियाऊँ ॥

भूसुर दीन असीस, जुग जुग जीउ नरेस बहु।
लोभ न करयौ सरीर, प्रेम काल यौं चाहिये ॥

राजा-वैद्य खंड

कनक कलस अमृत भरि लीन्हाँ। राजा भेष वैद को कीन्हाँ ॥
काम कंदला के घर आवा। पौरि दार सौं बात जनावा ॥
सुनि कैं बैदु पौरिया जाई। सखियन आगें बात जनाई ॥
सुनि कै बैदु सखी इक आई। मंदिर मैं लै गई बुलाई ॥
सुंदर बैद सुमूरति कामा। यह की मूरि जियहि यह वामा ॥

पंडित मीत विदेसिया, सुंदर गुनी सु आहि।
सनसुख आवत देखि कै, सखी रही सब चाहि ॥

सखी बहुत कै आदर कीन्हाँ। पाटंबर बैठन को दीन्हाँ ॥
जहाँ कंदला मिरतक परी। वैद आनि के नारी धरी ॥
सीतल गात देखि कै नारी। तब कछु बैद करहि उपचारी ॥
बैठि सखी सौं बोलहि गाता। नाहिन स्वास झूँठि सनिपाता ॥
नहिन रोग बेदन दिहि हरई। मिर्तक परा वैद कह करई ॥

स्वर्ग गये तेऊ फिरैं, प्रान जिये जम जाल।
ताकौ मंत्र न मूरि कछु, डँसै विरह कै ब्याल ॥

सुनहु बैद जौ नारि जिवावहु। मुख माँगौ सोई तुम पावहु ॥
मृतक परयौ जौ वैद जियावहि। सो आपन को ब्रह्म कहावहि ॥
वैद रोग कों औषध करई। ताकौ कहा अचरज नर करई ॥
वचन निरास जब वैद सुनाये। सब के नैन नीर भरि आये ॥
साँचहु मरी कंदला नारी। परी खेह महँ खाइ पछारी ॥

गुन सुंदरता चातुरी, जब लगि तब लगि प्रान।
स्वास गहैं इहि अंग तैं, सब कोइ कहै समान ॥

निरखि वैद जिय आस कराई। जिन कोउ सखी और मरिजाई ॥
कहै वैद जिनि तोरौ वारा। देखौं कछू करौं उपचारा ॥
सकल सखिनु कौ धीरजु दीन्हाँ। अंब्रत वैद हाथ करि लीन्हाँ ॥
जहाँ हती कंदला नारी। सींच्यौ अमृत वदन उघारी ॥

अमृत बूंद जब मुख परयौ, आयौ चलि घर स्वास।
बोली नारी कंदला, भई सखी मन आस ॥

प्रगटे प्रान कंदला जागी। उघरे नैन चिंता सब भागी ॥
लेत उठी मुख माधौ नामा। पंचभूत मै किय विश्रामा ॥
कहै सखिन सौ सखी सुहाई। केती बार नींद मुहि आई ॥
तब यह उतरु दीन्हौं बाला। तूँ तौ मुई विरह के काला ॥
यह विषहर धन्वंतरि आयौ। मूर मंत्र पढ़ि तोहि जियायौ ॥

यह हनुमंत महाबली, पर स्वारथ चल्यो दूरि।
लछमण को संकट परयौ, आनि सजीवन मूरि ॥

जब सुख काम कंदला भई। सबरी सखिनि की चिंता गई ॥
तब उठि वैद के चरन पखारे। गये प्रान तुम दये हमारे ॥
कहै वैद हौं दान न लेऊँ। मागै औरु सुमांगे देऊँ ॥
जौ जिय लोभ तौ गुनी न कहिये। गुन संकर वैगुन तै रहिये ॥

जौ जिय लोभ तौ गुन कहाँ, जौ गुन लोभ तौ काइ।
गुन बिन रूपहिं ना गुनौ, गुन बिन पुरिष अपाइ ॥

कहै कंदला वैद सुनु मोही। वैद रूप नहिं देखौं तोही ॥
कै तुम देउ रूप चलि आये। मुख अमृत दै मोहि जिवाये ॥
मन बच बोलहु अपनी बाता। कहिये साँचु सत्त मैं साता ॥
हौं सकबंधी विक्रम राजा। पर की पीर हरहुँ करि काजा ॥
नगर उजैन राज तहँ करऊँ। दुखिया देखि सकल दुख हरऊँ ॥

माधौनल द्विज कारनै, चलि आयौ इहि देस।
तुम तन मिर्तक देखि कै, कियौं वैद कर बेस ॥

तोहिं मरन जब माधव सुनिऊँ। वह मरि गयउ सीस मै धुनिऊँ ॥
मैं छल रूप दोइ सिर लीन्हाँ। तब उपचार जरन का कीन्हाँ ॥
जरतँ सुनि कैं वीर वेताला। सो अमृत लायउ ततकाला ॥
प्रथमहि माधौनलहि जियायौं। तिहि पाछैं हम तुम घर आयौं ॥
अब सब साजि सैनि लै आऊँ। युद्ध जीति तोहि विप्र मिलाऊँ ॥

उपकारन दुख हरन जे, अंगीकरन अभार।
सुरपुर तिहिं कीरति करैं, जग मैं जस विस्तार ॥

ऐसे बचन जब राजा गहई। उठि चरन कंदला गहई ॥
दया निधान तुम रूप मुरारी। राजनि के राजा बुधि भारी ॥
यह संसार समुद्र अथाईं। तहँ तुम तारन तरन गुसाईं ॥
विरह घाव जे वोषधि करईं। ते नर दुहूँ लोक जसु लहईं ॥
बूड़त नाव जे पार लगावहिं। ते नर दुहूँ लोक जस पावहिं ॥

बिरला नर पंडित गुनी, बिरला बूझन हार।
दुख खंडन बिरला पुरिष, ते उत्तम संसार ॥

ऐसे चरित तुमहिं पर आवहिं। यह बुधि लोक वैद कहँ पावहिं ॥
पर उरकार करहु बलवीरा। बूड़त नाव लगावहु तीरा ॥
कीरति कहिय न जाइ तुम्हारी। धर्म कर्म बलि वीर मुरारी ॥
तुम समर्थ करिहौ सब काजा। हम संसार नरनि के राजा ॥

जो बुधिवंत महाबली, नरसिर जे करतार।
पर उपकार नर दुख हरन, जे अगवत पर भार ॥

कंदला-संदेश खंड

पायन लागौं सुनहु नरेसा। माधौनल सो कहउ सँदेसा ॥
गये प्रान लैगये उपाऊ। अब के गये न बहुरै आऊ ॥
तुम सन भई विपति की पीरा। जोगी भेष न कीन्हौं फेरा ॥
अब विधि मोहि आनि दिखरावो। निरखि विरह की पीर बुझावो ॥
पंख होइ जो नैनन माहीं। छिन एक देखन को उड़ि जाहीं ॥

दृग पुतरिन की तारिका, निरखि मूरती मैन।
तब गुन माला कर लियैं, जपौं सु वासर रैन ॥

बिति की बात हौ सब मेरी। नृपति कहहुँ बिनती कर जोरी ॥
निसि दिन वहैं विरह दव देहा। हीयो तरकत सुनि जिय नेहा ॥
करि भर सेज नीद भरि होई। रजनी सकल सिराऊँ रोई ॥
निसि दिन अग्नि गात ज्यों जरई। रोम रोम वेदनि संचरई ॥
सोचति रहौं निसि वासर जागी। नैम रहै तव मारग लागी ॥

जर कपोल औ करन ये, सदा रहत इक संग।
रोइ रकत ये नयन मग, सेत बरन भयो अंग ॥

रितु बसंत मोहि कोकिल दहई। मलय समीर आगि जिमि बहई ॥
पावस रितु बरसै जब मेहा। झुकति मरौं हौं सुमिरि सनेहा ॥
चातक मोदनि षरिय सताई। दामिनि दमकि प्रान लै जाई ॥
सूर चंद्र सीतल सब कहई। मिलि समीर आगि जिमि बहई ॥
जे जे सीतल सुखद सहायक। ते सब मोहि भये दुख दायक ॥

चंदन चंद कँवलन कली, पिक चातक जु समीर।
ये सब वैरी मोहि तन, हौं क्यों राखौं धीर ॥

विरह बनावल सीतल रहई। उठत आगिनि नख सिख तन दहई ॥
मंजन अंजन कौन सिंगारा। सुनत न भावै नाद बिस्तारा ॥
माधौनल सो कहौं बुझाई। जौ आपनी विपत्ति जनाई ॥
विनवति हौं सकवंधी राई। बिरह द्रिस्टि सौं लेउ बुझाई ॥
सौ उपकार करौ जिय माँई। दमवंती ज्यों नलहि मिलाई ॥

मालति अस संपति मिलै, पूरन ससिहि चकोर।
चकवी कौ चकवा मिलै, कँवल बिगसि भये भोर॥

त्रिया विरह दुख राजा सुनिहू। देखत सुनत सीस कर धुनिहू॥
कामकंदलहि धीरज दीन्हा। राजा जीव कटक पर कीन्हा॥
सखी सकल मिलि देई असीसा। चिरंजीव राजा जुग बीसा॥
तुरिय सिंगारि भये असवारा। आये कटक न लागी बारा॥
सिंघासन पर बैठे जाई। लोक सभा सब लई बुलाई॥

विरह कथा राजा कहै, निरखत बुधिजन लोग।
सुनत सकल सब थकित भे, प्रगट्यो बिरह वियोग॥

राजा कहै गुनौ सब लोई। यह जग ऐसो और न होई॥
इहि की प्रीति इही जग जानी। जग मैं जुग जुग चलै कहानी॥
कलि मैं अमर भयौ यह नेहा। बिरह की अग्नि दहैं जिय देहा॥
पुनि राजा मंत्री सौं कहई। सो कछु कहौं कथा निरवहई॥
काम सैनि पहँ पठ्यौ वसीठा। बुधिजन चतुर सभा मह डीठा॥
उत्तम बंस स्वरूप गुन, बुध विद्या जु प्रवान।
वीर धीर बचननि चतुर, सो पठवहु परधान॥

दूत-खंड

पहिलैं राजा बात जनाई। कामकंदला माँगि पठाई॥
जो कछु माँगै दर्वि सु देऊँ। नातर जुद्ध जीति कर लेऊँ॥
रघुवंसी इकु श्री पति नाऊँ। पठ्यौ काम सैनि के ठाऊँ॥
चतुर दूत श्री पति चलि गयऊ। राजा द्वार सु ठाढ़ो भयऊ॥

दूत सुनत आगे भएँ, लेउ बेगि हंकारि।
आदर सो तिहि लैन को, उठि धाये जन चारि॥

आयौ सभा बैठि तिहि ठाऊँ। राजा कीन्हौ आदर भाऊँ॥
राजा दूतहि मुखै लगायौ। कहौ बचन तुम कौन पठायौ॥

बोल्यो दूत सुनौ बलवीरा। हौं पठ्यौ नृप ब्रिक्रम धीरा ॥
सकबंधी बल बिक्रम राई। सो तुम देस पहुँच्यौ आई ॥
माँगत देउ कंदलानारी। विप्र काज आयौ बुधि भारी ॥

माधौनल के कारनै, नृप आयौ इहि देस।
कामकंदला विप्र को, माँगै देउ नरेस ॥

काम सैनि राजा तब कहई। रिस करि रूखे बचन न सहई ॥
निठुर बचन कस कहै बसीठा। बोलैं और सभा की दीठा ॥
जो तुम कामकंदला देऊँ। सब दानिन मैं अपजस लेऊँ ॥
देस देस के कहैं नरेसा। दीन्हौं दंड बचायौ देसा ॥
जब लग स्वास जीउ भरि लेउँ। तब लग दंड न माँगे देउँ ॥

बल करि आयौ राज अब, सूरबीर सँग लाइ।
मद गयंद दल साजि कै, उठि रन मंडौ जाइ ॥

कहै बसीठ राजा सुनि लीजै। येते लघु विग्रह नहिं कीजै ॥
देस गुरू राजा चलि आयौ। जाको सीस नरेस नवायौ ॥
आयौ विक्रमचंद नरेसा। जा कहँ कपै सुरपति सेसा ॥

हय दल गज दल गवत न, आवै ही औसर विचारि।
दुर्जन हू हँसि उठि मिलह, बोलहि रोस निवारि ॥

रानी कहै बसीठ सुनु बैना। भौंह चढ़ाइ रोस करि नैना।
काम सैनि नै पठ्यौ नेगी। कहौ राइ सौं आवै वेगी ॥
लै संदेस बसीठ उठि चलई। गयौ जहाँ नृप विक्रम रहई ॥
कहै बसीठ माँगे नहिं देई। क्रोधवंत मनु लै मनुलेई ॥

कहै बसीठ राजा सुनहु, उठि रन मंडहु जाइ।
सिंह रूप गाजैं सुभट, वे मृग चलैं पराइ ॥

युद्ध-खंड

सुनि राजा तब बोलहि वैना। गयंद पैदल साजौ सैना ॥
साजौ मेघबरन गज कारे। चुवहिं गयंद घुमैं मतवारे ॥

पर्वत से आगै दै चलिऊ। धरनी धँसी दिकपति सब हलिऊ ॥
धूमर धूलि आन रथ जोती। छूटे सिंह रूप जिव होती ॥
जबर जंग गोला जब भारे। अस्टधात साँचै सों ठारे ॥

हयदल पयदल गज दल, जोतिहि जोति सुरंग।
सूरबीर वानै वनै, चली चूम चतुरंग ॥

दुहूँ दिसि ते उमगे असवारा। लोह लपेटैं अगम अपारा ॥
कूदहिं बाजी नाना रंगा। नाचैं यों ज्यों डहडहहिं कुरंगा ॥
उतिम जाति पछिम के ताजी। तिहि पर चढ़े सभट सब साजी ॥
बाँधे विष करि धनुक कर लीन्है। लाँकहि कूटि सीस पर लीन्हैं ॥
साँग सेल फरसा चमकारा। चमकत लोह अगिनि की झारा ॥

रन मंडन खंडन दवन, आनदै सब सूर।
चलेति चंचल चाउ करी, डरै ठकाइर क्रूर ॥

मेघ सबद जिमि बजैं निसाना। उठै अकूट अँबर घहराना ॥
भरे झाँझ धुनि सुनै अडारू। सूर समूह अरु बाजहिं मारू ॥
मारू सब्द सुनहिं जिमि बीरा। पुलकत रोम रोम अरु धीरा ॥
इक दिसि तैं रथ जोरि चलाये। इक दिसि गज ढाढ़े सत भाये ॥
बीचहि लैकर पैदल भारा। तिहिं पाछे आवै असवारा ॥

सेल सोध कर रंग बिनु, पाये भंडन जूद।
बहुरि सुभट जे सुभट सौं, सिंह रूप ह्वै कूद ॥

विच बिक्रम हस्ती असवारा। रन अभरन सब पहिरै सारा ॥
जामन चलत सेत सिर दंती। स्याम घटा मानहु बगपंती ॥
घंटक धुनि दिगपति थरहरई। कर तजारत इंद्रासन डरई ॥
चहुँ दिसि वीर परवरिया चले। दोनों जूझ इहूँ विधि भले ॥
मुंड कूट सूरन के सीने। गज सिपाह आँगे करि लीने ॥

सिंहनि ऐसो पूत जनि, पर रन मंडहि जाइ।
कुंभ पिदारन गज दलन, अब रन मंडै जाइ ॥

जुद्ध राग प्रगटी सुनि काना। कामावति पुर सुन्यौ निसाना ॥
परी रोइ नगरी उकताइ। प्रजा पवन सब चले पराइ ॥
कामसैनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देहु जुद्ध कहँ ढोला ॥
ततखन सूर समिटि सब आये। करि सकूट चहूँ दिसि धाये ॥
अब राजा आग्याँ जौ देई। सब रन जाइ आगे ह्वै लेई ॥

जौ जगपतिहूँ को सूनिय, मृग गन छुटि सब जाई।
सो हरजन की धाक सुनि, रहे न मंदिर माँहि ॥

थके साज साजैं रजपूता। दुर्जन को लागैं ह्वै भूता ॥
तूँ वर चढ़े कै वानै। मिलि औ चले राव सब रानै ॥
काम सैनि राजा दल साजा। चलैं लरन मारू जब बाजा ॥
चले बजाइ राव औ बानी। चढ़ी धौरहर देखति रानी ॥

अचरज सूरमा देखि कै, वली अनंद करेइ।
दुहुँ बिधि माँग सिंदुर भरि, हाथ नारियर लेइ ॥

इत तैं कामसैनि चढ़ि गयौ। राजा बिक्रम सनमुख भयौ ॥
एक खेत जब दो दल भये। एक एक सों सनमुख भयो ॥
हिंसहिं तुरंग चिकारैं हाथी। सोभै हंक हंक मिलि साथी ॥
दुहुँ दिसि युद्ध राज भल बाजा। कायर डरैं सूरमा गाजा ॥
वान वाधिजु बिरद सुगावहिं। सुनि सुनि सुभट उमगि करि आवहिं ॥

सुनि मारू कौ राग, भुज फरकैं रन बीर के।
युद्ध जाइ मन लाइ, 'मारु' 'मारु' मुख उच्चरैं ॥

अगिन बान छुटैं दुहुँ ओरा। चकित विजुकित हाथी घोड़ा ॥
धुनुषहि धनुष वीर जो नाहा। अटकैं पंच बान सौं काहा ॥
चलै चक्र जो लै हथि नाला। पसरहिं धूम होइ अँधकाला ॥
छिन इक धनुष बान सौं लरई। हमकत बाहिर षग मँह परई ॥
भीर बान तें सहैं न पारैं। दुहुँ दिसि तुरी भीरन को मारैं ॥

सूर गरजि काइर डरहिं, सुनि गज सिंह सदूर।
षड्ग खोल तै जानियै, कोइ कायर कोइ सूर ॥

रावत पर रावत चढ़ि धाये। धानष पर धानष चढ़ि आये ॥
पाइक सौं पाइक भये जोरा। लरत वार यौ मुष नहिं मोरा ॥
गज सौं गज कीन्हे चौ दंता। चिकरैं कुंजर मैमत मंता ॥
बाजै लोह उठै टंकारा। तापर फिरैं खड्ग की धारा ॥
फूटैं फूट मुंड कटि जाहीं। बाजैं सार सार छन जाहीं ॥

सेज खड्ग नेजे सहैं, खाँय खड्म की मार।
सूर वीर पैते गनौ, सहैं लोह की मार ॥

रावत सों रावत जो भिरई। एकहि मारि एक पग धरई ॥
हाँकै सूर सूर सौं भिरही। घायल भूमि एक गिरि परहीं ॥
मारै खड्ग उतरि गये मुंडा। फिरैं राति धरती पर रुंडा ॥
सूर जूझि धर तेजे परही। रंडौ मार मार उच्चरहीं ॥

कर न करैं विस्राम, घाव जे सन्मुख सहि सकहिं।
जे जूझैं संग्राम, ते अपछर वर ह्वै रहहिं ॥

संकर मुंड वीनि करि लीन्हें। गूँथि गूँथि कर माला कीन्हें ॥
सन्मुख होइ जो देइ पराना। तिन कहँ स्वर्ग ते आवैं बिमाना ॥
संग निसंगनि करैं उबारा। दुहुँ दिसि चलैं रुधिर की धारा ॥
परहिं खड्ग टूटैं तरवारा। तब कर काढ़ी कमर कटारा ॥
सुभट वीर खोलि कैं लरहीं। दोनौ आनि भूमि महँ परहीं ॥

गमि मारैं सनमुख लरैं, जे मारहि तजि छोह।
लोभी सूर लहरि मरैं, जो अपछर बरनै मोहि ॥

कपै सूर वीर ते भारी। गज कंपै सहि सकैं कटारी ॥
लागै खड्ग गिरहिं ते दंता। टूटे सुँड रोवै मैमंता ॥
टूटैं मुंड होइं मुख भंगा। पर्वत से जनु परे भुवंगा ॥
गन गयंद रन जहँ तहँ परे। जनु धरनी मह पर्वत डरे ॥
लरि लरि सकल थमित ह्वै दरैं। इक जूझैं रन कानि न करैं ॥

सिंहनि ऐसो पूत जनि, सिंह बिदारन जोग।
धर सूरा रन भागना, जिन न हँसैये लोग ॥

बोलैं धाव 'मारू' उच्चरहीं। जहँ तहँ रकत के नारे ढरहीं ॥
फूटैं मुंड चलैं रन लोहुव। सुभटै सुभय फिरै जन कुहुरुव ॥
जोगिनी फिरैं भूतनी साना। बैठि करैं लोहुत्र कर पाना ॥
भिरहिं धाइ लोथि लै जाहीं। लोहू पियैं मासु मिलि खाहीं ॥
जोवब जाल करालै करोलैं। लोथहिं काटि सरो महि बोलैं ॥

जोगनि फोरैं खोपरी, जंबुक भखै जु मास।
सूरन की गति देखि कै, सूरज होई उदास ॥

लोहू भरे छूटै सिर वारा। सूते सूर वीर बिकरारा ॥
सुन्यौ सरन उमड़े ते भलैं। दहनै चुवहिं रुधिर के चलैं ॥
चिहुरो हाथ आव नहिं मेरैं। गुन ज्यों सिंह देखि डहि मरैं ॥
कहूँ कहूँ गावैं बरचा लैं कोऊ। कहूँ दौर रागन गुन दोऊ ॥

पर दल खंडहिं लरि मरैं, खाय जु सन्मुख धाव।
स्वामी सँग ते ना तजैं, छत्री कुलहि सुभाव ॥

पहर चारि लौं विग्रह भयऊ। दुहुँ दिसि लोग जूझि सब गयऊ ॥
सुभट सूर विक्रम के बाँचे। जूझे सुभट सूरमा साँचे ॥
कामसैनि सब सैनि जुझाई। जूझि गिरे सब रावत राइ ॥
जूझे सुभट जे चढ़े बिवाना। गेये सकल रवि के अस्थाना ॥
स्वामि काज जे कटि कटि मरहीं। ते सब सूर अप्सरा बरहीं ॥

जूझंता सूरा भलै, घाव जै सन्मुख खाँहि।
जीवत मैं मुख भागहीं, मरै त सुरपुर जाँहि ॥

माधव-कंदला मिलन खंड

कामसैनि राजा जो हारा। जाइ मिल्यो तजि के हथियारा ॥
हाथ जोरि के सनमुख आयो। विक्रम आगे सीस नवायौ ॥
सुनहुं राज मैं दीन्ह्यौ देसा। सकबंधी पर हरौ कलेसा ॥
चढ़ते थहराई सिर सेसा। विक्रम जा दिन करै प्रवेसा ॥

कामसैनि जब मिल्यौ जु जाई। फिरि पछितानौ सैन जुझाई॥
मिलकरि राज नगर महँ चला। दीनी आनि कामकंदला॥
मिली कंदला बहु सुख पावा। राजा माधौनलहिं बुलावा॥

कलि महँ विरह वियोगिनी, भरि भरि लेहि उसास।
सीसु ठगौरी भोर भय, कीनौ सूर प्रकास॥

माधौनल औ कंदला मिलेउ। मिलि बिरही दोनौ दुख दलिऊ॥
मिलि कैं अधिक सुक्ख तिनि पावा। दुउ सँताप लै गंग बहावा॥
मिल्यौ सोइ भावत भावंती। राजा नल रानी दमयंती॥
मिले भरथरी अरु पिंगला। माधौनल औ कामकंदला॥
पूरन ससि जिमि दुखित चकोरा। कुमुदिन चक्रवाक जिमि मोरा॥
नित प्रति केलि करहिं सुख रहहीं। दिन दिन प्रीत अधिक मन करहीं॥

भावंता जा दिन मिलै, ता दिन होइ अनंद।
संपति हिएं हुलास अति, कटि विरहा दुख फंद॥

माधौ कामकंदला मिलाई। पुनि राजा उज्जैनै जाई॥
संग विप्र माधौनल लीन्हां। जिहि कारन इतनौ जस कीन्हां॥
राजा नगर उज्जैनै गयऊ। तबही अंत कथा कर भयऊ॥
माधो कामकंदला नारी। जानौ विधि रचि दई सँवारी॥

अपनौ सुख तजि दुख लहैं, पर दुख खंडन जांइ।
वार निबाहै एक सम, धनि सकबंधी राइ॥

कथा चौपही आलम कीन्हीं। पहिले कथा स्रवन सुनि लीन्हीं॥
कहुँ कहुँ बीच दोहरा परै। कहूं आनि सोरठा धरैं॥
सुनत स्रवन यह कथा सुहाई। अति रसाल पंडित मन भाई॥
प्रीतिवंत है सुनै सो कोई। बाढैं प्रीति हिएं सुख होई॥
कामी पुरिष रसिक जे सुनहीं। ते या कथा रैनि दिन सुनहीं॥

पंडित बुधिवंता गुनी, कविजन अच्छर टेक।
नाम नमित गुन उच्चरहि, कहि कहि कथा अनेक॥

———

नूर मुहम्मद

जीवनवृत्त

इंद्रावती का केवल पहला भाग काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित हुआ है। इसका दूसरा भाग अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है अतः इसकी कहानी अभी तक अधूरी ही प्राप्त हो सकी है, जिससे पूरी कहानी का अटकल लगाना कठिन है। पहले भाग में जो अंश सुंदर जान पड़े वह इस संग्रह में ले लिये गये हैं। हाँ, कथा का रचना काल आदि का पता प्रथम भाग से ही चल जाता है।

निवास-स्थान

इसके रचयिता नूरमुहम्मद अपना जन्मस्थान पूरब में 'सबरहद' नामक एक स्थान बताते हैं।

कबि अस्थान कीन्ह जेहि ठाऊँ। सो वह ठाऊँ सबरहद नाऊँ॥
पूरब दिस कइलास समाना। अहै नसीरुद्दी को थाना॥

पूर्व दिशा में कैलास के समान रम्य यह 'सबरहद' नामक स्थान कहाँ है इसका पता गज़ेटियर आदि से भी नहीं चलता। यह कोई मामूली गाँव या क़स्बा होगा जो अभी तक कोई प्रसिद्धि नहीं पा सका। श्री चंद्रबली पांडे ने इस स्थान को जौनपुर जिले में शाहगंज बतलाया है। पांडेजी के मतानुसार वे अंतिम दिनों में अपनी सुसराल मादौं (फूलपुर आज़मगढ़) में रहने लगे थे। 'अनुराग बाँसुरी' में उन्होंने अपना उपनाम 'कामयाब' लिखा है। 'इंद्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के अतिरिक्त 'फेर कहा नलदमन कहानी' के अनुसार इनकी एक रचना 'नलदमन' भी है।

कवि का दैन्य

यह एक तरुण कवि की रचना है। कवि स्पष्ट कहता है कि मैंने तरुणाई की अवस्था में इसकी रचना की है। मेरा लड़कपन अभी नहीं छूटा है, मेरी बुद्धि अभी अपरिपक्व है। मैं तो खेल खेलना जानता हूँ 'पोथी कहना' मैं नहीं जानता अतः विद्यावयोवृद्ध गुरुजन मेरी रचना देख

कृपया नाक भौं न सिकोड़ें। मैंने तो भूतपूर्व कवियों के खेतों से बालें चुनकर एक बड़ा सा खलिहान खड़ा करने का प्रयास मात्र किया है। मेरी अपनी पूँजी बहुत परिमित है, इत्यादि—

कवि है नूर मुहम्मद नाऊँ। मैं पछलग सब को जग ढाऊँ॥
चुनि कविजन खेतन सों बाला। करै चहत खलिहान बिसाला॥
है कवि समै नई तरुनाई। छूट न अबहीं कवि लरिकाई॥
जाके हिए लरिक बुधि होई। बहुतै चूक कहत है सोई॥
विनवत कवि जन कहँ कर जोरी। है थोरी बुधि पूँजिय मोरी॥
चूका देखि सँभारिकै, जोरेहु अच्छर टूट।
दाया कर मोहि दीन पर, दोस न लायहु कूट॥
हौं हीना विद्या बुधि सेती। गरब गुमान करौं केहि सेती॥
हौं मैं लरिकाई को चेला। कहौं न पोथी खेलहुँ खेला॥
गुरुजन सों यह बिनती मोरी। कोप न मानहिं भौंह सिकोरी॥

विनयशीलता में यह कवि उसमान से भी बाज़ी मार ले जाता है। पर जो भी हो, एक नवयुवक कवि की कविता में यौवन की स्फूर्ति और उमंग का होना स्वाभाविक है, जिसका परिचय हमें बराबर इस काव्य में मिलता है।

कवि ने अपनी वंशावली या गुरु परंपरा का वर्णन नहीं किया है। स्तुति के रूप में इन्होंने 'सिरजनहार' ईश्वर का स्मरण किया है और उसके बाद अपने 'अरबी' नबी मुहम्मद साहब का स्मरण किया है। 'अपने कुल की रीति' का पालन करने के ये क़ायल थे। ये कहते हैं—

है मगु बहुत जगत महँ, तिन मगु की नहिं चाव।
आपन पंथ देखावहु, राखौं तापर पाँव॥
सुमिरौं चेत धरें मन ढाऊँ। अरबी नबी मुहम्मद नाऊँ॥
जो कहँ करता दरस देखाएउ। कै किरपा सब भेद बताएउ॥

ये अंतिम मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के समकालीन थे और पैग़ंबर की स्तुति के बाद ही इन्होंने शाह की प्रशंसा की है—

रचना-काल

करौं मुहम्मद साह बखानूँ। है सूरज दिल्ली सुलतानूँ॥
धरम पंथ जग बीच चलावा। निबरन सबरै सौ दुख पावा॥
पहिरे सलातीन जग केरे। आये मुहँस बने हैं चेरे॥
इहै साह नित धरम बढ़ावे। जेहि पहराँ मानुस सुख पावै॥
सब काहू पर दाया करई। धरम सहित सुलतानी करई॥

कला प्रेमी, कवि तथा निपुण संगीतज्ञ मुहम्मद शाह उपनाम "रँगीले" का नाम अब भी प्राचीन परिपाटी के गायकों तथा शायरों की जबान पर रहता है। इनका जीवन ही संगीत-साहित्यमय था। इनके रचे हुए सैकड़ों ख्याल अस्थायी अब भी गवैयों को याद हैं। ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नहीं कि सुदूर पूर्व सबरहद निवासी नूर मुहम्मद तक इनसे प्रभावित हुए हों। अस्तु

अपने ग्रंथ का रचना काल नूर मुहम्मद ने सन् ११५७ हिजरी (संवत् १८०१) दिया है—

सन इग्यारह सौ रहेउ, सत्तावन उपनाह।
कहै लगेउ पोथी तबै, पाय तपी कर बाँह॥

इस हिसाब से इनकी रचना उसमान १०२२ हिजरी से १३५ वर्ष और जायसी ९४७ हि० से २१० वर्ष बाद की ठहरती है। पंडित रामचंद्र शुक्ल के हिंदी साहित्य के इतिहास में कहा गया है कि 'इस ग्रंथ' (इंद्रावती) को सूफ़ी पद्धति का अंतिम ग्रंथ मानना चाहिए। पर तब तक शायद शेख़ निसार का पता नहीं लग सका था। यह इनके बाद के हैं और अभी तक इनकी रचनाएँ अप्रकाशित रही हैं। हो सकता है कि इनके 'सूफ़ी पद्धति' के कवि होने में मतभेद हो। पर इतना निश्चय है कि 'यूसुफ़-ज़ुलेख़ा' सोलहो आने प्रेम-गाथा काव्य हैं और इनके सभी ढंग 'पद्मावत' आदि के समान हैं। सूफी ढंग के रहस्यवाद का दृष्टि-कोण कुछ कवियों के सामने कम रहा है और कुछ के सामने अधिक। आलम और निसार (मुख्यतः आलम) अपेक्षाकृत यथार्थवादी कवि हुए हैं। और निसार का कथानक अपना आदर्श भारतीय परंपरा की

अपेक्षा ईरानी संस्कृति से अधिक लेता है। जो हो, उक्त तिथि से नूर मुहम्मद की जन्म तथा निधन तिथि का अटकल लगाना असंभव है। सिवाय 'इंद्रावती' के इनके रचे हुए अन्य किसी ग्रंथ का पता अभी तक नहीं चल सका है।

आलोचना

उसमान की भाँति इनकी कथा भी पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होती है[1]। उधर उसमान कहते हैं 'कथा एक मैं हिए उपाई, और इधर नूरमुहम्मद को स्वप्न में इसकी प्रेरणा मिली !

कथा का रूप

एक रात सपना मैं देखा। सिंधु तीर वह तपिय सरेखा ॥
अहै ठाढ़ मोहि लीन्ह बुलाई। कहेसि कि सिंधु में बूड़हु भाई ॥
त्रसा छोड़ पोढ़ा कै हीया। मोती काढ़हु होइ मरजीया ॥
ससि मोती को हार सँवारहु। इंदावति की गोद महँ डारहु ॥
लै मोती दोउ हाथन माहाँ। झारू रतन सीर उपराहाँ ॥
तेहि पल तपसी दरस देखाएउ। मोहि संग एहिबात सुनाएउ ॥
राज कुँवर रानी इंद्रावती। हैं रवि कमल औ भँवर मालती ॥
चुनि परसुन दुइ हार सँवारहु। तिनके ग्रीव बीच लै डारहु ॥

अज्ञा मान तपी कर, चलेउ जहाँ कुलवार।
खुला न पायउँ द्वार को, मालिहि दिएउँ पुकार ॥

माली कहा जएत सन होई। कोहु फूल नहिं बरजित कोई ॥
तन पलुहा बारी की नाँईं। भन भा फुलवारी तेहि ठाईं ॥

किरपा सौं बारी मँह, माली दीना साथ।
आडे कीउ न आएउ, भै फुलवारी हाथ ॥

[1] चूंकि कथा अधूरी है और कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है अतः इसका संक्षेप देना व्यर्थ समझा गया। हाँ संगृहीत अंश इस ढंग से रखे गये हैं कि कथा का संबंध लगता चला जायगा।

स्पष्ट है कि नूर मुहम्मद को स्वप्न में किसी तपस्वी द्वारा इस कथा की अंतःप्रेरणा मिली और माली गुरु ने रास्ता दिखाया। कवि का हृदय ही एक फुलवारी है। और वहीं माला गूँथने की सामग्री मिल जाती है। यदि माली द्वार खोल देता है तो दर-दर भटकने की जरूरत नहीं है।

फिर कहते हैं मन ही समुद्र है और उसमें गहरा गोता लगाने से ही मुक्तावत् कवि-वचन-सुधा की प्राप्ति हो सकती है और उन्हीं मोतियों से दोहा चौपाई की शकल में हार गूँथे जा सकते हैं।

फिर इनके हृदय ने कहा कि दो हार बनाकर एक राजकुँवर के और एक इंद्रावती के गले में पहिनावो।

कथा की उपज के संबंध में कवि के इन प्रवचनों से उसका रहस्य-वादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। कालिंजर नाम अवश्य ऐतिहासिक है (यहाँ का किला देश-प्रसिद्ध है) पर पात्र कल्पित हैं, जैसा कि नाम ही से प्रगट है। राजा का नाम 'भूपति'; राजकुमार का नाम 'राजकुँवर'; और यह नाम ज्योतिषियों ने बहुत विचार तथा गणना के बाद तय किया !

राजैं पंडित बेगि हँकारेउ। पंडित आइ सुजनम विचारेउ ॥
कहा पुत्र के हीयरे, बाढ़ै प्रेम वियोग।
रूप एक पर रीझै, वेहि नित साधै योग ॥
'राजकुँवर' तेहि राखा नाऊँ। जनम नछत्र घड़ी के भाऊँ ॥

खैर, कालिंजर के इन्हीं राजकुँवर का प्रेम आगमपुर[1] की राज-कुमारी से होता है; स्वप्न-दर्शन विधि के अनुसार। फिर नाना प्रकार की चौरासी भोगते हुए (वही जोगी खंड, सुवा खंड, युद्ध खंड आदि होते हुए) अंत में इनका मिलन होता है।

आगमपुर इंद्रावती कुवर कलिंजर राय।
प्रेम हुतें दोउन्ह कहँ, दीन्हा अलख मिलाय ॥

---

[1]यह नाम भी काल्पनिक है, ऐतिहासिक नहीं।

यहाँ पर 'अलख' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'अलख' 'निरंजन' 'माया' आदि नाथपंथियों और फिर कबीर, दादू आदि संतों की बोली में ही ज़्यादातर आते हैं; और सूफ़ी कवि भी इनकी विचारधारा से काफ़ी प्रभावित हैं। फिर इस संबंध में कवि के निम्नलिखित प्रवचन भी ध्यान देने योग्य हैं—

आपुहु भोग रूप धरि, जग मो मानत भोग।
आपुहि जोगी भेस होइ, निस-दिन साधत जोग॥

अलख प्रेम कारन जग कीन्हा। धन जो सीस प्रेम महँ दीन्हा॥
जाना जेहिक प्रेम महँ हीया। मरै न कबहूँ सो मर जीया॥
प्रेम खेत है यह दुनियाई। प्रेमी पुरुष करत बोवाई॥
जीवन जाग प्रेम को अहई। सोवन मीच वो प्रेमी कहई॥
आग तपन जल चाल समूझो। पुनि टिका माँटी कहँ बूझो॥

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि नाथपंथियों या संतों के एकेश्वरवाद को मानता हुआ भी प्रेम को प्रधानता देता है। और प्रेम ही उसका मार्ग तथा ध्येय दोनों एक साथ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूफी दृष्टिकोण के रहस्यवाद में एक साथ ही कबीर और ख़ैयाम के रहस्यवाद का कितना मधुर सम्मिश्रण है।

प्रबन्ध शैली

इन्होंने भी प्रबन्ध रचना जायसी और उसमान के ढंग पर ही की है। खंड विभाग और कथा का विकास प्रायः समान है। भाषा की प्रौढ़ता उसमान से घट कर है। नव-युवक कवि की रचना तो है ही। ढाँचे में एक खास फर्क है कि इन्होंने पाँच-पाँच चौपाई के बाद दोहा बैठाया है, और जायसी आदि ने सात-सात के बाद। हाँ निसार ने नौ चौपाई का क्रम रक्खा है, और इन्होंने (निसार ने) दोहा चौपाई के सिवा सोरठा, कवित्त सवैया आदि अन्य छंदों का भी यथास्थान उपयोग किया है और उन स्थानों पर इनकी भाषा में ब्रज भाषा की छटा आये बिना नहीं रह सकी है।

नूर मुहम्मद की भाषा शुद्ध अवधी है और उसमान की

भाषा — भाँति परिमार्जित नहीं है। ठेठ और ग्रामीण प्रयोग बहुत आये हैं। इन्होंने कहा भी तो है कि 'पोथी कहना' मेरा काम नहीं; मैंने तो खेल-खेल में यह कथा लिख डाली है।

इंद्रावती

स्तुति खंड

धन्य आप जग सिरजन हारा। जिन बिन खम्भ अकास सँवारा ॥
होऊ जग को आपुहिं राजा। राज दोऊ जग को तोहि छाजा ॥
दीन्हा नैन पंथ पहिचानों। दीन्हा रसना ताहि बखानों ॥
बात सुनै कहँ सरवन दीन्हा। दीन्ही बुद्धि ज्ञान तेहि चीन्हा ॥
गगन कि सोभा कीन्हे सितारा। धरती सोभा मनुष सँवारा ॥

आप गुपुत औ परगट, आप आद औ अंत।
आप सुनै औ देखै, कीन्ह मनुष बुधवंत ॥

अहइ अकेल सो सिरजन हारा। जानत परगट गुपुत हमारा ॥
कीन्ह गगन रवि ससि महि मेरा। कोउ नाहीं जोरी तेही केरा ॥
कीन्हा राति मिले मुख तासों। कीन्हा दिन कारज है जासों ॥
घन सो महि पर भेजत नीरा। पलुअत सूखी भूमि सरीरा ॥
सब बिलाय जाइहि एक बारा। रहै तेहिक मुख रवि उँजियारा ॥

है स्रोता औ दिष्टा, तेहि सम कोउ न आहि।
जो कुछ है महि गगन महँ, सब सुमिरत है ताहि ॥

अरे दोऊ जग के करतारा। कित कै सकउँ बखान तुम्हारा ॥
रसना होइ रोम सब मोहीं। तबहूँ बरन न पारउँ तोहीं ॥
है अपार सागर भौ केरा। मोहि करनी को नाव न बेरा ॥
कै किरपा मोहि पार उतारो। दया दृष्टि मोहि ऊपर डारो ॥
है हमकहँ आलम्ब तुम्हारी। तोहि दाया सो मुकुत हमारी ॥

है मगु बहुत जगत्त महँ, तिन मगु की नहिं चाव।
आपन पंथ देखावहु, राखौं तापर पाँव ॥

सुमिरों चेत धरें मन ठाऊँ। अरबी नबी मुहम्मद नाऊँ ॥
जा कहँ करता दरस देखाएउ। कै किरपा सब भेद बताएउ ॥
जेहिक बखान अहै लौ लाका। ताहि बखानत दोउ जग थाका ॥

चार यार चारिउ जस तारे। दीन गगन ऊपर उँजियारे॥
अबूबकर औ उमर बखानौं। उस्माँ बहुरि अली कँह जानौं॥
अहदहुतें अहमद भएउ, एक जोत दुइ नाउँ।
भएउ जगत के कारने, परेउ मोहम्मद नाउँ॥
कहौं मोहम्मद साह बखानूँ। है सूरज दिहली सुलतानूँ॥
धरम पंथ जग बीच चलावा। निबरन सबरे सौं दुख पावा॥
पहिरें सलातिनु जग केरे। आए सुहाँस बने हैं चेरे॥
उहै साह नित धरम बढ़ावै। जेहि पहराँ मानुष सुख पावै॥
सब काहू पर दाया धरई। धरम सहित सुलतानी करई॥
धरम भलो सुलतान कहँ, धरम करै जो साह।
सुख पावै मानुष सबै, सबको होइ निबाह॥
कीन्ह अस्थान कीन्ह जेहि ठाऊँ। सो वह ठाऊँ सबरहद नाऊँ॥
पूरब दिस कइलास समाना। अहै नसीरुद्दीं को थाना॥
है भल जग महँ पंथिक रहना। लेहु इहाँ सों आगम लहना॥
जग औ आपुहि कस पहिचानों। तरिवर और बटोहिय जानों॥
चला जात जस होइ बटोही। आइ छँहाइ विरिछ तर वोही॥
जथा जुड़ाइ तरिवर तर, धरै पंथ पर पाँव।
भास हमार जगत महँ, बूझो तेही सुभाव॥
आज रहन यह चाँद न ऊआ। आनन्द हरन जगत कर हूआ॥
साह करबला को दुख सोगू। समुझि समुझि रोवै सब लोगू॥
रोएउ गगन सेंदुरी नाहीं। रकत आँस है मुख उपराहीं॥
रोवै बादशाह जग साईं। हम ना रहे करबला ठाईं॥
देतेउँ सीस दीनपति कारन। करतेउँ जिउ तन मन सब वारन॥
रोवै अच्छर सीस धुनि, सल्स सबिल भाखार।
आज छिपान जगत रवि, जगत भएउ अँधियार॥
वावैला प्यासा गा मारा। आल रसूल बतूल पियारा॥
उठा चहूँ दिस तें वावैला। महि सिर परेउ सोग को सैला॥

पहिरेउ गगन मातमी बागा। परेउ चंद के हियरें दागा ॥
औ ससि कहुँ दुख राहु गराहा। सूरज कहँ उपनेउ उर दाहा ॥
इनके बीच हसन का प्यारा। सेहरा लीन्ह रकत के धारा ॥

नूर मोहम्मद जीभ तें, कहें न मातम होइ।
जिय सों कहूँ मातम कथा, मन आँखिन सो रोइ ॥

मन इगसों एक रात मझारा। सूझि परा मोहिं सब संसारा ॥
देखेउँ एक नीक फुलवारी। देखेउँ तहाँ पुरुष अउ नारी ॥
दोउ मुख सोभा बरनि न जाई। चंद सुरुज उतरेउ भुईं आई ॥
तपी एक देखेउँ तेहि ठाऊँ। पूछेउँ तासों तिन कर नाऊँ ॥
कहा अहैं राजा अउ रानी। इंद्रावति औ कुँवर गेयानी ॥

आगमपुर इंद्रावती, कुँवर कलिंजर राय।
प्रेम हुते दोऊ कहँ, दीन्हा अलख मिलाय ॥

सरब कहानी दीन्ह सुनाई। कहा दया सेतीं हो भाई ॥
इंद्रावति औ कुँवर कहानी। कहु भाषा मों हो कवि ज्ञानी ॥
गाढ़ी गाँठ परै जहाँ तोहीं। छुटि जाय सुमिरेहु तुम मोहीं ॥
आज्ञा दीन्हा तपिय सेयाना। मन जिउ सों आज्ञा मैं माना ॥
होत भोर लिखनी मैं लीन्हा। कहै लिखै ऊपर चित दीन्हा ॥

सन इगयारह सौ रहेउ, सत्तावन उपराह।
कहे लगेउ पोथी तबै, पाय तपी कर बाँह ॥

कवि है नूर मोहम्मद नाऊँ। है पछलग सब को जग ठाऊँ ॥
चुनि कविजन खेतन सों बाला। करै चहत खरिहान विसाला ॥
है कवि समै नई तरुनाई। छूट न अबहीं कवि लरिकाई ॥
जाके हिए लरिक बुधि होई। बहुतै चूक कहत है सोई ॥
बिनवत कविजन कहँ कर जोरी। है थोरी बुधि पूँजिय मोरी ॥

चूका देखि सम्हारि के, जोरेहु अच्छर टूट।
दाया कर मोहि दीन पर, दोस न लाएहु कूट ॥

हौं हीना बिद्या बुधि सेतीं । गरब गुमान करौं केहि नेतीं ॥
हौं मैं लरिकाई को चेला । कहौं न पोथी खेलउँ खेला ॥
गुरुजन सौं यह बिनतिय मोरी । कोप न मानहिं भौंह सिकोरी ॥
दोस बहुत खेलत महँ होई । दाया करेहु न कोपेहु कोई ॥
दोस करै जो छोटा आही । मया करै गुरजन कहँ चाही ॥
मोहि विवेक कछु नाहीं, नहिं विद्या बल आहि ।
खेलत हौं यह खेल एक, दिष्टा देइ निबाहि ॥
एक रात सपना मैं देखा । सिंधु तीर वह तपिय सरेखा ॥
अहै ठाढ़ मोहि लीन्ह बुलाई । कहेसि कि सिंधु में बूड़हु भाई ॥
त्रसा छाड़ पोढ़ा कै हीया । मोती काढ़हु होइ मरजीया ॥
ससि गोती को हार सँवारहु । इंद्रावति की गीउ महँ डारहु ॥
लै मोती दोउ हाथन माहाँ । भारू रतन सीर उपराहाँ ॥
अस सपना मैं देखेउँ, जागि उठेउँ अकुलाइ ।
बहुत बूझ संचारेउँ, सपन न बूझा जाइ ॥
चित औ चेत बहुत मैं धरा । तब वह सपन बूझि मोहिं परा ॥
सिंधु समां मन को पहिचानेउँ । मोती समां बचन कहँ जानेउँ ॥
हार गुहन बूझेउँ चउपाई । रतन ग्रीव कहँ रतन बड़ाई ॥
मनुष्र सुबचन कहे सों लहई । बचन सरस मोती सों अहई ॥
बचन एक करतार निसारा । भा तेहि बचन हुते संसारा ॥
बचन हँसावै मनुष्य कहँ, बचन रोवावै ताहि ।
बचनहु तें यह जगत मों, कीरत परगट आहि ॥
है मन फुलवारी हो भाई । फूल समाँ यह बचन सोहाई ॥
बचन अरथ है वास समाना । कवि स्रोता है भँवर सयाना ॥
अचरज ऐस फूल पर अहई । बारी माँह कली नित रहई ॥
जब वह फूल तजत फुलवारी । बिकसत बास देत अधिकारी ॥
जुगजुग रहत न तनु कुम्हिलाई । दिन दिन बास बढ़त अधिकाई ॥
मन चाहत सों अस पुहुप, आज चुनौं भरि गोद ।
हार गूँथि के पहिरेउँ, मनमों बाढै मोद ॥

हिया कहा दुइ हार सँवारहु । रवि औ कमल गले महँ डारहु ॥
बुद्धि कहा दुइ हार बनावहु । मालति मधुकर कहँ पहिरावहु ॥
तेहि पल तपसी दरस देखाएउ । मोहि संग एहि बात सुनाएउ ॥
राजकुँअर रानी इंद्रावती । हैं रवि कमल औ भँवर मालती ॥
चुनि परसुन दुइ हार सँवारहु । तिनके ग्रीवँ बीच लै डारहु ॥
अज्ञा मान तपी कर, चलेउँ जहाँ फुलवार ।
खुला न पायउँ द्वार को, मालिहि दिएउँ पुकार ॥
आएउ माली सुनत पुकारा । खोलेउ फुलवारी का द्वारा ॥
पैठेउँ फुलवारी महँ जाई । रहसेउँ देखत फूल निकाई ॥
तन पलुहा बारी की नाईं । मन भा फुलवारी तेहि ठाईं ॥
माली कहा जएत मन होई । लेहु फूल नहिं बरजत कोई ॥
जब आज्ञा मालिहि सों पाएउँ । तब मैं फूल चुनै पर आएउँ ॥
किरपा सों बारी महँ, माली दीन्हा साथ ।
आड़े कोउ न आएउ, भै फुलवारी हाथ ॥
रहत न आगर रूप छिपाना । आपुहिं परगट करै निदाना ॥
जों रस रूप सों बाँधहु द्वारा । जाइ झरोखे चितवै प्यारा ॥
सिरजनहार छिपा ना रहा । आपुहिं फेर चिन्हावै चहा ॥
तब यह जग करतार सँवारा । चीन्ह पड़ा वह सिरजन हारा ॥
मानुष फूल सुरस सी नाऊँ । धरि धरि भा परगट सब ठाऊँ ॥
आपुहि भोगि रूप धरि, जगमो मानत भोग ।
आपुहि जोगी भेस होइ, निस दिन साधत जोग ॥
अलख प्रेम कारन जग कीन्हा । धन जो सोस प्रेम महँ दीन्हा ॥
जाना जेहिक प्रेम महँ हीया । मरै न कबहूँ सो मर जीया ॥
प्रेम खेत है यह दुनियाईं । प्रेमी पुरुष करत बोवाईं ॥
जीवन जाग प्रेम को कहईं । सोवन मीचु वो प्रेमी कहईं ॥
आग तपन जल चाल समूझो । पुनि टिकान माँटी कहँ बूझो ॥
हौ प्रेमी है प्रेम को, चंचलताइ बाय ।
जा मन जामाँ प्रेम रस, भा दोउ जग को राय ॥

कुँअर स्वप्न खंड

एक रात महँ कुंअर सरेखा। सपन बीच दर्पन एक देखा ॥
रहा अमल दरपन उजियारा। जिउ मुख को निरखावन हारा ॥
दरपन मों एक सुंदर नारी। देखहु चंदहु ते उँजियारी ॥
रही तइस सुंदर जस चही। दरपन देह बीच जिउ रही ॥
रही न तेहि संग सखिय सहेली। रहिउ मुकुर महँ आप अकेली ॥
सखि बदनी मनु रबि रही, रहा मुकुर जिमि धूप।
तेहि रुपवन्ती रूप सों, दरपन पाएउ रूप ॥

जागा भोर कुंअर कहँ पावा। सपन चिंत मों देवस गँवावा ॥
दुसर रात कस्तूरीय झारा। तासों सुगँध कीन्ह संसारा ॥
तेहि त्रिजमा राय सरेखा। पहिली रात कि मूरत देखा ॥
रहेउ न मूरत दरपन मांही। दरपन बहुत रहे अगुवांही ॥
कालिंजरी निपँ नर नाहा। तासो बदन देखा सप माहा ॥
जस दर्पन निर्मल रहे, तस देखा अधिकार।
दरसन एकै नारि को, सब आदरस मझार ॥

पहिली रात महीप सरेखा। मुख पर लट विथुरी नहिं देखा ॥
दूसर रात महीपति ज्ञानी। देखा मुख पर लट छितरानी ॥
देखि बदन लट सुंदरताई। सपने बीच रहा मुरुँ छाई ॥
मोहि अचरज हिरदय मो आही। कैसे मुकुर म देखा ताही ॥
यह सपने को को पतिआई। मुकुर सौंह बिनु देखि न जाई ॥
यह सपने की बात पर, अचरज करै न कोइ।
सपने मों सो होत है, जो सौतुके न होई ॥
राजा देखि सपन अस जागा। लागा ग्रीव प्रेम को तागा ॥
तागा पाइ प्रेम को राजा। भा प्रेमी छाड़ा सुख काजा ॥
का जाने सुख भोग भुलाना। प्रेम मरम जब लग अनजाना ॥
जाना जात प्रेम तब भाई। जब मन भीतर प्रेम समाई ॥
कालिंजर को राय सयाना। वह नारी के रूप भुलाना ॥

दृग सों बिछुरी मूरत, हिदैं आइ समान।
जब हिय बीच समानी, हरिगै चिंता आन ॥

राजै राज काज तज दीन्हा। चिंता वह मूरत की लीन्हा ॥
काहै कहाँ वह चन्द लिलाटी। वरु तेहि आगे है ससि घाटी ॥
कहाँ धनुक भौंहीं वह नारी। बरुनी बान चोख जेइँ मारी ॥
कहवाँ मृग नैनी वह बाला। प्रेमद दीन्ह कीन्ह मतवाला ॥
होतेउँ दरपन ता मुख केरा। मो महँ ता मुख लेत बसेरा ॥

राजकुँअर भा बाउर, छाड़ेउ सुख रस भोग।
परे सकल संसै मों, कालिंजर के लोग ॥

राजकुँअर छाड़ा सुख भोगू। असुखी भए नगर के लोगू ॥
दस संघातिय राजा केरे। रहे सो रहे आठ जस चेरे ॥
परै चिंत मो आठ सँघाती। आठों कहँ दिन भा जस राती ॥
काहु बात सुनवत जी दीन्हा। कोउ कौतुक पर दिष्ट न कीन्हा ॥
रस सुगंध कहँ छाड़ा काहू। आठो परे बहुत दुख माँहू ॥

राजा के अनमन भए, अनमन भा सब कोइ।
माँगहिं सब करतार सों, मोंद कुँअर कहँ होइ ॥

आठों मों मंत्री एक रहा। राजा मानै ताकर करा ॥
बुद्धसेन रह ताको नाऊँ। जन्म भूमि तेहि मनपुर ठाऊँ ॥
तेहि बिनु सात मित्र अवटाहीं। ताहि मिले सातो सुघराहीं ॥
सुख छाड़ा सब राय सयाना। बुद्ध सेन मन संसै माना ॥
कहा कुँअर सो अहो नरेसू। दिवस चार सों कस तोहि भेसू ॥

औरै तन मन देखऊँ, औरै चिंता चाव।
सुख अनंद को छाड़ेऊ, कहौ कुँअर केहि भाव ॥

कहा बुद्ध सों राय सरेखा। रानी एक सपन मैं देखा ॥
पहिल रात अस देखउँ ज्ञानी। दरपन बीच रही वह रानी ॥
दूसर निस बहु दरपन देखेउँ। सब दरपन ता रूप परेखेउँ ॥

सोवत रहिउ नयन के नियरे। जागत आइ समानिउ हियरें ॥
अमल रूप वह नारी केरा। मन हरि लीन्ह कीन्ह मोहिं चेरा ॥
तामुख दुति के आगें, अहै सूर ससि छाँह।
काहु निर्प की है सुता, जेहि देखेउँ निस माँह ॥

सुनि बुद्ध राजा कहँ समुझावा। तोहि सपने महँ कौतुक आवा ॥
सपन रूप पर वा बिसवासू। तज मन चिन्त बढ़ाव हुलासू ॥
कुँअर कहा यह सपन न होई। मोहिं लेखे सैतुक है सोई ॥
दरपन मों दरपन मुख ताको। भा जिउ लाग मुकुर सोभा को ॥
मोहि निर्प वह प्रान पियारी। करै चहत है दरस भिखारी ॥
बिथुरी प्यारी नैन सों, हियरें आइ समान।
हिया हाथ मों कीन्हा, भएउ परान परान ॥

मंत्री मरम कुँअर को पाएउ। गुनी चितेरा एक बोलाएउ ॥
अस गुनवन्त चितेरा रहा। जल पर चित्र बनावे चहा ॥
बुद्ध कहा लिखि आनु चितेरा। सुघर रूप इस्तिरीन केरा ॥
निर्प सपने एक नारिय देखा। रीझा तापर निर्प सरेखा ॥
होइ अहेर फाँद मो आवै। देखे कुँअर बोध मन पावै ॥
बहु नारिन की मूरतें, लिखा चितेरा जाइ।
बुद्ध बाँह सो राजही, सकल देखाएउ आइ ॥

देखि सकल राजैं मुख फेरा। कहा कहाँ वह अरे चितेरा ॥
कहाँ लिखै आवै वह प्यारी। सपने बीच बान जेईं मारी ॥
ताको मूरत को लिखि पारै। दिर्ग बान बरुनी को मारै ॥
अधर तेहिक जो लिखै चितेरा। मीठ होइ लिखनी नहि केरा ॥
सुनि अस बात चितेरा हँसा। कहा प्रेम महिपति मन बसा ॥
कहि बुध साथ चितेरा, गएउ सदन कहँ सोइ।
पहिले प्रेम न गाढ़ा, अंत गाढ़ पुनि होइ ॥

आना बुद्ध मनुष दस ज्ञानी। राजा नियरें कहैं कहानी ॥
रूप बखान करैं बहुतेरा। होइ फिरै मन राजा केरा ॥

राजा के मन बोध न होई। सपन कहानी कहेउ न कोई॥
जा दिग लागेउ जो रँग नीका। नीको वही आन रँग फीका॥
जा मन आइ बसै जो कोई। ता कहँ प्रान पियारा सोई॥
रंचिक ताहि न भावै, कहै कहानी जैत।
परम दवात कहैं जत, दुखद होइ तेहि तेत॥
राजा की फुलवारिव जहाँ। लीन्ह बसेरा तपी एक तहाँ॥
मौन रहा गहि तपिय सयाना। सकत तिहिक सब काहुब जाना॥
रात होत मन मों धरि आसा। गएउ कुँअर तापस के पासा॥
राजा तपी चरन गहि परा। तापस हाथ पीठ पर धरा॥
राजहिं दाया सहित उठावा। मुख सों बहुत असीस सुनावा॥
तपी कहा केहि कारन, आवन भएउ तोहार।
राजैं सपन सुनावा, चाहा सपन बिचार॥
तपी कहा अस पार न मोहीं। सपन बिचार सुनावउँ तोहीं॥
पै तेहि कारन राजा ज्ञानी। सत्त लिहैं एक कंहउँ कहानी॥
होइ सुनत उपजय तेहि हिंयरें। सत्त सनेह होसि तेहि नियरें॥
कुँअर पाय गहि अस्तुति गावा। दरसन पाइ बोध में पावा॥
जो बच भाषै अधर तुम्हारा। उहई ओषध होय हमारा॥
तब ज्ञानी राजा सों, कहा तपी मुसुकात।
सुद्ध स्रव के स्रोता, सुनिए बकता बात॥
है एक देस अगमपुर नाऊँ। मानहुँ सरग बसेउ महि ठाऊँ॥
देस बड़ो आगमपुर आही। राजदीप पुनि कहिये ताही॥
है वह देस सिंधु के पारा। होत धरम नित ताहि मझारा॥
सुभग रूप आगमपुर होई। धरती सरग कहावत सोइ॥
जैत फूल फल पत्रिय चाही। ताँवत आगमपुर मों आही॥
अगम पंथ मों सात बन, और समुद्र अथाह।
होत न कैसेहुँ मग मों, अगुवा बिना निबाह॥
सिंधु पार है आगमपूरू। पारतें नियर वारतें दूरू॥
है आगमपुर जस फुलवारी। तामें फूल पुरुष औ नारी॥

नार पदुमिनी कंचन बरनी। होहिं तहाँ सब मन की हरनी ॥
हरनि होइ जग को मन हरई। बोलत काज सुधा को करई ॥
है इस्सर कर मंडप तहाँ। पूजा होत रात दिन जहाँ ॥

जोगी तपी सनासी, बैरागी तेहि ठावँ।
भोर साँझ निस बासर, जपहिं अलख को नावँ ॥

ऐसे धरम नगर के ठाऊँ। अहै महीपति जगपति नाऊँ ॥
धरति गगन तेहिक जस मानी। इंद्रपुरी सुर कीत बखानी ॥
है धीमान महीपति ज्ञानी। दायावंत सुसील सुबानी ॥
आप धरम देही है राजा। नगर न होत धर्म को काजा ॥
है गज कटक अहै अनकूता। ऊँच भाग को है तेहि बूता ॥

एक हाथ के बल सों, कर समुद्र सों लेत।
एक हाथ सों महीपति, दान जगत को देत ॥

राजै गढ़ नौ खंड बनावा। ऊँच गगन लग ताहि उठावा ॥
पहिल खंड जगमग मनियारा। निस मों दीख चंद उँजियारा ॥
चौथे खंड दीप है भानू। ज्ञान मंद किमि कहों बखानूँ ॥
मंदिर एक अहै तेहि ठांऊ। तीरथ मंदिर मंदिर नांऊ ॥
तासों लोग बहुत फल पावैं। सत्तर सहस नए नित आवैं ॥

मठ के ऊपर ठीक हीं, घड़ियाली घड़ियाल।
निस दिन बैठे साधैं, घड़ी मुहूरत काल ॥

का बरनों सुख मंदिर ठाऊँ। आठ सदन आठों कर नाऊँ ॥
तिन भीतर बइठइ जे कोई। ता कहँ भूख प्यास ना होई ॥
सुंदर नारी रहँइ घनेरी। भँई न कामिन काहु अकेरी ॥
है आनंद नाम एक ज्ञानी। ताकर सब मंदिर दरबानी ॥
बिर्छ एक अस डार पसारा। सब निकेत पर पहुँचे डारा ॥

वह सुख बास महीप को, है उत्तम कइलास।
सुख जीवन तामों मिलै, पूजन मन की आस ॥

बरनों आगमपुर की हाटा। भूलहिं मनुष देखि सै बाटा॥
कतहुँ तमोलिय पान भुलाने। कहुँ पटवा पाटहिं अरुझाने॥
रूप कनक कहुँ गढ़इँ सोनार। कहुँ लोहे की ताव लोहार॥
कहुँ जौहरिये कतहुँ चितेरा। कतहुँ कुँदेरा कतहुँ ठठेरा॥
सब भूले अपने जग धन्धा। का डिठियारू का जो अंधा॥

सब तो अहैं बटाऊ, पै पाएँ सुख भोग।
आपुहिं कोइ न जानत, हैं पंथिक हमलोग॥

पुनि बखान सुनु मन तारा को। बसुधा बीच सुधा जल ताको॥
जो मनतारा सम्बर पीअै। सुख जीवन पावै मन जीअै॥
आबैं नीर भरैं पनिहारी। सुंदर आगमपुर की नारी॥
औउर नदी नीर जस छीरू। मद अस भेद सरोवर नीरू॥
मधु अस मीठ जीउ सर पानी। यह बखान समझै नर ज्ञानी॥

जो मानुष अनुरागबल, अचवै चारों नीर।
निर्मल होइ सरीर तेहि, ब्याध न रहै सरीर॥

पुनि बखान सुनु मत के चेरा। आगमपुर के जोगिन केरा॥
बैरागी सन्यासिय जोगी। साधू संजम तपिय वियोगी॥
कोउ ठाढ़ा है ध्यान लगाएँ। कोउ धरती पर सीस नवाएँ॥
कोउ महिपर माथा धरि रहा। जोग लाग सुख भोग न चहा॥
बहुतन कहँ जगसों सुधि नाहीं। रीझि रहे करता उपराहीं॥

रसना एक न कहि सकों, आगमपुर की बात।
धरम धनी है राजा, सुखी छतीसौ जात॥

रहा महीपति घर उँजियारा। बालक दीपक बिनु अँधियारा॥
जाइं ग्रीस मंडप महँ पूजा। बहुत कीन्ह सँग लीन्ह न दूजा॥
सिव सपने मों दरस देखावा। दरस दान देइ बात सुनावा॥
बालक एकौ लिखा न राजा। देइ न बालक अपचित काजा॥
राछैं कहा पुत्र जो ताहीं। होइ सुता तो मन अनदाहीं॥

आतमजा जो होत एक, होत सदन उँजियार।
कन्यादान दिहे सों, होतै मुकुत हमार॥

कहा महेस काज एक करहू। रतन एक मंडप मों धरहू॥
निसमों राखहु भोरें आएहु। थिर्जे धरेहु जैसो फल पाएहु॥
जैसो इस्सर अशा दीन्हा। तैसो मानि महीपति कीन्हा॥
सिव दाता कहँ बहुत मनावा। तुम करता त्रीलोक बनावा॥
धरती गगन पवन जल आगी। सिर्जेउ सिर्जत बेर न लागी॥

होइ रतन सो कन्या, यह मनसा है मोर।
राज सदन अँधियारो, तासों होइ अँधजोर॥

सिवा अलखसों बिनती कीया। जस है रतन जोत सों दीया।
दीप रतन सम कन्या होई। करइ निकेत अँजोरा सोई॥
भा दयाल दाता तेहि घरी। वोहि रतन कन्या अवतरी॥
भै महेस मंडप उँजियारी। उतरी मनहुँ इंद्रपुर नारी॥
भोर होत राजा चलि आएउ। मंडप बीच चंद्र सम पाएउ॥

परमद सों मंडप मों, पुलकेउ राजा देह।
कन्या कहँ अति आदरें, आनेउ अपने गेह॥

पुन सिवरात होत सपनावा। गौरिहु आपहुँ दरस देखावा॥
कहा धरेउ अवतार सुभाऊँ। रतन जोत कन्या कर नाऊँ॥
मोती एक बँटामों कीजे। जलधिम झार डार तेहि दीजे॥
वह मोती काढ़ै जो राजा। सोई वर कन्या कर छाजा॥
मोती काढ़ न पारै कोई। काढ़े सोई बर जो होई॥

सिव भावित के पाछें, सिवा कहा तेहि ठाउँ।
होत भलो इंद्रावति, वह कन्या को नाउँ॥

राजै दोऊ नाम तेहि राखा। रतन जोत इंद्रावति भाखा॥
रूपम्मा धाई तेहि पाला। लाग चलै महि ऊपर चाला॥
भइ जो सयान भई चितगरी। पढ़ि विद्या भई विद्याधरी॥

लागीं साथ अगमपुर बारी। जोरेउ स्यामा राज दुलारी॥
जगपति मरम सुता कर पावा। कीन्हा परन जो ईस बतावा॥

बूड़े बहुत समुद्र मो, मोती चढ़ेउ न हाथ।
नहिं जानौ को देइ है, सेंदुर ताकी माथ॥

मंडप मों जाते अघ भागे। बरस देवस पर तीरथ लागे॥
जब आगमपुर कहँ मैं गयऊँ। पूजा नित मंडप महँ भयऊँ॥
तति खत भय चहुँ ओर पुकारी। आवत है जगपति की वारी॥
पंथ देउ कोउ रहइ न आगें। जान मँडप कहँ पूजा लागें॥
पंथ छाड़ भा सब कोउ ठाढ़ा। सबके हिये प्रेम रस बाढ़ा॥

पंथ छाड़ सब ठाढ़ भा, नैन भएउ सब देह।
इंद्रावति दरसन नित, सब मन बढ़ेउ सनेह॥

सब मानुष मन प्रीत घनेरी। उपजी इंद्रावति मुख केरी॥
मुकुर बने चाहा सब कोई। जामों आइ परौं मुख सोई॥
सखिन साथ इंद्रावति आई। बरनि न पारौं सुंदरताई॥
रहि न सखी सुंदर जहाँ ताईं। जिउ अस लिहें रतन कहँ आईं॥
देह भईं सब आगम वारी। जीउ रही इंद्रावति प्यारी॥

सखी रहीं अंतर पट, देखा बिरलै कोई।
मंडप बीच गई वह, सब को मति नग खोई॥

रंचिक तेहि देखा जो कोई। कीन्ह बखान आप मों सोई॥
कहुव कहा अहै अपछरा। नहिं चितएउ ऐसें मन हरा॥
कहुव कहा दिष्ट जो देती। मन औ प्रान दोऊ हर लेती॥
रूप गगन जग काया वारी। है जिउ है जिउ है जिउ प्यारी॥
जो वहि मुख को परगट देखा। गूँग भएउ भा बाउर भेखा॥
तेहि अस आपुहिं होइ रहा, रहा न ताहि विवेक।
जातें जानैं एक मैं, औ इंद्राबति एक॥
इंद्रावति घर कीन्ह बहोरा। ससि होइ लै नछत्र चहुँ ओरा॥
आप गई मंदिर कहँ प्यारी। बहुतन को कइ गई भिखारी॥

जो रंचिक ता दरसन पावा । हाथ मलेउ मानेउ पछतावा ॥
कहा सहेलिन बैरिन भईं । वोटै वोट किहें लै गईं ॥
आज आइ वह परगट भई । मिला न दरस गुपुत होइ गई ॥
सुमिरेउँ सिरजनहारहीं, जब देखेउँ असरूप ।
ऐसो रूप सँवारहू, धन्य त्रिविष्टपभूप ॥
है पदुमिनि इंद्रावति प्यारी । ताको बदन रूप फुलवारी ॥
कोमलताइ सुंदरताई । सै रसना सों बरनि न जाई ॥
दिर्गन हरा मान मृग केरा । मन लजाइ बन लीन्ह बसेरा ॥
ना अति लाँब न छोटी आही । है तस इंद्रावति जस चाही ॥
यह बखान का बरनै होई । जो देखा जानहि पइ सोई ॥
कै बखान जोगी कहा, मोहि जानै होराय ।
चंद्र बदन इंद्रावति, तोहि सपनाएउ आय ॥
पहिले इंद्रावति सुकुमारी । रहिल रतन दरपन मों प्यारी ॥
जब जगमों अवतरी नवेली । ताको दरपन भई सहेली ॥
है वह दीप सिखा उँजियारी । आपन जोत सखिन मों डारी ॥
है वह रतन खान आभा को । जोत सुरूप रूप है ताको ॥
है आनंद बदन वह प्यारी । छवि तापर है लट सटकारी ॥
इंद्रावति है पदुमिनी, रम्भा तुलै न ताहि ।
एक जीभ सों कित मैं, ताकों सकों सराहि ॥
सुनत बखान कलिंजर ईसू । तपिय चरन पर डारेउ सीसू ॥
कहा कुँवर हो सिद्ध सरीरा । ओषद दै काटेउ मन पीरा ॥
सपन बिचारेहु मोर गुसाईं । पीस हरेहु रही जहँ ताईं ॥
जेहि रानी के करहु बखानू । निसचै हरा सोई मन ज्ञानू ॥
तजि कइ राज होब मै जोगी । इंद्रावति पर होउँ बियोगी ॥
हौं मैं चेला तुम गुरू, बिनै करत हौं तोहिं ।
आगम पंथ देखावहु, लै पहुँचावहु वोहिं ॥
तपिय कहा तोहि जोग न छाजा । बैठे राज करीजे राजा ॥
अहै कठिन आगम को बाटा । गहिर समुद्र न थाह न घाटा ॥

औ है गुलिक काढ़िबो गाढ़ा। सिंधु न जानै तट जो ठाढ़ा ॥
है हम कहँ तीरथ बहु करना। कासिय पंथ उपर पग धरना ॥
जाय पयाग करउँ अस्नानों। पुनि महेस को देखेउँ थानों ॥

तपी भेस मैं मानुष, नाम मोर गुरुनाथ।
तब गुरुनाथ कहावउँ, जब आनउँ तप हाथ ॥

कुँवर कहा गुरुनाथ गुसाईं। राज रहा मीठा अवताईं ॥
अब निसचै मैं होब भिखारी। तहाँ चलि जाउँ जहाँ वह प्यारी ॥
जिउ को लोभ कछुहु मोहिं नाहीं। ता नित पैठउँ पावक माहीं ॥
अगुवाई जो कीजे नाथा। तो वह मूल होइ मोहि हाथा ॥
ना तो सुमिरत दया तुम्हारी। जाउँ तहाँ होइ तपसि भिखारी ॥

राज पाट सब छाड़उँ, लेउँ अगम को पंथ।
पंथिक होऊँ अगम को, पहिर जोग को कंथ ॥

जाना तपी तजहि सुख पाटा। हिये सुधान अगम की बाटा ॥
सकल आपनो परगट कीन्हा। देव दिष्टि राजा कहँ दीन्हा ॥
माया रहित कीन्ह मनुसाई। उपवन सों कीन्हा अगुवाई ॥
फुलवारी मों राय सरेखा। पंथ सहित आगमपुर देखा ॥
देखा देश अगमपुर केरा। रीझि रहा राजा भा चेरा ॥

अगम पंथ मन मों बसेउ, भूली दूसर बाट।
हिर्द चिन्त सोउ तरिगा, राज मुकुट औ पाट ॥

तपिय कहा राजा कुछ सूझा। राजा सुनत मरम सब बूझा ॥
कहा भएउ कृपाल गोसाईं। सूझी बाट रही जहाँ ताईं ॥
सूझा इंद्रावती कर देसू। होएउँ निसचै जोगिय भेसू ॥
सुनि गुरनाथ ऋषेश्वर जाना। पंथ अगम राजहिं पहिचाना ॥
गुपुत भएउ पुनि कुँवर न देखा। आएउ मंदिर राय सरेखा ॥

गुरू जानि गुरुनाथहीं, चेला आपुहिं जानि।
आगम जोत धरा चित, मन परान सों मानि ॥

कालिंजर सो भएउ उदासा। भएउ नरक मंदिर-कविलासा ॥
सुंदर कहा कंत कस जीऊ। कस उदास तेहि देखेउँ पीऊ ॥
परेउ सीस ऊपर कछु भारा। ऊदासें है जीउ तुम्हारा ॥
दीन्हा ऊतर सुंदर केरा। सैतुक बीच सपन भा मेरा ॥
सुनेउँ आज मैं तेहिक बखानू। स्रपन देखाइ हरा जेइ ज्ञानू ॥
राजपाट धन भोग सुख, सब तजि साधौं जोग।
जाउँ वोही के देस कहँ, होइ संजोग वियोग ॥
सुनि कै कहा सुंदरी राजा। तुम्हैं भोग तजि जोग न छाजा ॥
सुख संपत सब दीन्हा दाता। मारु न छीर भात मों लाता ॥
कहा रहेउँ अब लग मैं भोगी। अब्र मैं होउँ अगम को जोगी ॥
जोगी होउँ अगमपुर केरा। लेउ जाइ तेहि गलिय बसेरा ॥
भोगै बीच रहउँ जउ भूला। कित मोहिं हाथ चढ़इ वह मूला ॥
तुम कामिनी मत हीनी, भोग सुगावहु मोहि।
प्रेम खींच है मो कहँ, सूझ बूझ नहिं तोहि ॥
राजै राजपाट सुख- तजा। प्रेम आइ मति सों अरबजा ॥
मनमों प्रेम बसेरा लीन्हा। बरबस राजा प्रेमिय कीन्हा ॥
प्रेम अगिन मन मों उदगरी। तासो दारु बुद्धि कर जरी ॥
भार वोही राजा सिर परा। जो नभ औ महि को बल हरा ॥
निब्रर मनुष्र को धन मनुसाई। जो अस भारिय भार उठाई ॥
प्रेम आग के बाढ़े, मेधा भयो मलीन।
सूर किरिन के आगें, है मयंक दुति हीन ॥
रे कलवार आव चलि बेगें। हौं मैं ठाढ़ सिंधुजा नेगें ॥
है निर्मल मद सदन तुम्हारा। मोहि लेखें सज ठाकुर द्वारा ॥
दे मदिरा भर प्याला पीवौं। होइ मतवार काँथरा सीवौं ॥
सो कांथर कांधे पर डारउँ। जोगी होइ जग चाहत मारउँ ॥
होइ जोगि तेहि देसहि जाऊँ। है जेहि देस सुप्रीतम ठाऊँ ॥
मोहिं यह देस न भावत, छन है बरष समान।
अब तेहि देस सिधारउँ, जहाँ रहत वह प्रान ॥

मालिन खंड

जब राजा फुलवारिया आयेउ। तजि पर चिन्ता ध्यान लगायेउ ॥
मालिन सुंदर चेता नाऊँ। आइउ मन फुलवारिय ठाऊँ ॥
भइ सोहैं राजा के ठाढ़ी। मनु समुद्र सों मोतिय काढ़ी ॥
अहो बियोगी भेस भिखारी। इंद्रवति की यह फुलवारी ॥
इहाँ न कोऊ जोगिय आवै। जो आवै तो जीउ गँवावै ॥

कबहूँ कबहूँ आवै, इहाँ पियारिय सोई।
चार दिष्ट होइ जाइही, जाउ जीउ सों खोइ ॥

है मनोरमा जगत कर सोई। है ससि जौं ससि बोलत होई ॥
कुमुक उसीसा लाइ बईठै। मान समेत जगत दिस दीठै ॥
धन के नैन दिष्टि जेहि डारा। सो आतिथ भा भा मतवारा ॥
मुख है फूल कपोल कली है। है छबि औ सोभा बिमली है ॥
फूल अहै पै कलिय समानू। कलिय अहै पै है बिकसानू ॥

है सुकुवार पियारी, है प्यारी सुकुवार।
है फुलवारिय रूप को, अहै रूप फुलवार ॥

राजा कुँवर कहा सुनु प्यारी। आयेउँ भली लाग फुलवारी ॥
जग में मरन हुतें का डरऊँ। एक दिन मरों छार होइ परऊँ ॥
जो इंद्रावति के दोउ नयना। प्रान लेत हैं करि कै सयना ॥
तो मोहिं सोच जीउ कर नाहीं। होइ सुधा तेहि अधरन माहीं ॥
बहुर प्रान देई मोहि सोई। नित जीवन पुन मरन न होई ॥

दरस देखि जो जिय तजौं, यातैं भलो न और।
एहि कारन मैं लीन्हेंउँ, मन फुलवारी ठौर ॥

अहो यह नित बरजेउँ जोगी। जिय न तजहु पै होहु बियोगी ॥
जोग तोर औ गुरू तुम्हारा। जाइहि भूल जासि ठग मारा ॥
जाकि चितवन भए बेहाथा। नाथ मुछंदर गोरखनाथा ॥
तेहि देखत सुधि भूलै तोही। भूलै जोग बसै मन वोही ॥
निंदा नौके फेर भुलाहू। सौके देस न बेगहि जाहू ॥

अबहिं अहसि सरेखा, जहँ चाहसि तहँ जासि।
नाँ तो दरसन पाइकै, सुधि गँवाइ बौरासि ॥

ससि कारन तुस लायहु फाँदू। फाँदे बीच न आवइ चाँदू ॥
जीउ चलाउ जहाँ लग हाथा। गगन चढ़ावइ चाहसि माथा ॥
पट बाहर जेइँ पाव पसारा। जाड़ा कठिन अंत तेहि मारा ॥
जो पंखी बित बाहर धावा। सो निदान महि ऊपर आवा ॥
अपने जोग ठाव जेइँ लीन्हा। सब कोऊ तेहि आदर कीन्हा ॥
सब काहूँ कहँ ठाउँ है, अपने अपने मान।
रानी राजा जोग है, ससि जोगें है मान ॥

हौं मैं ता दरसन नित जोगी। भसम चढ़ाएँ भेस बियोगी ॥
ताको प्रेम गुरू है भेरो। जोग सिखाय कीन्ह मोहि चेरो ॥
जब मन बसी धरेउँ तब जोगू। तजि कै सकल जगत सुख भोगू ॥
वहि उत्तम दरसन के कारन। आएउँ नाँधि मेरु दधि आरन ॥
जा दिन मैं दरसन वह पावउँ। होइ आप आहि हेरवावउँ ॥
दरसन देखै कारनहि, रोम रोम भये नैन।
नींद न आवत निस कहँ, वासर परत न चैन ॥

चैन कहाँ चिन्ता जेहि जीऊ। जीउ दुग्ध भा चिंता धीऊ ॥
जब चिंता तब नींद न आवै। आवै तब जब चिंता जावै ॥
प्रेमी पर चिंता कहँ मारै। मारै मन चाहुत जिय बारै ॥
हेरै प्रीतम मुख नहिं फेरै। कोरें मित्र मित्र कहँ हेरै ॥
रोवै रकत आँस नहिं सोवै। दरसन लाग रात दिन रोवै ॥
सत्तर सिर मन तीस सै, पाँव एक सै जाहि।
प्रेमी को दुख देत सो, प्रेम अरथ यह आहि ॥

हौं जोगी पै उत्तिम भीखा। प्रेम पाइ माँगै मैं सीखा ॥
जहि मन ऊँच उँच भा सोई। जेहि मन नीच नीच सो होई ॥
कहाँ चाँद कहँ रहइ चकोरा। प्रीत लाग चितवत तेहि ओरा ॥
औ अरबिंद रहै जल माहीं। रवि सेवत तेहि जोगें नाहीं ॥
दादुर कँवल सनेह न पावै। बनसों मधुकर तेहि नित धावै ॥

दूर देस दिष्टि सों, है समीप गुन मूर।
बिना नैन औ दिष्ट के, नियरें के है दूर ॥

मालिन कहा बहुत तुम बूझा। प्रेम पंथ उँजियारा सूझा ॥
कवन जात है का है नाऊँ। कहाँ जनम भुम्मी का ठाऊँ ॥
कहा रहेउँ मैं जात चँदेला। अब सम जात धूर सिर मेला ॥
जनम भुम्मि कालिंजर ठाऊँ। राजकुँवर है मेरो नाऊँ ॥
प्रेम तेहिक मोहि चेला कीन्हा। राज छोड़ाय जोग गुन दीन्हा ॥

हौं जोगी तेहि पंथ को, नहिं चाहौं कविलास।
चाहउँ दरसन भिच्छा, राखत हौं नित आस ॥

हो जागी मुख आभा तेरी। साखि देत है राजा केरी ॥
पै तोहि साथ न सेवक कोई। राजा पर विस्वास न होई ॥
औ मोती का ढब हैं गाढ़ा। बूड़े बहुत न काहुअ काढ़ा ॥
भीख मिलन गाढ़ी है जोगी। भाग जो होइ तो होहु सँजोगी ॥
याहू पर बहुतै तुम कीन्हा। तजि सुख भोग जोग दुख लीन्हा ॥

जेहि दरसन के दीप पर, है पतंग संसार।
प्रेम तेहिक तुम लीन्हा, मरै न नाम तोहार ॥

है इंद्रावति बिद्याधरी। बिद्याधरी आप अवतरी ॥
है पदमिनि मृगसावक नैनी। ज्ञानवंत औ कोकिल बैनी ॥
जो काहुअ पर ठारै डीठी। सो जन देइ जगत दिस पीठी ॥
अस रुपवंती सुंदर आहै। बिनु देखें सब ताहि सराहै ॥
खोलै मुख परभात देखावै। खोलै केस साँझ होइ आवै ॥

है तेहि चंद बदन लखि, जगत नयन उँजियार।
गगन सहस लोचन सों, निरखैं तेहिक सिंगार ॥

धन दृग मतवारे पैरारे। चितवन बीच सिंधु जा ढारे ॥
अधरन सों मुसुकान सोहाई। बात कहत सो झरत मिठाई ॥
सखी अहैं दरपन तेहि माहीं। डारा सुंदर मुख परछाहीं ॥

तासों सखी भई छबि धारी। छबि दाता है प्रान पियारी ॥
सै मन अलक बीच हैं बाँधे। लेहि सहस जिउ हत्या काँधे ॥
बहुतन तजि जग धंधा, तप साधा तेहि लाग।
अरुझि रहा मन अलकैं, जिउ मारा अनुराग ॥

है तेहि अंस ताक मो दीया। भा उजियारा मंदिर हीया ॥
सीसा बीच दिया है धरा। मनु सीसा तास निर्मरा ॥
है मंदिर सोगित फुलवारी। अहै सुगंध मालति वह बारी ॥
लेहि रहैं आखिन पर चेरी। अहैं सखी छाया तेहि केरी ॥
दिष्ट न आवत ताकी छाया। मानहुँ जीव धरे है काया ॥
वोहि डोलैं सब डोलैं, थिरैं थिरै सब कोइ।
काया सो जो होत है, सो छाया मों होइ ॥

सात अंतर पट भीतर सोई। रहित न देखत अँचिन्ह कोई ॥
बारह मंदिर मों यह प्यारी। रहत सदा है सेज सँवारी ॥
हीरा सात सात जस तारे। हैं मंदिर भीतर उँजियारे ॥
दुइ सै औ अढ़तालिस करी। लागे रतन पदारथ भरी ॥
है मंदिर मो तेरह द्वारा। नौ द्वारा नित रहत उघारा ॥
बाय तेज जल पिर्थि, मानहुँ कैयक ठाउँ।
बारह मँदिर सँवारा, जगपत जाको नाउँ ॥

आवै जाइ पवन दुइ द्वारें। संगी सोदु न सबद सँवारें ॥
दसईं द्वार खोलत कोई। तब खोलै जग मरमी होई ॥
दस चेरी धन की गुन भरीं। सेवा बीच रहैं नित खरीं ॥
पाँच मँदिर के बाहर रहईं। पाँच मँदिर भीतर गुन गहईं ॥
एक सुध पाँचों सों नित लेईं। सुध चारों चेरिन कहँ देईं ॥
है सरूप वह रानी, रहै सात पट माँह।
सखियन सों वह प्रगटै, अहैं सखी सब छाँह ॥

सुनि इंद्रावति रूप बखानो। राजकुवँर हिदैं रहसानो ॥
कहा लेहिउँ तेहि कारन जोगू। है महिमानस प्रीत वियोगू ॥

भायेउ आवत इहाँ अकेला। गुरु न भयेउँ का राखउँ चेला॥
होउँ अबिध मों होइ मर जीया। तजि जिउ भय पोढ़ा कइ हीया॥
भाग जो होइ जलज निसारउँ। नाँ तो जिउ जिउ कारन वारउँ॥

प्रेम फाँद मों हौं परा, नहिं छूटै की आस।
मिलबो चाहौं प्रान को, अहै न भूख पियास॥

जो चाहत संजोग बियोगी। जो मैं कहउँ सो साधहु जोगी॥
खोटे काज के नियर न जाहू। निरमल कथा होइ जस चाहू॥
पर चिंता तजि सुमिरहु ताको। होइ सो भरता मन आभा को॥
ना रहिये आपा गुन साथाँ। निरमलता आवै जिउ हाथाँ॥
मन जिउतें सुमिरहु वह नाऊँ। बूझहु प्रान मों ताको ठाऊँ॥

दूसर चिंता छाड़ि कै, तापर लावहु ध्यान।
मन फुलवारी मों रहैं, पावहु दरस निदान॥

आपन है नाहीं करु जोगी। पुनि है होसि होसि है भोगी॥
नाहीं होइ नाहिं तैं हेरा। ना तो मिलत नियर तेहि केरा॥
नियर मिलैं तें दरसन होई। जोग भूल है तीनउँ सोई॥
जो मर जिया सो भा मर जीया। मोती लिया दिया भा दीया॥
मरिके जिउ पुनि मीचु न आवै। प्रानपियारी बदन दिखावै॥

छिन अंतरपट होइ रही, फुलवारी के फूल।
देखु रंग प्यारी कर, है रंगन को मूल॥

कहि राजा सों भेद कहानी। गइल जहाँ इंद्रावति रानी॥
मैं ब्याकुल प्यारी तब ताईं। जोगी आइ बसा मन ठाईं॥
बाढ़ेउ प्रीति जोगेस्वर केरी। मन पद परी प्रेम की बेरी॥
कहै कहाँ वह रावल प्यारा। दै दरसन मन हरा हमारा॥
सोइब रहेउ जाय सों भला। जामों मिला दरस निर्मला॥

मिला दरस जेहि सपन मों, तापर वारी जाउँ।
जागब मोहिं बैरी भयेउ, कीन्ह दूर दुइ ठाउँ॥

वोही समै मों मालिनि गई। प्यारी कहँ सुख दाता भई॥
पूँछे लाग परान पियारी। है कस आज काल्ह फुलवारी॥
बीता फागुन और पतिझारा। जो निर्पात कीन्ह कुँज डारा॥
जो पच्छिन को जीउ सतावा। पत्र को झारिके छाँह नसावा॥
सो तो अब न रहेउ जग माहीं। फुलवारी पलुही की नाहीं॥
बदन उघारा है पुहुप, अली भँवहिं उपराहँ।
की समुझत पतिझार कों, अहै छिपी पट माहँ।
चेता नारी उतर निसारी। हो प्यारी फूली फुलवारी॥
मान पाट पर बैठे फूलें। फूल बास मधुकर मन भूलें॥
देइ के उतर कुसुम को हारा। इंद्रावति के गल मों डारा॥
फेरि कहा दिन बहुत न गयेऊ। सपन तुम्हारो सैतुक भयऊ॥
फुलवारी मों है एक जोगी। रानी दरसन लाग वियोगी॥
है कालिंजर महीपति, राजकुँअर है नाउँ।
नाम तिहारो जपत हैं, मन फुलवारी ठाउँ॥
ए रानी का बरनउँ ताही। धूर लपेटा मानिक आही॥
बहुत सरूप अहइ वह तपा। कंथा वीच रतन है छपा॥
होइ हग जिय जो देखनहारी। तो मुख ताको लखै पियारी॥
जावत राजा लच्छन चहीं। है सब हग रतनारी आहीं॥
अर्द्ध चंद सम भाल सोहाई। रेखा तीन दिष्ट मोहिं आई॥
धनुक समाँ है भिकुटी, बरुना चोखी बान।
कीर समा है नासिका, सबद मोर परमान॥
लवर करन को सीर न आहै। राजा सिद्ध होन कस चाहै॥
कुँअर बियोगी उपबन ठाऊँ। निस दिन सुमिरत रानी नाऊँ॥
अहै प्रेम मदिरा मतवारा। जपत साँस मों नाम तुम्हारा॥
लेत न एकउ भूले साँसा। दरसन लाग देह सुख नाँसा॥
जोगी भेस न सकउँ सराही। गोपीचंद्र दूसरो आही॥
होत जियत को भरथरी, ताको चेला होत।
आइ बसा फुलवारी, सुनहु खोलि मनसोत॥

इन्द्रावति सुनि जोगी नाऊँ। जोगिन होइ चहा तेहि ठाऊँ॥
कहा सपन को जोगी प्यारा। होइ वोही मनहरा हमारा॥
सकल आँक तुम आइ सुनावा। सपन तपी लच्छन मैं पावा॥
एक अचंभे आवत हियरें। है न कहूँ कालिंजर नियरें॥
मों सुनरून कहाँ ते पावा। जोगी होइ अगमपुर आवा॥

भेंट न होइ न गुन सुनै, प्रेम कहाँ सो होइ।
कैसे मोहिं कारन भयउ, आगम जोगी सोइ॥

अहो पियारी बूझन तोकाँ। तोर बखान गयउ सुर लोकाँ॥
तहाँ सदा सब निर्जर नारी। चरचा तेरो करइ पियारी॥
धरती पर कालिंजर देसू। सुनि बखान भा जोगी भेसू॥
तैं धन कली समाँ पट माँहीं। सैकी लालप तोहि उपराहीं॥
नहिं जानो कस परत पुकारा। जो परगट मुख होत तुम्हारा॥

तुम धन प्यारी पदुमिनी, सुधा भरे अधरान।
बहुत अमी अधरन पर, दिहेनि सुन्धु मों प्रान॥

हो धन जाको नाम सुनायहु। फुलवारी मों दरसन पायेहु॥
मन औ ज्ञान हरा है सोई। होत भलो जो दरसन होई॥
मैं सकुचाउँ जात फुलवारी। भइउँ नयन सों मों हत्यारी॥
चार दिष्टि काहुब सों होई। जात चेत सों मुरछेइ सोई॥
औ परगट मोहिं चलत न भावै। अब मोहिं लज्या जिउ सकुचावै॥

गयेउ सखी वह सामै, आँखिन रहो न लाज।
अब यह नैन हमारो, प्रायेउ लाज समाज॥

लाज नहीं जेहि आखिन माहीं। है वह पसु है मानुष नाहीं॥
घूँघरू पहिरि लाज यह आही। पगु कहँ धीमे राख बचाही॥
औ धन ऊँची सबद न बोलै। सुनत बिराने को मन डोलै॥
औंधे नैन लाज सों कीजै। औ मुख ऊपर घूँघट लीजै॥
हो प्यारी अब पहिरहु गहना। पुरुष बिराने सों छिप रहना॥

हौं बारी अलबेली, बारी कैसे जाऊँ।
भेंट होइ काहुअ सों, खोर और मग ठाउँ॥

जो जोगी तुम देखै चाहा। जोगहि मिलै जोग सों लाहा॥
परगट तुम्है चलै को कहई। तो पट भलो पवन रथ अहई॥
तेहि पर चढ़ि कै चलिये प्यारी। चारो दिस पट लीजै डारी॥
जोगी साथ न दूसर कोई। है अकेल बारी मों सोई॥
है भिच्छुक तेहि दाया कीजै। उत्तम दरस भिच्छा दीजै॥

दर दिखाइ कै दरसन, आपुहिं लेहु छिपाइ।
अधिक बढ़ै अभिलाख तेहि, दूसर पंथ न जाइ॥

चलहँ चलहुँ निसचै फुलवारी। देखउँ जोगी कहँ मन बारी॥
आज देवस औ रैन बितावउँ। प्रात समै फुलवारी आवउँ॥
जोगी पास अहै मन मोरा। भयेउ सीस पर प्रेम झकोरा॥
होइ गये आपन मन पावउँ। मन पाये आनंद मनावउँ॥
पहिले आपन दरस दिखायेउ। पाछें सों मोहिं जोग सिखायेउ॥

रहिउँ अचेत भुलानी, लाग राग को बान।
प्रेम निबाहौं जो जियउँ, तेहिं ले मरउँ निदान॥

ना ले मरन क नाम पियारी। तोहि मरत मरिहैं बहु नारी॥
जहँ लग हैं नारी रज दीपी। का बिछुरानी काह समीपी॥
तोहि जिय सों जीयत सब कोई। कहु न मरन तो पर लौ होई॥
हैं जहँ लग रजदीपी नारी। जीउ तिन्है है प्रीत तुम्हारी॥
भलो भयेउ जो बाढ़ा प्रेमू। मिलि है प्रीतम होइ है खेमू॥

अति समीप है प्रीतम, अहै न एकौ बाट।
एक पाव दे आप पर, बैठु मिलन के पाट॥

काहे न लेउँ मरन के नाऊँ। मरब एक दिन धरती ठाऊँ॥
केतिको प्रीत जगत महँ होई। देत न साथ मरन महँ कोई॥
जावत जिया जंतु जग रहई। करता बस सबको जिय अहई॥

है समीप वह मित्र हमारा । पै जग धंध दूर मोहिं डारा ॥
काम क्रोध तिस्ना मन माया । ये रिपु कछहु उपाय न पाया ॥

किछु उपाय नहिं आवै, जाते जाहिं नेवारि ।
हैं बैरी मोहि गाढ़े, सकों न यह सब मारि ॥

अहो तुम राजा कर बारी । अरुझि रहिउ सुख बीच पियारी ॥
सुखमों काम क्रोध अधिकाई । तिस्ना मया करइ अगुवाई ॥
चारि पखेरू तोहि तन माहीं । चारों चारा नित उड़ि जाहीं ॥
रेत ग्रीउँ चारों कर प्यारी । मरिकै जियहिं होहिं गुनधारी ॥
मन दरपन ऊपर चित दीजै । नाहीं है सो निर्मल कीजै ॥

माँज सजो मन दरपन, रात देवस चित लाइ ।
स्याम रंग अंतरपट, उठि आगें सों जाइ ॥

बोलब सोइब खाइब थोरा । होइ होइ तौ कारज तोरा ॥
औ चिंहार प्रीतम को लीजै । जो सिखवै सो कारज कीजै ॥
औ निसबासर अकसर रहना । सुमिरन जाप बीच दुख सहना ॥
पै यह मन है सत्रु सयाना । जात न मारा सुख लुबुधाना ॥
मन बरजै कहँ काको करई । मन न मरै बरु पारा मरई ॥

मालिन हिता उपाय दै, गई आपने गेह ।
इंद्रावति कै मानसें, भयउ समस्त सनेह ॥

चलु मन तहाँ जहाँ फुलवारी । तहाँ बसा है दरस भिखारी ॥
मित्रहिं भेंटहु देखहु फूलू । है फुलवारी परमद मूलू ॥
धन सो मानुष धन तेहि भागू । जेहि मधु मिलेउ खेलि कै फागू ॥
जेतो तेहि पतिझार सतावा । तेतो सो बसन्त सुख पावा ॥
धन जग माली सिर्जनहारा । कुल पलुहावत है पतिझारा ॥

भागवंत सो मानुष, है तेहि धन धन हाथ ।
मित्र बदन औ फूल मुख, देखै एकै साथ ॥

फुलवारी खंड

इंद्रावति दिन रात बितावा। भोरहिं सखियन कह हँकरावा॥
भै न बिलंब सखी सब आईं। तारा समा रहीं जहँ ताईं॥
आईं ससि बदनी थोर दीनी। सकल राज दीपी पदुमीनी॥
आईं समुदै कुल की सुता। बहु ब्याहीं बहु अब्याहुता॥
भोर समय वह नषत सहेली। धन मयंक घेरेन अलबेली॥

रानी की सब सहचरीं, आइ जुरीं तेहि पास।
सब अपछरा समाँ रहिं, भवन भयउ कबिलास॥

इंद्रावति सखियन सों कहा। सो दिन गयउ बिछुँ जो दहा॥
जग सों पतिझारी रितु गई। पलोहे बिछुँ नवल रितु भई॥
काल्ह जनायेउ चेता नारी। फूल रही है मन फुलवारी॥
चलहु गवन बारी दिस कीजै। फूल देखि परमद रस लीजै॥
नहिं जानहिं सिर परिहै कैसो। खेलहु होइ खेलना जैसो॥

फुलवारी चाहत है, मन बैरागी मोर।
चलहु देखिये उपवनै, है बसंत रितु थोर॥

थोरा है कुसुमाकर बेला। चलि देखिहु औ खेलहु खेला॥
बीतो बेला छूटा बानू। हाथ न आवै भ.खै परानू॥
सकल समै को भेद छपाना। है हम लोगन ताको जाना॥
मेंटत आ राखत करतारा। जो चाहै है सिरजनहारा॥
समय खरग है काटन हारी। जात चली तेहि भेंटु पियारी॥

मधु मीठो है मधु समाँ, मधु दरसन को लेहु।
हार सरीर ग्रीव को, हार कुसुम को देहु॥

सब काहू धन आज्ञा माना। फुलवारी दिस कीन्ह पयाना॥
इंद्रावति रथ ऊपर चढ़ी। दूनो बढ़ी रूप को बढ़ी॥
चली मानसों ब्राम्हन बारी। बनियाइन नाइन पटहारी॥
चली सोनारिन कंचन बरनी। रजपूती खतरिन मनहरनी॥
लोनी धन हलवाइन भली। अधर मिठाई बाँटत चली॥

चलीं सहेली सुंदरी, इंद्रावति के संग।
गीत बसंती गावतैं, पहिरे दुकुल सुरंग॥
मन फुलवारी मों सब गईं। देखि सुमन को सुमना भईं॥
चेता मालिन भेंटेउ आई। चंद्रबदन देखै दुति पाई॥
सुगँध कुसुम को हार सँवारा। सब सुंदरि के गीउ मों डारा॥
देखि भँवर गन गुंजत तहाँ। एक सखी बोली गन महाँ॥
धन यह मधुकर धन यह फूलैं। किन के ऊपर अलि मन भूलैं॥
जगत मझार सराहिये, भँवर फूल को हेत।
भँवरहिं चिंता फूल की, फुल बास रस देत॥
सुनि सचेत इंद्रावति रानी। बोली सुनिए सखी सयानी॥
जग मों प्रीति बखानहु सोई। जीवन मरन एक सँग होई॥
खोटी प्रीति भँवर की आहै। भँवर आपनो कारज चाहै॥
आइ भँवात बास रस आसा। लै रस तजत फूल को पासा॥
लै रस बास भँवर उड़ि जाई। मरत न जब सुमनस कुम्हिलाई॥
प्रेमी ताको जानिये, देइ मित्र पर प्रान।
मित्र पंथ पर जिउ दिहें, जुग जुग जियै निदान॥
धन जो प्रीतम पर जिउ वारा। सिर पर चला प्रेम का आरा॥
धन जो परा हुतासन माहीं। और सहायक चाहा नाहीं॥
दया दिष्ट प्रीतम तब धरा। पावक फूल भयेउ नहिं जरा॥
धन जो मित्र आपनौ चीन्हा। पुत्र जीउ आगे कै दीन्हा॥
सुवा न कहो जियत है सोई। अलख पंथ जो जूझा होई॥
मित्र जो हैं करतार के, मरत नाहिं हैं सोइ।
एक मंदिर तजि दूसरें, गवनत हैं वै लोइ॥
गायउ गीत एक धन प्यारी। जग है करता की फुलवारी॥
आपुहिं माली आपुहिं फूला। आपुहिं भँवर फूल पर भूला॥
आपुहिं रूपवंत सो होई। प्रेमी होइ रिझत है सोई॥
आपुहिं परगट गुपुत अकेला। गुरू होइ कहुँ कहुँ होइ चेला॥
आपुहिं दाता करता होई। दिष्टा स्रोता बकता सोई॥

सुनि सरवन दै चेत सों, सपन बखाना गीत।
उपजी सब के हिदैं, चतुर सखी की प्रीत॥
एक कहा हो राजदुलारी। हे आनंद ठाउँ फुलवारी॥
खेल एक खेलहु सब कोई। जासों स्वात बीच मुद होई॥
एक कहा आनंद न चहऊ। निस दिन आगम सोचमों रहऊ॥
बहुत अनंद न चाहौं प्यारी। ना तो परै आइ दुख भारी॥
एक कहा चिंता भल नाहीं। तरुनी चिंता सों बिरधाहीं॥
खेलि लेहु नइहर मों, सब मिलि परमद खेल।
पुनि नइहर के छाड़तैं, सासुर होब अकेल॥
हम अशात न सासुर चीन्हा। यह नइहर ऊपर चित दीन्हा॥
है जग जीवन खेल समानू। ऊमर नहीं है मरन निदानू॥
हम कहँ पार मीचु सों नाहीं। निसरि गगन महि तट ते जाहीं॥
जानत मरम हमारो सोई। जाको सुमिरत है सब कोई॥
मूरत अलख नहीं जग ठाऊँ। हम तुम राखा है तेहि नाउँ॥
यह मूरत को तजि कै, चित्त अमूरत देहु।
जाहि अमूरत ध्यान सों, स्वर्ग लोक फल लेहु॥
राजकुँअर फुलवारी माहीं। धन को आवन बूझा नाहीं॥
चातुर चेता के चतुराई। सब काहू सों बात जनाई॥
है फुलवारी मों एक जोगी। है काहू को प्रेम बियोगी॥
है यह ठौर वहुत दिन सेतीं। नहिं जानउ बाउर केहि नेतीं॥
सुनि के सखिन कहा चलु रानी। देखैं हैं कल जोगिय ध्यानी॥
बात सुधानी सखिन कहँ, चली सखिन के संग।
एक एक सब काहू, लीन्हे फूल सुरंग॥
बरजा एक अगम की नारी। तुम सुरूप राजा की बारी॥
अलबेली लागहु भल देखें। तुम तिय जिय अस जिय के लेखें॥
हसितैं बारी बिना बियाही। जोगी देखै तोहिं न चाही॥
लागहु तपी नयन मो मीठी। यह जिनि होइ लगै तोहि डीठी॥
नहिं जानहिं जोगी कस अहई। आपन कया केहि नित दहई॥

देखहु मन फुलवारी, जाहु न तपी समीप।
होत पतंग तपी वह, देखि बदन को दीप॥
जब यह बात सखी वह कही। सुनि मलीन रानी होइ रही॥
औरन कहा चलहु वहि बोरा। जग करता है रच्छक तोरा॥
रच्छक आप अलख है जाको। एकहु बार न वाकै ताको॥
पै अबहीं देखहु फुलवारी। फेर चलेहु जेहि ओर भिखारी॥
सुखी भई यह बात सयानी। लीन्ह सुरंग फूल एक रानी॥
देखत रहिंगै रानी, लीन्हे फूल को हाथ।
एक सखी हँसि बोली, इंद्रावति के साथ॥
हँसि कै मालिन को गुन गावा। धन चेता अस फूल लगावा॥
उतर दीन्ह सुनि चेता रानी। मोहि न सराहौ अहो पियारी॥
सुमिरहु तेहि जो है सुख दाता। जे यह फूल कीन्ह रँग राता॥
जो हमार दोउ हाथ बनावा। जेहि करतें मैं फूल लगावा॥
जग मों जावत है सब बना। तावत करता को दरपना॥
दीठ होइ तो देखऊ, तन आदरस मझार।
बदन विराजत है तेहिक, जेहिक सकल संसार॥
है वह एक जगत उपराजा। जो दोइ होत बनत नहिं काजा॥
धरती गगन सँवारा सोई। तासों जोत अउर तम होई॥
करता तीन अउर दुइ नाहीं। एकै है दोऊ जग माहीं॥
जो किछु करत न पूछा जाई। पूछा जाइ जनम जेइ पाई॥
कीन्हा निस दिन औ रवि चंदा। तेहि सुमिरन मों सबहि अनंदा॥
रात दिवस दुइ चिन्ह है, रात मिटत दिन होइ।
याही सों लेखा बरस, जानत है सब कोइ॥
इंद्रावति धन कमल सुबासा। आइ भँवर गूँजे चहुँ पासा॥
कहा सखिन सों डर जिउ पावै। भँवरन मों तन डंक लगावै॥
कहेन सखिन तुम कमल पियारी। लेत भँवर हैं बास तुम्हारी॥
मोहें बास पाइ कै तेरी। कहाँ तिन्हें सुधि बिन्धै केरी॥
फूल भँवर होइ आइ भँवाहीं। तोहि ऊपर तो अचरज नाहीं॥

भँवर बास के कारने, चहुँ दिस आइ भँवाहिं।
पोढ़ा मजकरु रानियाँ, बिन्धै की डर नाहिं ॥
जहँ लग सुंदर रहीं सयानी। फुलवारी देखें रहसानी ॥
कहा एक आगम की बारी। धन नइहर जामों फुलवारी ॥
फुलवारी औ फूल बिलोकैं। बहुत अनंद बढ़ी है मोकैं ॥
फेर न देखब अस फुलवारी। जब गवनै जाबै ससुरारी ॥
परै सीस पर भारी भारा। कैसे राखिहि कन्त हमारा ॥
नइहर अहै पियारा चक चूहट जिय होइ।
सुमिरि गवन सासुर को, दूर परै सब कोइ ॥
सुनि इंद्रावति सासुर नाऊँ। मन मों सोच कीन्ह तेहि ठाऊँ ॥
कहा जाब निश्चय ससुरारी। नइहर तजब तजब फुलवारी ॥
छूटि परैं सब सखी सहेली। जाबै सासुर अन्त अकेली ॥
अहो सखी आगम मोहि सूझा। सासुर गवन आजु मैं बूझा ॥
अस फुलवारी पाउब कहाँ। सासुर नगरी होइह जहाँ ॥
तुम्हें समाँ कित पाऊँ, एक बैस की नार।
नइहर खेल ना पाइब, जब जाबै ससुरार ॥
समुझा सखिन सोच मों रानी। बोलीं सरब बोध की बानी ॥
अहो पियारी सोच न करहू। जेहि प्रीतम प्यारे संग परहू ॥
ठाउं देइ सुख मन्दिर प्यारी। लाइ देखावहि तोहि फुलवारी ॥
देइहै बहुत हमैं अस चेरी। करइ रात दिन सेवा तेरी ॥
प्रीतम जिउ सम राखै तोही। तोहि संग खेलैं खेलइ वोही ॥
अस दुख देइहै सासुरे, तोहि कामिन कहँ सोइ।
वैसो सुख नइहर मों, मिला न कबहूँ होइ ॥
इंद्रावति फिर बात निसारा। तो सुख देइहै कंत हमारा ॥
जो नइहर मों जोरब नेहाँ। होबै एक जीउ दुइ देहाँ ॥
चलब मान तजि सूधी चाला। तो सासुर अँचउब सुख हाला ॥
रहबै सत्त सनेह सम्हारें। काम क्रोध त्रिसना कहँ मारें ॥
राखब प्रीत सिखब गुन नीका। सुमिरन करब पियारे पीका ॥

तो पाइब सासुर सुख, प्रीतम होइह साथ।
सुख अनन्द नित मानब, पिया पियारे साथ॥
धन की करनी जोखइ पीऊ। एहि समुझ डर मानत जीऊ॥
जाकर भारी होइहै तूला। सुख मंदिर द्वारा तेहि खूला॥
जेहि हलुका होइँहै दुख सहई। औ दुख अगिन मँदिर मों रहई॥
करनी सिखा जान सब कोई। दाहिन सो पायें भल होई॥
देहिं लिखा बाएँ सों जाकों। बहुत कलेस परै सिर ताकों॥
करनी सेतीं छोट बड़, सब किछु पूछैं जाहिं।
सतवंती गुनवंत पर, डर एकों कछु नाहिं॥
सखी एक आँसू कहँ ढारा। पूछेन कहाँ परान तुम्हारा॥
कहा गवन को दिन मैं बूझा। संकट दुख ता दिन को सूझा॥
जब सासुर गवने मैं जाऊँ। देहिं संकेत मँदिर मोहिं ठाऊँ॥
दुइ जन पूछहि को पिय तेरा। को है जासों मगु तैं हेरा॥
पूछहिं कवन पंथ तैं लीन्हा। डरे सों उत्तर जाइ न दीन्हा॥
उत्तर देउँ तो बाचऊँ, ना तो मारी जाउँ।
यही बूझि मैं रोई, कैसे होइ वह ठाउँ॥
रानी कहा रहइ जिउ कहाँ। पूछहि जादिन गवन घर महाँ॥
एक कहा यह जीउ पियारा। तापल रहइ सरीर मझारा॥
एक कहा जिउ पूछा जाइहि। पूछे बीच न काया आइहि॥
एक कहा दुइ बात न अहई। का पर कया बीच जिउ रहई॥
एक कहा कछु लइ तन कहना। कहना सों लहना चुप रहना॥
गवन मँदिर मों सुख दुख, डर सों टूटै हाड़।
अहै सरग फुलवारी, अहै नरक को गाड़॥
बोल उठी एक सुंदर नारी। रहत फूल नित झरत न प्यारी॥
रंग सलोन फूल झरि जाई। चक चूहट उपजत अधिकाई॥
सुमन सुबरन सुगन्ध सोहाहीं। अंत झरे माटिन मिलि जाहीं॥
उतर निसारा बूझन हारी। नित जो एकै रहत पियारी॥
जग माली गुन रहत छिपाना। बहुत बरन गुन जात न जाना॥

यह जग है फुलवारी, माली सिरजन हार।
एक एक सों सुंदर, लावत ताहि मझार॥
जीरन यह जगती हम पाई। नितु एक आवै नितु एक जाई॥
केतिक बरन के फूलन फूले। केतिक की लालय मन भूले॥
केतिकन रुपवंत अवतरे। केतिकन विरह आग सों जरे॥
केतिकन भईंन सलोनी नारी। केतिकन तिन पर भयेन भिखारी॥
केतिकन विद्यावंती भयऊ। केतिकन धनी बली होइ गयऊ॥
अब हेरें नहिं पाइये, तेन सरीर को चीन्ह।
केतिक रतन पदारथ, मीचु चोर हरि लीन्ह॥
हम हूँ चलब अवध के पूजें। फेर न जग मों आइब दूजें॥
फूल देखि का झँखहु पियारी। हम तुम सबकी आइहिं पारी॥
एक कहा वैरागिन होहू। अहै मरन हम कहँ औ तोहू॥
होइकै बैरागिन तप करहू। जासों सरग सदन मँह परहू॥
कहकी भेस न फेरै चाही। फेरें भेस भलो नहिं आही॥
पिय की सेवा नित करहु, रहहु सम्हारे नेह।
याते दाता देइहै। आगम दिन सुख गेह॥
कहेन बहुत अब आगम सूझा। परमारथ सब काहुअ बूझा॥
अब रानी चलि देखहु जोगी। कैसे राखत भेष बियोगी॥
चंद्र नखत सँग पाँव उठायउ। जाइ चकोरहिं दरस देखायउ॥
सकल सखिन कहँ जोगी भेषा। जिउ दरवन पायउ जिउ देषा॥
इंद्रावति औ सखिय सयानीं। जोगी रूप बिलोकि लोभानीं॥
मन लोचन मों चंद दिस, रहिगा चितै चकोर।
चंद बिलोकत रहि गयउ, निज चकोर की ओर॥
जब लग नैन चार रहु चारी। राजकुँवर कहँ ठग अस मारी॥
दामिन चमक चाह अधिकाई। हुअऊ चितै रहे चित लाई॥
बहेउ पवन लट पर अनुरागें। लट छितिरान पवन के लागें॥
परी बदन पर लट सटकारी। तपी देवस भा निस अँधियारी॥
मोहि परा दरसन कर चेरा। हना बान धन आखिन केरा॥

प्रेम पंथ को पंथिक, पहरें जोग दुकूल।
परी साँझ तेहि मगुमों, गएउ बाट सो भूल॥
हा हा सखिन कहा पछिताई। काहें तपी परा मुरझाई॥
नहिं मुरछा मुख देखि सयाना। लट परतहिं मुख पर मुरुछाना॥
एक कहा लट सों मुख सोभा। होत अधिक लखि मुरछा लोभा॥
एक कहा लट नागिन कारी। डसा गरल सों गिरा भिखारी॥
एक कहा लट जामिनि होई। रात जानि जोगी गा सोई॥
एक कहा निसि जानि के, तपीं गयउ जो सोइ।
का जोगी के जोग सों, तप पुरषारथ होइ॥
जोगी सो जो जागै रयना। मन पर धरै ध्यान को नयना॥
ध्यान समेत रयन जो जागै। ताको हाथ मनोरथ लागै॥
पहरू जागत ध्यान न लावा। यातें तेहि कछु हाथ न आवा॥
मन जागै तब जागब नीको। चित फिरि आवै धरती जीको॥
एकै बार न जागै कोई। थोरे दिन मों बाउर होई॥
जाके मन औ नैन मों, दरसन रहा समाइ।
ताको नींद कहाँ परै, चिन्ता आवै जाइ॥
बोली एक सहचरी सयानी। जब मुख ऊपर लट छितिरानी॥
यह मुख यह तिल यह लटकारी। ये तो कहि कै गिरा भिखारी॥
नहिं जानहि आगें कस कहते। चेत समेत तपी जो रहते॥
आवहु आगें अरथ लगावैं। सब कोउ अरथ पंथ पर ध्यावैं॥
सुनि सब सखी चेत दउड़ावा। जोगी हु तें समस्या पावा॥
एक कहा मुख लट तिल, मुकुर फाँद है चार।
जग मनसूबा फँदै कहँ, है एतो उपकार॥
आपुहिं देखि मुकुर मों भूलैं। दूसर सुआ जानि मन फूलैं॥
दूसर देखि देखि कै चारा। कहैं तुरत यह फाँद मझारा॥
एक कहा मुख तिल लटकारी। संबुल भँवर अहै फुलवारी॥
एक कहा मुख ससिहि लजावा। लट जोगी को मन अरुझावा॥
तिल इंद्रावति मुख पर सोहै। तिल नाहीं जासों जग मोहै॥

इंद्रावति दृग लिखत कै, भा विरंच मतवार।
मसि लागउ लेखनी गिरेउ, सोभा भै अधिकार॥
एक कहा का कोउ सराहै। रूप गरन्थ रानि मुख आहै॥
तिल है सुन्न गरन्थ मझारा। लट स्यामल सोहत मसिधारा॥
सबन बखाना जो जस बूझा। इन्द्रावति कहँ आगम सूझा॥
कहा तपी अस कहतें आगे। गरब न करु सुन्दर डर त्यागे॥
यह मुख यह तिल यह लटकारी। अंत होइ एक दिन सब छारी॥
कहेन सखी सब आपमों, धन इन्द्रावति बूझ।
धन अधीनता धन वचन, धन धन धन धन सूझ॥
दाया सखी गुलाब मँगायउ। छिरिकि कुँअर कहँ बहुत जगायउ॥
सोइ गये अधिको नहिं जागा। वह गुलाब सीतल तेहि लागा॥
एक कहा यह भा मतवारा। धन के नैन बारुनी ढारा॥
सखिन कहा धो प्रान पियारी। मारेहु चखुसर गिरा भिखारी॥
फिर जिउ जो जोगी यह पावै। तोहि तजि औरहि ध्यान न लावै॥
सखिन न जानहि जागी, है बाउर तेहि लाग।
तजा राज कालिंजर, लीन्ह जोग बैराग॥
आह आह मैं आपन मारा। काहे बूझहु दोष हमारा॥
कहेन दोष नाहीं धन तेरा। दोष तुम्हारी आखिन केरा॥
जेहि चितवैं तेहि मारहिं बानू। सुमिरि सुमिरि तोहि देइ परानू॥
फेर सखी सब बात सम्हारा। दोष नैन नहिं दोष तुम्हारा॥
रूप दरब मुख तोर पियारी। अम्बुक जमल करहिं रखवारी॥
चाहा लेइ तपी दृग, दोइ के चोर समान।
नैन तुम्हारें तस करैं, मारा बरुनी बान॥
कर तसकर को काटा चाही। जीउ न मार दोष धन आही॥
हैं हत्यारें नयन यह तेरे। खंजन मिर्ग अहैं दोउ चेरे॥
अहै नयन सों उत्तम कानू। तासों बात सुना यह आनू॥
यह नित जो दोऊ जग कीन्हा। रसना एक करन दुइ दीन्हा॥
की कहु एक बात मति सानी। सुनि दुइ बात आन सों रानी॥

बहुतन को संसार मों, जो सिर्जा दिन रैन।
छाप दीन मन ऊपर, औ सरवन पट नैन ॥
मसि औ पत्र सखी एक आनी। जीउ कहानी लिखा सयानी ॥
बहुरि लिखा हो जोगी भेषा। जोग तोर इंद्रावति देषा ॥
ताको दरसन पाय भिखारी। मुरछानेउ नहिं सकेउ सम्हारी ॥
अबहीं तेरो जोग न पूजा। जोग छोड़ि करु काज न दूजा ॥
लिखा सोधान सखिन के हियरें। चलीं राखि राजा के नियरें ॥
जीउ कहानी लिख कै, राखि चलीं तेहि पास।
छोड़ तपी को आईं, जहाँ सदन सुख बास ॥
जब राजा जागा सुधि पावा। जागि चहूँ दिस दिष्ट लगावा ॥
पत्र उठाइ बिलोकेउ ज्ञानी। पढा सँपूरन जीउ कहानी ॥
जब बाँचा इन्द्रावति नाऊँ। झंखा बहुत अपन मन ठाऊँ ॥
उपजी प्रेम भाव उर दाहा। बहुतै पछताना कहि हा हा ॥
सो रानी आई मोहिं आगे। पहिरेउँ यह कंथा जेहि लागे ॥
मोहिं लेखें एक पल भर, उपबन भएउ बहार।
अब देखेउँ फुलवारी, आइ बसेउ पतझार ॥
कहाँ गई वह प्रान पियारी। जेहि कारन मैं भयउँ भिखारी ॥
कहाँ गई वह दीप सिखा सी। जाको सै रम्भा सी दासी ॥
दिष्ट परी तनु पुनि का भई। देखि न परी परी सम गई ॥
रे जिउ कमल सुगंधित अंगू। गयेउ न लागेउ अलि होइ संगू ॥
गौरी वह गौरी सम गोरी। नैन नैन सों स्यामा जोरी ॥
गहा धिर्ज मन भीतर, लिहें मिलन की आस।
भा कालिंजर राजन, बिप्र योग को दास ॥

नहान खंड

इंद्रावति मन प्रेम पियारा। पहुँचा आइ तीज तेवहारा ॥
रहिल जहाँ इंद्रावति प्यारी। आइन राजदीप की बारी ॥

होइ कष्ट मन रहा समाना। पै आनन्द सखी नित माना ॥
कहेनि सहेलिन है डर मानू। मन तारा चलि करहिं नहानू ॥
रतन हितू जन के बस भई। सखिन साथ मन तारा गई ॥

केस सुगंधित खोलि कै, राखि चीर सब तीर।
पहिरि नहान दुकुल सकल, कीन्हा सजल सरीर ॥

अब जूरा इंद्रावति छोरा। भयउ घटा मों चाँद अँजोरा ॥
पैठिहु जब जल भीतर रानी। पानिय पायउ तारा पानी ॥
झुलना झूलेहु करत नहानू। लहकि चहेउ चुम्बै अधिरानू ॥
लखि नथ मोती की अमलाई। सुक्र छपाना आप लजाई ॥
मनु तारा भा गगन समानू। भयेउ मयंक समाँ वर प्रानू ॥

सुरज उआ आकासही, चंद उआ जल माँह।
कुमुद तामरस फूले, दोउ मित्र के पाँह ॥

कहा रतन सों एक सहेली। बरनि न पारों तोहिं अलबेली ॥
केस कस्तुरी हिंदैं फाँदू। अहै लिलाट अँजोरा चाँदू ॥
अहै भिकुटी धनुक समानू। है बरुरी जिसनू कै बानू ॥
नैन सलोन जगत मन हरा। करन सीप मोती सों भरा ॥
नासिक मनहुँ कीर बैठो है। बरुक अकार कला निधि कौ है ॥

चिबुक कूप को पानी, चाहत कीर घरान।
फूल गुलाब कपोल है, तिल है भँवर समान ॥

सीरन लाल अधर रतनारा। दसन पाँत मोती को हारा ॥
मन मेरो लालहि चित धरा। जाइ चिबुक गाड़ा मों परा ॥
रेखा एक ग्रीउँ मों सोहै। का बरनों सोभा मन मोहै ॥
निर्मल बदन आरसी छाजै। गल कंचन को डाढ़ी राजै ॥
अमल कनक सों भुजा बनावा। सुन्दर हाथ कमल मन भावा ॥

यह सामै हो रानी, जल औ मुख रवि तोर।
पाइ होऊ कर वारिज, बिकस चलैं मुख वोर ॥

उरज बीर दुइ मनमथ कोहैं। छबि उपवन दुइ श्रीफल सोहैं ॥

नाहीं नाहीं चुप यह जानहु। बंटा जमल जोत के मानहु ॥
का बरनो रोमावलि हेरी। सेल्है मदन बाहनी केरी ॥
पातर लंक केस की नाईं। नाहीं सों सिरजा जग साईं ॥
जंघ चरन सो आचम्भो है। रम्भा खम्भ कमल पर सोहै ॥

मानहु खम्भा रूप के, जुगल जंघ है तोर।
चरन बखान न कै सकों, नित परसै चित मोर ॥

सुंदरता को लच्छन जेते। प्यारी चेरे तेरे तेते ॥
लट कुंतल अति स्यामल आहै। भौंह स्याम जेहि इन्द्र सराहै ॥
स्याम अधिक लोचन सँवराई। स्यामल बरुनी जिश्नु डेराई ॥
ललित अधर औ रसना तोरे। अँगुली सीस ललित रंग बोरे ॥
ललित कपोल गुलाब लजाहीं। जग मन मधुकर समाँ लोभाहीं ॥

तरवा और हथोरी, आनन रसना छोट।
गल कुंतल दिर्ग लाँब है, बानन मिलै न वोट ॥

दसन सेत औ नैन सेताई। अधिक सेत कछु बरनि न जाई ॥
गोल सीस औ बदन तुम्हारा। गल एड़ी बिधि गोल सँवारा ॥
ऊँच नासिका ऊँची भौंहैं। बरुनी ऊँच बात सम सौहैं ॥
करन छिद्र पायउ सकराई। साँकर नासिक छिद्र सोहाई ॥
आहै साँकरि नाभ तुम्हारी। तोहि बिधि सौंपैं सानि सँवारी ॥

एतो सुघराई पर, रंचिक गरब न तोहिं।
सुंदर सील तेहारो, लागत नीको मोहिं ॥

निज बखान इन्द्रावति पाएँ। रही लजाइ सीस औंधाएँ ॥
कहा बखान करहु का मेरा। है मनाक जीवन जग केरा ॥
का अभिमान देह पर करऊँ। एक दिन होइ छार होइ परऊँ ॥
गरब सखी सब ताकहँ छाजा। जो त्रैलोक बीच है राजा ॥
जे निधनी को संग न चाहा। धयेउ न तेन्है अगम सों लाहा ॥

परगट रंग देह को, देखि न गरबै कोइ।
आवै एक देवस अस, छार कलेवर होइ ॥

बोलिन राजदीप की नारी। आवहु जलमों रचैं धमारी ॥
जब लग सीस पिता को छाहाँ। खेलहिं कोउ करहिं जगमाहाँ ॥
जब चल जाहिं कंत के देसू। कैसो कैसो सहैं कलेसू ॥
नइहर देस कहाँ फिर आवन। कहँ यह पंथ चलै यह पावन ॥
सो गुन एकउ हाथ न आया। जासों होई प्रीतम दाया ॥
जानों नहिं पिय प्यारा, राखे कौनै मान।
एकौ गुन नहिं सीखा, हम बाउर अज्ञान ॥

रानी कहा भेद अब कहना। केहि गुन होइ कंत सों लहना ॥
एक कहा सेवा नित कीन्हेउ। चित मूरत सम पिय पर दीन्हेउ ॥
एक कहा लहना तब होई। पिय जो कहै करै धन सोई ॥
एक कहा नित करत सिंगारा। चाहै धन कहँ कंत पियारा ॥
एक कहा जो सूघर होई। पावै लाभ कंत सों सोई ॥
इंद्रावति प्यारी कहेउ, ताकहँ चाहै पीउ।
जो पिय की सेवा किहैं, गरब न राखै जीउ ॥

समुझ बन्दमों प्रीतम प्यारा। इंद्रावति अम्बुक जल ढारा ॥
नहिं जानो केहि भाँते सोई। दिन औ रात बितावत होई ॥
अरे जीउ दाया तोहि नाहीं। तेरो जीउ परेउ बँद माहीं ॥
जलमों रानी ठाढ तवानी। सखिन साँत रसमों पहिचानी ॥
पूँछै आगमपुर की बारी। सजल नयन केहि लाग पियारी ॥
आन अनंद देवस है, अहै तीज तेवहार।
केहि कारन चिन्ता मों, प्यारी जीउ तोहार ॥

सकल सखिन सो मरम छिपावा। आनहिं भाँति कि बात सुनावा ॥
वह दिन समुझ सखी मैं रोई। जा दिन नइहर बिछुरन होई ॥
वह दिन समुझ सखी मैं रोई। जा दिन नइहर बिछुरन होई ॥
बिछुरहु तुम सब सखी सहेली। सब अलबेलि रूप अलबेली ॥
मिलैं कहाँ तुम समाँ पियारी। कहाँ अलिबेल कहाँ फुलवारी ॥
रहै न सासुर आदर मोरा। सासुर लोग करै नक तोरा ॥

सो दिन समुझि परै सों, जल महँ ठाढ तवाऊँ।
नहिं जानों कस होइ है, हम कहँ सासुर ठाउँ॥
रंग न फीको करिये जी को। पी को संग पियारी नीको॥
तब लग नइहर देस पियारा। जब लग मूरखता को पारा॥
जब हीं खुलैं सेमुखी नैना। सासुर सोच बढ़ै दिन रैना॥
सासुर देस मिलै सब प्यारी। हितू तड़ाग राग फुलवारी॥
पीउ अनन्द मूल जब पावा। सब सुख राज हाथ मों आवा॥
तुम का आपुहि को डरहु, है हमहूँ कहँ त्रास।
पै सासुर कविलास है, रहें जो प्रीतम पास॥
खेलै लागिन तारा माहाँ। कोउ धरि काँध कोऊ धरि बाहाँ॥
सुन्दरता सागर वह नारी। मन तारा मौं रचा धमारी॥
लै जल मुख कै ऊपर मारैं। नरम कलोल देहि जब हारैं॥
रानी साथ कहा एक नारी। गहिरें पाँव न धरहु पियारी॥
जो गहिरें पग राँखइ कोई। नीर सीस तें ऊपर होई॥
गहिर बहुत है आगें, डूबि मरै जनि कोई।
ना तो खेल कोउ मो, महा महा दुख होइ॥
सुनि यह बात सखी एक रोई। आँसु गुलिक जल ऊपर वोई॥
पूछैं और आँसु कस ढारे। खेल के बीच अनन्द नेवारे॥
उतर दीन्ह सासुर मगु ठाऊँ। है सागर भौ सागर नाऊँ॥
होइ है जा दिन गवन हमारा। नहिं जानौं किम उतरउँ पारा॥
यह नइहर तारा है जाना। जेहि आगे पगु धरत डेराना॥
वह न जान कस होइ है, गहिर गम्हीर अथाह।
इहै समुझि मैं रोइउँ, केहि बिधि होइ निबाह॥
सुनि सब राज दीप की बारी। तजि आनंद समुझा ससुरारी॥
आगम सोच कीन्ह सब कोई। सासुर पंथ बीच कम होई॥
बोलिन फेर सोच यह काहै। प्रीतम दाया पंथ निबाहै॥
होइ जलधि तो सेवक लेई। धन कहँ जलधि पार कै देही॥
जा संग ब्याह होत जग माहाँ। पंथ निबाहत सो धरि बाहाँ॥

जनम सँघाती होत सो, जाके संग बियाह।
जैस परै तस अंगवै, धन को करै निबाह ॥

कै नहान सब बाहर आईं। निर्मल अंग परी की नाईं ॥
लटकी लट इंद्रावति केरी। दोऊ दिस तें मुख कहँ घेरी ॥
मुख लट सों सोहै वह रामा। एक चंद्रमा दूइ त्रिजामा ॥
लट कपोल पर सोहै कैसें। बैठा नाग बित्त पर जैसें ॥
सोन बिनावट दुकुल रँगीला। कीन्हा अंग सो परगट लीला ॥

कै नहान घर कहँ चली, वै सब कनक सरीर।
उनकी निर्मलताइ सों, भा निर्मल मन नीर ॥

मन तारा केती रहिं रानी। दिउरी एक देखि विथकानी ॥
प्रान बाटिका की वह स्यामा। पूछा कवन सती यह ठामा ॥
सखियन कहा सती यह ठाखँ। रानी कहा सती है नाऊँ ॥
तब की बात हमैं सुनि परी। अपने कंत लाग धन जरी ॥
जस तोहार तस ता गल नीका। खात तमोल देखावै पीका ॥

अब धन जरिकै छार भै, रहे न एकौ चीन्ह।
दिउरी साखी करत है, अगिन छार तेहि कीन्ह ॥

इंद्रावति करुना मैं रोई। एक दिन छार होइ सब कोई ॥
दिउरी के समीप होइ कहेऊ। हहुँ कैसो यह रानी रहेऊ ॥
हहुँ कस रहा चरन औ हाथा। कैसौ रहा ग्रीउ औ माथा ॥
कहाँ गई धन मिलै न हेरैं। है ता जिउ दिउरी के नेरैं ॥
हहुँ कस रही चाल नारी की। दयावन्ति की मानिनि जी की ॥

मन तेवान के ठाढ़ी, रही घरी भर आप।
हिर्दै साँत रस डूबा, बुझि जगत कहँ स्वाप ॥

इंद्रावति जब ध्यान लगावा। सबद एक एक दिस ते आवा ॥
मैं का रहिउ रहीं बहुतेरी। जिनकी रहीं अपछरा चेरी ॥
सोऊ जगत छाड़ि कै गईं। मिलि धरती मों माटी भईं ॥

इहाँ न लहत सिंगारी काया। लहत न गरब लहत है दाया ॥
लहत न काया सुन्दरताई। लहत पुन्य मन की निर्मलाई ॥

सबद पाइ इंद्रावति, अधिकौ रही तवाइ।
चिन्ता बहुतै कीन्हा, अपने मंदिर आइ ॥

हौं मैं पाप भरी जग माहीं। आस मुकुत की है किछु नाहीं ॥
है मोहि बीच दोष जहँ ताईं। डरउँ करै कैसो जग साईं ॥
साहस देत परान हमारा। अहै रसूल निबाहन हारा ॥
निस दिन सुमिरु मोहम्मद नाऊँ। जासों मिलै सरग मों ठाऊँ ॥
करता तोहि मोहमदि कीन्हा। माथ सुभाग अंस तोहि दीन्हा ॥

ना करु सोच अगम को, राखु हिदैं मों आस।
जाके दीन बीच तैं, सो देइ है सुख बास ॥

अरे प्रीतम तैं मन हरा। अहौं बियोग बंदमों परा ॥
आइ बंद सों मोहि छुड़ावहु। दोऊ जगत भलो फल पावहु ॥
मोहिं पाछें बैरी बहुतेरे। तेरे सेवक साथी मेरे ॥
खरग काढ़ि बैरी कहँ मारहु। बंद कूप ते मोहिं निसारहु ॥
अलख सँवारा तुम कहँ वली। चलै जगत मौं कीरत भली ॥

दूसर बंद न भावत, जहाँ प्रेम को बंद।
जगत बंद दुखदायक, प्रेम बंद आनंद ॥

जुद्ध खंड

बुद्धसेन क्रीपा कहँ सेवा। जैसे मानुष सेवै देवा ॥
राज कुँवर को बंद सुनावा। सुनि क्रीपा क्रीपा पर आवा ॥
तब सहाय जगपति सों माँग। सब पायव कछु एक न खाँग ॥
क्रीपा चला कटक लै भारी। गोंहन सुभट चले बलधारी ॥
पानहु दीन्ह समुद्र हलोरा। लहर मनुज तंबेरम घोरा ॥

तंबेरम दल सोहै, कज्जल गिर के रूप।
रहेउ अचल कज्जल गिर, ताहि चलायउ भूप॥

कहत न पारउँ तुरै बखानू। रहे चलत महँ पवन समानू॥
औ थिराय कै सामै माहीं। माटी चाह सो अधिक थिराहीं॥
नीचे जल सम पाँव उठावैं। अगिम समाँ ऊपर कहँ धावैं॥
बाजी सकल पवन के जाये। मानहु चेत भेस धर आये॥
वै सवार है पर केहि मानन। मनहुँ पवन ऊपर पउचानन॥

यह समीर तेन आगें, चलत थकित होइ जाइ।
आगें वै पगु राखहीं, पाछे पवन थिराइ॥

झीपा आवागढ़ नियराया। आया पति दुर्जन सुधि पावा॥
गढ़ भारेउ औ कटक बटोरा। घरेनि अलंग बीर चहुँ ओरा॥
तिस्ना कोप सहायक आयउ। आयउ गरब अधिक बल पायउ॥
गढ़ सों छूटन लागेउ गोला। डोला सात अकासहि डोला॥
झीपा दिस छूटत अरि चोटा। भयेउ जगत करता की वोटा॥

बाजहिं बाला संजुगी, चहुँ दिस परेउ पुकार।
चार मास तहँ बीता, होत सत्रु सों मार॥

जो करतार पंथ पर जूझा। ताकहँ चिरंजीत हम बूझा॥
करता मगु पर जें रन लायउ। ताहि सहाय गगन सों आयउ॥
आयउ नभबासी की सैना। दीख न पारा ता कहँ नैना॥
करता की सेवा के बेरा। होइ जहाँ डर दुर्जन केरा॥
सुमिरन सेवा आधे करहीं। आधे लोग सत्रु सँग लड़हीं॥

धन जो सिरजनहार मगु, गहि कै राखेउ पाव।
पाव न टारा जुद्ध सों, आय उरद मों घाव॥

गढ़ मों गरब राय मुख खोला। गरब बचन दुर्जन सों बोला॥
जैसो जगपति तस तुम राजा। गढ़ सों निसरि जुद्धि तेहि छाजा॥
एकै एक करहिं मिलि जूझा। जाय सुभट जन को गुन बूझा॥

तब दुर्जन गढ़ सों निसराना । हलकी रज तिमिरार छपाना ॥
चढ़ि मैदान कोप माँ ठाढ़ा । छमाँ खरग यह दीसों काढ़ा ॥
भयेउ खेत के ऊपर, सींघै सींघ भिड़ाव ।
आइ सरीरन संचरेउ, काहे करसों घाव ॥
सुमिरि हियें करता कर नाऊँ । मारा छमा कोप सिर ठाऊँ ॥
जब वह कोप गिरा गा मारा । आयउ मदनसिंह बरियारा ॥
धरम राय यह दिसते धायउ । मदन सिंह कहँ बाँधि लियायउ ॥
मदन विमद होइ सेवक भायउ । आपा सुरा उतरि तेहि गायउ ॥
दुर्जन कटक सहित तब धावा । अतरन रकत समुद्र बहावा ॥
एकै भये दोऊ दल, जमल जलधि मैं एक ।
कठिन परगटेउ संजुग, मन सों गयेउ बिबेक ॥
भयेउ घटा ढालन सों कारी । खरगन भये बीज चमकारी ॥
गेंदा सीस खरग चौगानू । खेलहिं बीरहिं चढ़ि मैदानू ॥
ढाल आपनों आपनों चाहैं । अरि को शस्त्र चलाव सराहैं ॥
भाला खरग हनै सब कोई । वोडन खरग ठनाठन होई ॥
बागन खरग सों ठनठन गयउ । हिन हिन औ धुन हन हन भयउ ॥
वोनई घटा धूर सों, दिन मनि रहा छिपाय ।
तहाँ महाभारथ भा, सबद परेउ हू हाय ॥
साहस राय गयंद सरीरा । औ मन सिंह धरम रन वीरा ॥
खरग हनै जाके उपराहीं । बिनु बिलगें सो बाचै नाहीं ॥
कोउ भये घायल कोउ मारे । भाला खरग सुरा मतवारे ॥
छुंछा बान सों भयेउ निखंगू । भयेउ निखंग बान को अंगू ॥
बढ़ेउ कमठ कहँ दाह कराहू । चकाचाक भा धाधक हाहू ॥
जुद्ध करत दोऊ कटक, थाके रहे अघाय ।
दुर्जन रिपु मारा परा, ता दल गयेउ पराय ॥
क्रीपा जब दुर्जन कहँ मारा । जाइ के बंद सों कुँवर निसारा ॥
कुँवर कहा क्रीपा जस लीजे । जलज सिंधु दिस गवन करीजे ॥

क्रीपा कुँवर सहित गा तहाँ। रहा समुद्र गुलिक को जहाँ ॥
कहा बहुत राजा जिउ दीन्हा। काहुअ मोती हाथ न कीन्हा ॥
बहुत महीप भये मर जीया। मोती काढ़ै नित जिउ दीया ॥
दीन्ह कुँवर कहँ क्रीगा, मोती ठउर बताइ।
औ खेवक हकरायेउ, राहहिं दीन्ह चिन्हाइ ॥

राजा जगपति यह सुधि पावा। मरमी जन सों मरम जनावा ॥
एक मनुष राजा सों कहा। ना जानहिं जोगी कस अहा ॥
राजन ऊपर परन तुम्हारा। नाहीं सबै निसारन हारा ॥
यह मोती तेहि काढ़ब छाजा। राजा पुत्र होइ जो राजा ॥
बरजि पठावहु बेर न कीजै। जात खोजि कै आशा दीजै ॥
भायेउ बात निपं कहँ, भेजा तुरत बसीठ।
फेरि लियाई कुँवर कहँ, दीन्ह जलज दिस पीठ ॥

बैठा बिर्छ तरें अनुरागी। चिन्ता कथन हुतासन लागी ॥
कहै कवन उपकार बनावउँ। जातें प्रान बल्लभा पावउँ ॥
जावक होउँ होइ दुख मेटउँ। तो वह कमल चरन कहँ भेंटउँ ॥
कज्जल होउँ नयन लगि रहऊँ। होउँ पवन लट ऊपर बहऊँ ॥
होइ मोती बेसर महँ परऊँ। होइ प्रतिबिम्बी छाया धरऊँ ॥
जेहि प्रान प्यारी के, अमी भरे अधरान।
ता पगु रज के ऊपर, वारों आपन प्रान ॥

मधुकर खंड

इंद्रावति चिन्ता महँ परी। रहै न बिनु चिन्ता एक घरी ॥
आइ रैन तेहि बहुत सतावै। कल न सुपेती ऊपर पावै ॥
कलगै गलगै जलगै काया। तेहि वियोग को पीर सताया ॥
सखिन मता आपुस मों कीन्हा। सब मिलि कै ऐसो मत लीन्हा ॥
निस कहँ जहाँ रहै वह रानी। सदा सुनावहु एक कहानी ॥

होइ बहोरै जीउ को, सुनत कहानी बात ।
चिन्ता जाय सरीर सों, नीद परे वहि रात ॥

एक सखी निस होतहिं आई । मधुरी बचन असीस सुनाई ॥
कहा कहत हौं एक कहानी । सरवन दै कै सुनिये रानी ॥
बहुत बचन करतार पठावा । जेहि सुनि कै बहुतन मनु पावा ॥
कहा बहुत जेन की मति फेरी । अहै कहानी आगेहिं केरी ॥
अहै कहानी पै सुन रानी । है अमृत सानी रस बानी ॥

कहा कहानी कहिये, सुनो कान दै ताहि ।
जीउ बिरह सों तन महँ, उठत कराहि कराहि ॥

मन रानी को पाय सयानी । धन सों लाग सो कहै कहानी ॥
मोहनपूर रहा एक गाऊँ । तहाँ महीपत मधुकर नाऊँ ॥
जस मधुकर रस रहै सोभाना । तैसें वह रस महँ लपटाना ॥
जग रस बीच परा जो कोई । आगम रस नहिं पावहि सोई ॥
रस पावै जो जेहि करतारा । दया दिष्ट सों हिया उघारा ॥

मधुकर के मन्दिर मों, रहै बहुत रनिवास ।
संघत करै भँवर सम, लब अम्बुज के पास ॥

एक दिन राजा गयेउ अहेरें । देखा एक मिर्ग कहँ नेरें ॥
मिर्ग चला मधुकर है हाँका । मिर्ग पवन दहुँ रहै कहाँ का ॥
चला मिर्ग के पाछे सोई । छुटा लोग ना पहुँचा कोई ॥
जात जात एकै बन महँ परा । देखा बिर्छ एक अति हरा ॥
भयेउ कुरंग कुरंग हेराना । तरिवर तरें आइ पछताना ॥

ऊँचा तरवर देखि कै, और गम्हीरो छाँह ।
सुख पायेउ दुख भूला, भा अनंद मन माँह ॥

सीतल छाहाँ सों सुख पाई । पौढ़ा भुईं पर बसन बिछाई ॥
ततिखन दुइ सुक आइ बईठे । बोले बचन आप महँ मीठे ॥
पूछा एक कुसल हो प्यारे । केहि धरती सुख वास तुम्हारे ॥

जब सौं हम तुम बिछुरे होऊ। मिला न तुम्हें समाँ, हित कोऊ ॥
जेहि भेंटेउँ अपकारी पायेउँ। तासों भागेउ प्रीत न लायेउँ ॥
सुभ बेला यह सुभ देवस, दरसन मिला तोहार।
समाचार आपन कहो, जीउ थिराय हमार ॥

दूसर सुआ अधर कहँ खोला। समाचार की बानिय बोला ॥
जा दिन छूटा संग तुम्हारा। जाइ परेउँ एक विपिन मझारा ॥
तरिवर पर निर्चिन्त बईठेउँ। छल पहरा को एक न डीठेउँ ॥
सब अनजान न जानत कोई। गुपुत अंतर पट सों का होई ॥
जिनि यह कहौ करौं असि भौरें। दहुँ अस प्रगटे भोर अँजोरें ॥
मैं निचिंत अपने मन, आइ एक चिरिमार।
खोंचा मारि बझायउ, डारेउ बंद मझार ॥

लै मोहिं प्रेम नगर के हाटा। बेचेसि चलिगा दूसर बाटा ॥
परेउँ रूप राजा वर माहीं। जहाँ दरब कछु खाँगा नाहीं ॥
तेहि के घरे सुन्दर एक बारी। तेहि की सुता सुंदर सुकुमारी ॥
अति सुगंध मालति की काया। जनुविधि सुगंध मिलाइ बनाया ॥
मोहिं राजा मालति कहँ दीन्हा। बचनन सों सेवा मैं कीन्हा ॥
कीन्ह पियार बहुत मोहिं, दायावन्ती होइ।
सेवा किहें पियारा, होइ अंत सब कोइ ॥

मालति रूप न बरनै पारउँ। केति कौ अर्थ न चिंत सँचारउँ ॥
अबहीं तेहि संग भँवर न लागा। मिर्ग नयन लखि आनन भागा ॥
मालति बास मालती बासा। मालति पास मालती पासा ॥
जानहुँ ससि भुईं पर अवतरा। पुहुमी पर उतरी अपछरा ॥
है सुकुमार बहुत वह रानी। बोलत बानी अमृत सानी ॥
है मालती सुवासित, सुगंध भरे जनु अंग।
ज्ञान भरी सुंदर सखी, रहैं सदा तेहि संग ॥

एक देवस धन रूप निधानू। निर्मल तारा गइल नहानू ॥
सून मँदिर मों पिंजर मोरा। रेवाँ रहा मजारिय तोरा ॥

बाँचेउँ रिपु सों हियें डेराना। पिंजर सों मैं निसरि पराना॥
बंद छुटे आनंद मैं पावा। अंत पखेरू अहइ परावा॥
जेहि के छलें छुटा सुखवासू। तेहि बैरी कर का बिसवासू॥

अब बन बन फेरा करउँ, समुंझि पिंजर को बंद।
काहू कर सेवक नहीं, मन मों रहत अनन्द॥

सुनि मधुकर मालति के नाऊँ। भा मालति मधुकर तेहि ठाऊँ॥
उठि कै कहा बिहंग पियारे। बात न बान प्रेम कर मारे॥
तुम पंडित बुधवंत गरेवा। उतरहु आइ करउँ मैं सेवा॥
हहु नियरें पै करमों नाहीं। रहेउ समाइ सकल तन माहीं॥
आवहु सीस देउँ तेहि ठाऊँ। तोहि लै चलहुँ अपाने गाऊँ॥

जिउ अस राखऊँ तुम कहँ, धरउँ न पिंजर माँह।
जल चारा आगें कै, रहौं जोरि दोउ बाँह॥

कहा सुवा तुम मानुष होऊ। तुम धरती पर ढारहु लोहू॥
आगे अब मानुष नहिं आवा। बहुतन औगुनता पर लावा॥
है मानुष निर्दै हत्यारा। सकै अनुज कहँ जिउ सों मारा॥
सात देह मानुष कर जारैं। सात नरक द्वारे महँ डारैं॥
चाम जरै तब दूसर देहीं। मानुष बार बार दुख लेहीं॥

हौं पंडित औ चातुर, कहाँ चलौं तेहि संग।
जिउ पंखी नहिं पालै, पालै अंग बिहंग॥

तुम मोहि यह सत बात सुनावा। मानुष परसै ऐगुन आवा॥
पै मानुष बुध कै बउसाऊँ। सकलो सिष्ट को जाना नाऊँ॥
मानुष पर दाता की दाया। सकलो सिष्ट को नाम सिखाया॥
करता की नैंव मानुष अहई। का जो दोष पाप मों रहई॥
प्रेम नगर औ मालति बातैं। फेर सुनाउ चतुर महातैं॥

एक एक कै बरनहु, वह मालति की बात।
सुनउ जीउ सरवन दै, हो पंडित मुखरात॥

कहा मोहि प्रान समों जेइ पाला । मन भा तेहि की प्रीत को माला ॥
मरमी भयउँ सदा कइ सेवा । तोहि बेरान सें भाषउँ भेवा ॥
सरवन सुनै जोग तेहि नाहीं । भूल न देखेसि देखेसि छाँहीं ॥
नरक बीच बहुतन कहँ भरईं । मन राखहिं पै बूझि न करईं ॥
नैना होइ न देखहिं नैना । सरवन रखहिं सुनहि नहिं बैना ॥

वे सब पसु के मान हैं, बरू पसु चाह अचेत ।
जेहि के मन नहिं चेत है, तेहि को भेद न देत ॥

कहा कहा मेरो तुम मेंटा । नहिं जानों का ऐगुन भेंटा ॥
बिनती एक करउँ कर जोरी । मानु दया सों विनतिय मोरी ॥
मोर संदेस कान कै लीजै । प्रेम नगर कहँ गवन करीजै ॥
जायेहु जहँ वह मालति प्यारी । तासों भाखेहु विथा हमारी ॥
सपत तेहिक जेइ जनमाँ नोही । प्रेम हमार जनायहु वोही ॥

मोहनपुर महँ मधुकर, कहहुँ निर्प एक आह ।
बहुत बेयाकुल कीन्हा, प्रेम तेहारो ताह ॥

कहा तेहारो बिनती मानेउँ । मालति कर मधुकर तोहि जानेउँ ॥
एक बार तोहि कारन जाऊँ । धन सों कहऊँ तेहारो नाऊँ ॥
आनक सपत दिहा नहिं काही । सपत भलो करता कर आही ॥
बहुत सपत जो मानुष खाहीं । तै जिन रहु तेहि अशा जाहीं ॥
कहौं नाम सुनि कै तोहि लोभा । बिनु देखै मूरत औ सोभा ॥

यह सब कहि उड़िगा सुवा, मधुकर मन पछतान ।
पंखी सम चंचल है, काया बीच परान ॥

हेरत सकल लोग औ दासू । आए सब मधुकर के पासू ॥
लोग समेत निर्प घर आएउ । मन महँ प्रेम बसेरा पाएउ ॥
परगट राज करै औ बोलै । गुपुत दिष्ट मालति पर खोलै ॥
परगट सब के जाने भोगी । गुपुत भएउ मालति कर जोगी ॥
परगट रहइ आपने गाऊँ । गुपुत रहै मालति के ठाऊँ ॥

परगट सब सों बोलै, गुपुत जपै वइ नाम।
मन महँ रहै व्याकुल, हरिगा सुख बिसराम ॥
मालति उहाँ बहुत दुख देखा। जा दिन सों गा सुआ सरेखा ॥
कहै कहाँ वह पंडित सुआ। कादहुँ हुआ जियत की सुआ ॥
छूँछा पिंजर रहिगा रेवा। उड़िगा प्यारा प्रान परेवा ॥
जो पिंजर की भीतर बोला। औ जानों यह पिंजर डोला ॥
सो चलिगा केहि बन ठहराना। रहा आपनो भयेउ बिराना ॥
सुवा आनि को मेरवे, पिंजर देइ जियाइ।
का औगुन दहुँ देखा, तजि के गयउ पराइ ॥
सखिन बुझावहिं सुवा पियारा। ठहरा जब लग रहा तुम्हारा ॥
उड़िकै गा रहिगा पछतावा। कहाँ थिरै जब भएउ परावा ॥
जो पछताने आवइ हाथाँ। हम पछताहिं सकल तुम साथाँ ॥
पिंजर देह रहा तेहि भारी। हलुक देह उड़ि लीन्हेंसि प्यारी ॥
उड़ि कै पन करि भयेउ अहेरी। तेहि डर छूट मजारिन केरी ॥
पिंजर बीच रहा सुवा, चारा चिन्त मझार।
अब ऐसे बन में गएउ, सुख सों मिलै अहार ॥
दिन दस बीते सोच मों गयऊ। सुवा जाइ कै परगट भयऊ ॥
मालति देखि जीउ जन पावा। प्रान मिलै कहँ आगेहँ धावा ॥
कहा प्रान अस नियरें होहू। तोहि नित बहुत पिया मैं लोहू ॥
कहा सुवा बाचा मोहि दीजै। मोहि पिंजर के बीच न कीजै ॥
मैं बन बीच रहेउँ जब भागा। नरक समाँ अब पिंजर लागा ॥
बाचा दीन्हा मालती, सुवा नियर भा आइ।
कंठ सुवा कहँ लायेउ, प्रान पियारी धाइ ॥
कहा कुसल कहु प्यारे सुवा। तोहि नित आँसु नैन सों चुवा ॥
कहो कवन औगुन मोहिं लागे। जेहि नित छाड़ हमैं तुम भागे ॥
केहि बन भीतर रहेउ बसेरा। कहाँ कहाँ तुम कीन्हा फेरा ॥
सुनि कै सुवा असीस सुनावा। देइ असीस सीस पुनि नावा ॥
तुम औगुन सों निर्मल प्यारी। औगुन भरी सरीर हमारी ॥

तुम तो निर्मल तारा, गइहु करै अस्नान।
पिंजर धरा मँजारी, गा वह टूट निदान॥

पिंजर टूटा मिला दुवारा। बाहर निकसि पंख मैं झारा॥
रहत न भावा बैरी राँधे। रिपु नित रहै घात सर साँधे॥
परोस जहाँ सत्रु को होई। तहाँ निचिन्त रहै का कोई॥
जाइ परेउँ ऐसे बन माहीं। खाँग जहाँ चारा कर नाहीं॥
हम तुम छूटि गये तेहि ठाऊँ। इहाँ अहै हम तुम सब नाऊँ॥

आयेउँ दरसन कारने, औ राखउँ एक बात।
सूनो मंदिर होइ जब, बात कही तब जात॥

सून मँदिर तब मालति कीन्हा। सुवा सयान भेद तब दीन्हा॥
उड़िउड़ि सब कानन महँ भयऊँ। औ सब तरिवर ऊपर गयऊँ॥
मिला एक दिन एक परेवा। मित्र रहा कीन्हा मोर सेवा॥
दोऊ एक बिर्छ पर गयऊँ। छाँहाँ पाय सुखी मन भयऊँ॥
सुवा साथ मैं तुम्हें बखाना। जस तोहार सब वोनहूँ जाना॥

बिर्छ तरें एक मानुष, सुना सकल गुन तोर।
बिनु आज्ञा अब आगें, कहि न सकै मुख मोर॥

कहा पियारे बात तुम्हारी। जीउ देत हैं कहु बलिहारी॥
तुम पंडित जो पंडित होई। अब सकु बात न भाषै सोई॥
सिद्ध रूप तुम सुवा गेयानी। बात तोहार अमीरस सानी॥
सिद्ध बात लाभा की कहई। का जौं उलटी बातैं रहई॥
स्वानौ कोकरा जो मरि जाहीं। सिद्ध कहै भल है भल माहीं॥

आज्ञा का माँगत हौ, भाषहु जो मन होइ।
मिलबो लूट तुम्हारो, मरम न राखौ गोइ॥

कहत बखान नाम गुन तेरो। सुनि कै वह मानुष भा चेरो॥
बिनती बहुत कीन्ह मोहिं साथा। नग संदेस को दीन्हा हाथा॥
कहा जाइ मालति के गाऊँ। प्यारी साथ कहेउ मम नाऊँ॥

मोहनपूर देस है मेरो। मैं मधुकर राजा हित तेरो॥
मोहिं राजा कहँ प्रेम तुम्हारा। व्याकुल कीन्ह सोंच मों डारा॥
एहि सँदेस तेही कहे, कछु बसीठ पर नाहिं।
जो सँदेस ले आवहीं, पहुँचावै चलि जाहिं॥

यह सुनि कै मालति सुकुमारी। चुप होइ रही न बात निसारी॥
बिनती कीन्ह सुवा कहँ राखा। दीन्हा ठाँव बिर्छ कहँ राखा॥
पिंजर भीतर सुवा न आवा। लाग रहै छूटा सुख पावा॥
रहै सुवा फुलवारी माहाँ। जहँ फल फूल औ सीतल छाहाँ॥
जस बैकुंठ बीच फल नियरें। तस नियरे अनदाना हियरें॥
उड़ि बैठहि तेहि डार पर, जहाँ चलावै जीउ।
मन काया के छौर महँ, सुख अनंद मै घीउ॥

मालति मन पर मधुकर नाऊँ। लिखिगा देखि परै मन ठाऊँ॥
कवल समाँ मन प्यारी केरा। होइ मधुकर भा मधुकर चेरा॥
प्रेम फाँद प्यारी मन परा। मधुकर मन मालति मनहरा॥
मन सों का कहँ सुमिरै कोऊ। सुमिरै ता कहँ मन सों सोऊ॥
कहा अलख सुमिरौं तुम मोहीं। सुमिरे सो सुमिरौं मैं तोहीं॥
रही सुगंधित मालती, प्रेम भँवर तेहि कीन्ह।
व्याकुल भई जीउ महँ, भेद न काहू दीन्ह॥

दुर्बल भइ जब मालति बारी। धाई धाइ कहा बलिहारी॥
कवन कलेस समान सरीरा। कहत सरीर सो आपन पीरा॥
कहा कलेस न एकौ मोहीं। कवन कलेस सुनावउँ तोहीं॥
कहा भई दुर्बल तैं बारी। बिनु दुख दुर्बल होत न प्यारी॥
हो री मात समाँ है तोरी। भोरी मरम न गोवहु गोरी॥
जो दुख होई पिंड महँ, सो मोसें कहि देहु।
धाइ करौं उपकार सै, दुख कर ओषद लेहु॥

कहा सुवा वोही दिन जो आवा। मोसे मधुकर नाँव सुनावा॥
है जो एक देस मोहनपुर। मधुकर राय तहाँ जस सुर॥

सुवा सुनायेउ तेहिक संदेसू। हौं तेहि कारन प्रेमी भेसू॥
हौं माता सुनि मधुकर नाऊँ। भा मन मधुकर उड़ि कै जाऊँ॥
मोहि मालति कहँ मधुकर नेहा। कीन्हा मधुकर नेही देहा॥

तुम माता दाया भरो, दाया ऊपर आउ।
मोहि मालति कहँ मधुकर, कै उपकार मोराउ॥

सुनि धाई दाया पर आई। मालति सौं उपकार सुनाई॥
सौंपहु काज आपनो ताकौं। सिरजनहार नाम है जाकौं॥
पुरुब पछुम को पालन हारा। है सो पुरवै काज तुम्हारा॥
सुमिरहु ताहि बिसारहु नाहीं। सुमिरन बड़ो अहै दिन माहीं॥
बहुरि सुवा सौं बिनती कीजै। बिनती कै जिउ कर महँ लीजै॥

भेजहु तेहि मोहनपुर, मधुकर आनै आस।
आने प्रेम बढ़ाइ कै, तेहि मालति कै पास॥

एक दिवस मालति मति पागी। बिनती करै सुवा सौं लागी॥
कोमल बात जीभ सौं खोला। फाँद भलो है कोमल बोला॥
कोमल बात कहै कहँ दाता। कहा अहै भल कोमल बाता॥
धरती ऊपर जाउ परावा। कोमल कहे हाथ महँ आवा॥
तुम हौ सुवा प्रान जस प्यारा। जैसे प्रेम बान तुम मारा॥

तैसें महि घायल कहँ, औषद फाहा देहु।
लैआवहु मधुकर कहँ, यह पूरा जस लेहु॥

सुवा कहा सुनु बारी भोरी। अहै सीस पर आशा तोरी॥
मैं पंखी वह मानुष आही। मनुष बसीठ मनुष दिस चाही॥
सो जेई कीन्हा जगत अँजोरा। मानुष भेजा मानुष बोरा॥
मानुष मानुष बचन समूझै। सुवा सुवा की बातैं बूझै॥
औ मोहनपुर देखेउँ नाहीं। अकस जाउँ भूल बन माहीं॥

होइ साध जो मानुष, जाउँ मोहनपुर देस।
दोऊ मिलि समुझावैं, आवै इहाँ नरेस॥

दुई समुझायें समुझई सोई। दुइ जन मिले बूत भल होई॥
जेहि बसीठ कै जीउ डेराई। लीन्ह सहायक आपन भाई॥
गा तेति दिस जासों डर माना। भाषा साँची बात सयाना॥
दुइ मन एक होइ गिर तोरैं। कटक बिदारत बदन न मोरैं॥
जेइ मन तोरा सोगा तोरा। मन तोरा कहि तोरा मोरा॥
प्रेम नाम बन जारा, बसै तुम्हारे गाउँ।
ताके संग पठावहु, मोहनपुर कहँ जाउँ॥
माना बात मालती रानी। धाई साथ जनायसि ज्ञानी॥
धाई गई प्रेम दिस धाई। बिनै सुनाई बात जनाई॥
दीन दरब औ आसा दीन्हा। प्रेम सीस पर आज्ञा लीन्हा॥
दरब करै सब कारज पूरा। उद्दित करै दरब जिमि सूरा॥
जो न दरब को निर्मल करई। अगिन होम होइ गल मों परई॥
करता अपने पंथ पर, दरब कहा है देइ।
जो नहिं देई सो एक दिन, लाछ दरब सों लेइ॥
सँग ले सुवा प्रेम बनिजारा। मोहनपूर पंथ पगु ढारा॥
अहै बनिज को उद्दम भलो। पै जो करै बनिज निर्मलो॥
सिर्जनहार आप को बेला। आवत तजै बनिज को खेला॥
बेचब लेब कहा है भलो। अहै बियाज नहीं निर्मलो॥
सुन्दर रिन करता कहँ देहू। वह जग मूल लाभ सँग लेहू॥
बिनु पद दरब जो आन को, जो कोउ अगमों खात।
आनहु अगिन सो खात है, है यह साची बात॥
काटत पंथ सुवा बनिजारा। पहुँचे मोहनपूर मझारा॥
मधुकर उहाँ बियाकुल हीयें। ध्यान रहै मालति पर दीयें॥
बेकल बहुत भा मधुकर राजा। गा सब छूट राज को काजा॥
मरम की कली फूल बिकसाना। बास पाय सब काहुअ जाना॥
छपि ये प्रेम कस्तूरी दोऊ। अंत बास पावै सब कोऊ॥
लोगन बहुत बुझावा, फिरा न मधुकर प्रान।
भयेउ प्रेम के बाढ़ें, बाउर भेस निदान॥

सुवा प्रेम कहँ मरम सिखावा । बेचहु हम कहँ जानि परावा ॥
हाट चढ़ाइ मोल करु भारी । लै न सकै बैठै सब हारी ॥
तब राजा मधुकर मोहिं लेई । भारी मोलि बेगि तोहि देई ॥
मित्र जो होई सो मोल बढ़ावै । बैरी जन सौ औगुन लावै ॥
अति सुंदर कहँ बैरी लोगू । बेचा थोरै पर बिनु जोगू ॥
मधुर बचन मैं बोलऊँ, मधुकर लेइ निदान ।
रहि राजा के संग महँ, करौं हाथ मों प्रान ॥
पेम जबै दूसर दिन पावा । लैकै सुवा हाट महँ आवा ॥
हाट नगर मों भयेउ पुकारा । पेम नगर का है बनिजारा ॥
बेचत है एक सुवा सरेखा । वैसो पंडित कीर न देखा ॥
गाहक आये मोल उधारा । भारी मोल सुनत सब हारा ॥
मधुकर पेमनगर कर नाऊँ । सुनि आनन्दित भा मन ठाऊँ ॥
आएउ मधुकर हाट मों, लीन सुवा कहँ मोल ।
सुवा अधर कहँ खोला, बोला कोमल बोल ॥
मनिमय पिंजर बीच परेवा । राखा मधुकर कीन्हा सेवा ॥
भयउ अहार सुवा की बातैं । मधुकर राजा कहँ दिन रातैं ॥
एक दिन प्रेमहिं पास हँकारा । सून सदन कै बात निसारा ॥
है मालति रानी वह देसाँ । रूप बिहाय कला निधि भेसाँ ॥
वह रानी कर सुनत बखानू । सुरत सनेही भयेउ परानू ॥
तुम आवहु वहि नगर सों, ताकर कहौ बखान ।
एक सुवा सो मैं सुना, उड़िगा सुवा निदान ॥
सुनि यह बात पेम तब हँसा । हँसा फूल मानहुँ महि खसा ॥
जो एक मोल निर्प तुम लीन्हा । मोल गुलिक नग मानिक दीन्हा ॥
येही सुवा मालति गुन कहा । अब अनचीन्ह तुम सों होइ रहा ॥
उहइ सुवा है तुम नहिं चीन्हा । पंडित जान मोल तुम लीन्हा ॥
सुवा का पिंजर नियरें राखौ । तब रसाल बच को रस चाखौ ॥
सुनि रहसाना मधुकर, पिंजर लीन्ह उतार ।
पूछा कुल कहा कुसल है, है जब कुसल तुम्हार ॥

पेम सुवा दोऊ गुन गावा। एकै मुख होइ बात सुनावा॥
हम मालति के भेजें आये। दरसन देखि बहुत सुख पाये॥
मालति तुम्हैं दिन रात सँवारा। भा अब मन तोहि ऊपर भँवारा॥
तुम कहँ आनै हमैं पठावा। प्रेमहि निर्ष को ताहि जनावा॥
बनिज हमार तुम्हीं हौ राजा। अब वह देस गवन तोहि छाजा॥
रटत चातकी होइ रही, चलि दरसन जल देहु।
ना तो प्रान देइ धन, यह अपराध न लेहु॥
सुनि मधुकर जानहु जिउ पावा। कहा तुम्हैं मोहि लाग पठावा॥
छाजत सीस अकास लगावउँ। सीस चरन कै तेहि दिस धावउँ॥
अब लग रहेउँ भरम मद माहीं। रही पंथ की सुधि मों नाहीं॥
तुम हुइ अगुवा चतुर सयाने। मिलेहु करउँ तेहि ओर पयाने॥
है धन दिष्ट भाग को मोहीं। सुमिरन मोर चढ़े चित वोहीं॥
रोवत दिन मोहिं बीता, अब हँसि करेउँ अनन्द।
सोइ रोवाइ हँसावै, जेइँ कीन्हा रवि चंद॥
तजा राज कहँ मधुकर राजा। सकल समाज चलै को साजा॥
पिंजर सों बाहेर भा सूआ। पेम आप मिलि अगुवा हूआ॥
बहुत लोग राजा संग लागे। मानहुँ सोवत कै सब जागे॥
सोअत है जग मँह सब कोई। जब मरि जाहिं जाग तब होई॥
यह जीवन कहँ छोटा जानहु। जीवन बड़ो अगम पहिचानहु॥
जस जियहू तैसें मरहू, उठहु मरहु जेहि भाँत।
जग चाहुत के ऊपर, काह दिहे हौं दाँत॥
बहुत देवस को करत पयाना। एक समुद्र आइ नियराना॥
चढ़े पोत ऊपर सब कोई। गाढ़ी प्रेम नगर मगु होई॥
बोड़य बूड़ भये सब कोऊ। सुवा उड़ा जनि बिछुड़न होऊ॥
जाको राखत सिर्जनहारा। जल सुखाई मगु लाइ उतारा॥
यह जनि जानहु नीर डुबावै। चाहै धरती बीच धसावै॥
एक बार जल थल भवा, राखा चाहा जाहि।
आगें कहि कै भेजेउ, नाव बनावै ताहि॥

बड़े गरब कोप औ माया । भरमित और काम की काया ॥
एक दिस बहै बुद्ध औ बूझा । मधुकर पेम बहे नहिं सूझा ॥
मन पछिताइ सुवा गा तहाँ । चितवत पंथ मालती जहाँ ॥
मिली कहा कहु कुसल पियारे । पंथ निहारा नैन हमारे ॥
कहा कुसल का बूड़ी पोता । होत कुसल जो जन मन होता ॥
मधुकर आवत तेहि दिस, बहा सिन्धु के धार ।
बूड़े सकल संघाती, कोउ न लाग गोहार ॥
सुनि यह बात मालती रानी । मन पछतानी सोच सयानी ॥
धन लेखैं जनु परलै आई । यह परलै केहि दिसतें धाई ॥
काहें यह परलै परगटे । आयो हाय बरम्हा के छुटे ॥
की बिरंच को एक दिन बीता । सोयेउ भै परलै की रीता ॥
नहिं निसरे वै हुइ बरियारा । जाकर अवध लिखा करतारा ॥
बीचहिं देखहुँ परलै, धरती भयेउ असिष्ट ।
की मन मोर फिरा है, उलटि बिलोकन दिष्ट ॥
सुवा बुझावै बूझहु रानी । जीवन हार न बूड़ै पानी ॥
करै जो किछु करता कोई । अन्त काज वह सुन्दर होई ॥
भेद छिपा तोहि कारन माहीं । सो जानहि हम जानहिं नाहीं ॥
ज्ञानी एक एक बालक मारा । औ एक नाव जलधि मों फारा ॥
साथी ताकर भेद न जाना । भेद रहा तेहि बीच छिपाना ॥
धर धीरज मन भीतरैं, होइ जियत वह होइ ।
जो मति सों छूँछा अहै, छाड़ै धीरज सोइ ॥
मालति कहा देहु तुम बोधू । मोहि पहरा पर आवत क्रोधू ॥
कहा करत पहरा कछु नाहीं । वह करता नाहीं जग माहीं ॥
जेई पहरा को करता जाना । सो मूरख जग बीच भुलाना ॥
सो करता जो सब पर बली । दीन्ह मनुष को काया भली ॥
वह पूरब सो सूर निसारै । को पच्छुम सों आनै पारै ॥
कोप न करु पहरा पर, धरु धीरज मन माँह ।
देखु जगत मों करता, कस बिस्तारा छाँह ॥

धीरज बात कहत हौ सुआ। मोहिं वियोग सों आँसू चुआ॥
अब अस करहु बहोरहु ताही। मन औ ध्यान बीच को आही॥
कहा बहोरन हारा सोई। जेहि अज्ञा जीवै सब कोई॥
पै तोहि लाग फेर उड़ि जाऊँ। हेरों बन परबत सब ठाऊँ॥
जियत होई तो हेरि निसारउँ। नाँ तो बैठ रहउँ चुप मारउँ॥
जियत मिलत है एक दिन, मुवा मिलत है नाहिं।
मानुष मुवा मिलै तब, जब निर्मल होइ जाहिं॥
इड़ा नाउँ लै उड़ा परेवा। हेरा इड़ा अड़ा वह सेवा॥
मधुकर वहि तट ऊपर भयऊ। चलि सैरंगपूर मों गयऊ॥
हेरत ताको सुवा सरेखा। तेहि सैरंगपूर महँ देखा॥
रोये ऐसे दोउ दुख भरे। तेन रोवत कुज के दिल झरे॥
जो दिल झरै अलख तेहि जानै। दूसर पत्र विछ्छै महँ जानै॥
रोये मधुकर औ सुवा, बहुत मानि मन हान।
साथी कारन भा बेकल, मधुकर निर्प सयान॥
सुवा भयेउ अगुवा औ चला। पाछें चला विरह कर जला॥
मगु मों मिला पेम बनिजारा। और लोग जो रहा पियारा॥
पेम नगर मों मधुकर गयऊ। जनु तप साधि सरग मों भयऊ॥
है तेहि नित बैकुंठ सँवारा। जो भल काज कीन्ह मद जारा॥
पहिरैं कनक कड़ा औ बागा। वोटगैं पाट उपर मनि लागा॥
मालनि फुलवारी रही, रहेउ सनेही नाउँ।
सुवा कहा मधुकर सों, लेहुँ इहाँ तुक ठाउँ॥
मधुकर लीन्ह बास फुलवारी। सूआ आप गवा जहँ प्यारी॥
पूछा धन कहु कुसल पियारे। देखि जुड़ाने नैन हमारे॥
कहा कुसल जब कुसल तुम्हारी। नीको भाग तेहारो बारी॥
मधुकर राजा को मैं आना। फुलवारी मों दीन्हेउँ थाना॥
है दरसन का भूखा राजा। अब तेहि दरस देखाउब छाजा॥
तुम मालती वह मधुकर, दोऊ एक सँजोग।
रहसे देखी निर्प को, प्रेम नगर के लोग॥

दरस देखावै कहँ तुम कहा। मोहि वहि दरसन पर चित रहा ॥
दरसन जोग कियेउ वहि काजू। राजा रहा तजा सब राजू॥
जो दरसन दाता को चाहै। काज करै भल सत्त निबाहै ॥
औ करता की सेवा माहीं। दूसर साझें मेरवै नाहीं॥
वह सुमिरेउ है एकहि मोहीं। छाजत दरस दोवाहु वोही ॥

पै अबहीं नहीं उचित, परगट देउँ देखाय।
देखै मेरो छाया, ऐसो करहु उपाय ॥

कहा बात भाषा तुम भली। अबहीं लाज लिहें रहु लली ॥
है फुलवारी बीच अटारी। जाइ अटारी चढ़िये प्यारी ॥
मधुकर हाथ देउँ मैं दरपन। छाया डारि देखावहु दरसन ॥
तैं परगट तेहि लखु उरबसी। वह देखै तोहि ससि की ससी ॥
परगट दरसन को दिन औरै। है प्यारी केतौ दिर्ग दवरै ॥

इहइ उपाय भलो है, यह दिन देहु बिताइ।
मोर होइ जब दूसर, दरसन दीजै जाइ ॥

दुसरे देवस मालती प्यारी। सखियन सँग आई फुलवारी ॥
आप दच्छ वह सुवा सयाना। अटा तरें मधुकर कहँ आना ॥
दरपन दीन्ह हाय महँ लीन्हा। मालति बदन झरोखहिं कीना ॥
झाँका दरपन मों परछाहीं। परी बदन की बिछुरी नाहीं ॥

देखि बदन की छाया, मधुकर भये अचेत।
मालति कली भँवर लखि, बिकसि रही संकेत ॥

जब सचेत भा मधुकर ज्ञानी। मन्दिर गइ तब मालति रानी ॥
दरसन दैकै गइल पियारी। तेहि दोहाग भई अधिकारी ॥
मीलन लाग दोऊ दुख माहीं। परी हाय सुख एको नाहीं ॥
सुवा संदेश दोऊ कर आनै। दोऊ संग सनेह बखानै ॥
कबहुँव पाती कबहुँव बातैं। आनै सुवा चतुर दिन रातैं ॥

प्रेम बिरह बैराग मों, बहुत मास गा बीत।
कबहूँ दुख कबहुँ सुख, कठिन प्रेम की रीत ॥

रूप जानि मालति बरजोगू। नेवता राज बंस के लोगू ॥
रचा सयम्बर ठौर बनाये। राजकुमार देस के आये ॥
एक एक सुन्दर राजकुमारा। कोऊ रवि कोऊ ससि तारा ॥
मधुकर बिनु नेवते गा तहाँ। रहे राज बंसी सब जहाँ ॥
मधुकर रूप देखि सब लोभा। सोभा तहाँ सभा को सोभा ॥

मड़िमाला मालति लिहैं, आई सभा मँझार।
बहुत सहेली गोहने, भयेउ सभा उँजियार ॥

लगी आस सब के मन साथा। यह चंचला चढ़ै केहि हाथा ॥
वह चंचला चँचला से समाँ। चहुँ दिसि फिरी लिहें मनि छमाँ ॥
ताकर ग्रीउ डली वह माला। ठारेउ जो मातेउ तेहि हाला ॥
गये सकल निर्प अपने घर कों। मालति ब्याह गईं मधुकर सों ॥
दुख सहि के सुख पायन दोऊ। वस सुख तुम्हें पियारी होऊ ॥

सखी कहानी कहि गईं, इन्द्रावति के लाग।
कल ना परै प्यारी को, बाढै अधिक दोहाग ॥

विरह अवस्था खंड

धन सो धन जेहि विरह बियोगू। प्रीतम लाग तजै सुख भोगू ॥
नेह बीज मन धरतिय बौवै। रैन न सोवै दिन कहँ रोवै ॥
धन जेहि जीउ होइ अनुरागी। वारै प्रान सो प्रीतम लागी ॥
तजै भोग सुख सुमिरन नाहीं। जागै निसि कहँ सोवइ नाहीं ॥

धन सों जन धन मन तेहिक, जाके मन दोहाग।
परै दोह की आग सों, मानस भोंसै दाग ॥

रोइ दीप सुत डावै धोई। अभिलाषिन अनुरागिन होई ॥
इंद्रावति सुकुवार कुमारी। भार बियोग परा तेहि भारी ॥
प्रेम सरीर बेयाध बढ़ाया। दूबर पीत भयेउ धन काया ॥
पान न खाय न पीवै पानी। भूख पियास भुलायेउ रानी ॥

व्याकुल भई रात दिन रोवै। बदन करेज रकत सों धोवै ॥
प्रेम आग तन काठिय जारा। मारै चाहा मन को पारा ॥

भइउ दूबरी रानी, भै बिबरन तन रंग।
वैरिन होइकै लागेउ, व्याध अंग के संग ॥

दुर्बल भइउ व्याध सों नारी। बल घटि गों भा जीवन भारी ॥
चित्त ध्यान प्रीतम पर राखा। चाखा प्रेम बढ़ेउ अभिलाखा ॥
बैरागिन कीन्हा बैरागू। अनुरागिन कीन्हा अनुरागू ॥
सुमिरै सोवत बैठी ठाढ़ी। मन असमर्थ अवस्था बाढ़ी ॥
प्रेम भकोर भयऊ तेहि सीसू। बैरी बूझै निस रजनीसू ॥

सुक्ख भयउ दुख दायक। सुध मति रहेउ न साथ।
परी जगत प्रानेसरी; जड़ता केरी हाथ ॥

सुंदर बाक मनाक न भावै। गगन चाक उदबेग सतावै ॥
बिरह आग सों भै उर दाहू। धन ससि कहँ भा मंदिर राहू ॥
भावर लाय न सिच्छा मानी। छिन छिन कहै आन की बानी ॥
उन्नमाद सों रोवइ हँसई। आँसू धरती मोती खसई ॥
जियत रहइ धेयान के बाहाँ। ना तौ होत मरन पल माहाँ ॥

धन कहँ अंतरपट भयेउ, गगन ऊँच महि नीच।
छाड़ि सकल धंधा कहँ, परि गुन कत्थन बींच ॥

वह रावल जग मित्र नवेला। मन परान कहँ कीन्हा चेला ॥
वह विदग्ध सुकुमार पियारा। रूप गगन सविता उँजियारा ॥
चिंता कथन बीच धन परी। चिंता करै घरी औ घरी ॥
केहि उपकार दरस वह पावउँ। केहि उपकारे के ढिन धावउँ ॥
होत भलो होतिउँ जरि छारा। देह चढ़ावत रावलु प्यारा ॥

बड़ो भाग सारंगी, रहती प्रीतम पास।
मोहि कलेस बिछुड़न को, है प्रछन्न परकास ॥

ब्याह खंड

धन्य ब्याह जासों धन प्यारी। होइ कंत सँग खेलन हारी ॥
होइ सुहागिन प्रीतम पायें। पिय ढ़िग जाइ सीस निहुरायें ॥
माजें बइठि सरीर बनावै। पिउ रस लेइ पीउ रस पावै ॥
निर्मल होइ होइ सुकुवारू। पानो फूल को करइ अहारू ॥
माजें महँ पर चिन्त नेवारै। नित प्रीतम को जाप सँवारै ॥

सत्त सहित धन जो धरै, प्रीतम को अनुराग।
प्रीतम अपने हाथ सों, धन कहँ देइ सोहाग ॥

निर्प सयम्बर लगन धरावा। सब काहू कहँ नेवत पठावा ॥
भयेउ अनंद अगमपुर नगरी। भइ मुद चरचा नगरी सगरी ॥
बाजै लाग बियाहुत बाजा। जन परजन मन परमद बाजा ॥
रचा चित्र सों मंदिर द्वारा। लगेउ होन सो मंगल चारा ॥
सुभ माँडव छायन उपराहाँ। जासों होइ सुबर सिर छाहाँ ॥

ससि बदनी सब कामिनी, गावैं मंगल चार।
लीन्ह अनंद बसेरा, जगपत सदन मझार ॥

इंद्रावति माँजे महँ भई। चेत मालिन नियरें गई ॥
पूछा हियें लजानिय नाहीं। कैसें रहिये माँजेय माहीं ॥
कहा रहो मन निर्मल कीहैं। चित प्रीतम प्यारे पर दीहैं ॥
मन सों दूसर चिन्त नेवारी। पिउ पर ध्यान लगावहु प्यारी ॥
निस दिन मन को खेत बनावहु। पिय की प्रीत को बीरौ लावहु ॥

अलप अहारिहु जीयै, सुमिरहु पिय को नाउँ।
रहौं अकेली रात दिन, प्यारी माँजे ठाउँ ॥

माँजे मों इंद्रावति रानी। आइ असीसहिं सखिय सयानी ॥
देहिं असीस सखी हित प्यासी। रमा निरंत्र रहै तोहि दासी ॥
हो प्यारी बिलसहु पिय प्यारा। पिय मेरवत है सिर्जन हारा ॥
जो संजोग चहा तुम रानी। भेंट तेहिक अब आइ तुलानी ॥
ब्याहु नसेनी मिलन सदन को। मिलै सिघर अब मिलन सजन को ॥

सुख अनंद सों रानी, बेलवहु पिया संजोग।
भयें कंत संजोगिनि, आवै कर सुख भोग॥

सखिन असीस बचन सुनि रानी। कहा पिता घर रहिउँ भुलानी॥
खेलौं कोड़ में देवस बितायेउँ। कुछहूँ प्रीतम मरम न पायेउँ॥
खेलहिं बीति गई लरिकाई। बाढ़ेउ दरा होत तरुनाई॥
भूलिउँ खेल सखी के साथा। चढ़ेउ गगुन कर मानिक हाथा॥
गुन नहिं एक त्रास मोहिं हियरें। कैसे होब कन्त के नियरें॥

हौं अजान औ निर्गुनी, ज्ञान रूप वह पीउ।
हाथ छूछ गुन ज्ञान सों, सखी सोच महँ जीउ॥

मोहिं गुन बुद्ध सखी है नाहीं। यह नित सोचत हौं मन माहीं॥
जेहि गुन बुद्धि हाथ महँ होई। तापर प्यार करै सब कोई॥
रहत न बुद्धि पियें मद हाथा। या नित दोष लाग मन साथा॥
सत्रु चतुर जो जिउ कर होई। है भल मूढ़ मित्र सों सोई॥
गुन सों मानुष होत पियारा। गुन कर गाहक है संसारा॥

विष कहँ अमिय करत हैं, है ज्ञानी जो कोइ।
मूरख जन के हाथ सों, अमृत विष सम होइ॥

मानमती वह सखिय पियारी। बोली सुनिये राज दुलारी॥
यह जग बीच अहो रुपवन्ती। पिय जेहि रीझा सो गुनवन्ती॥
तुम पर अस रीझा पिय सोई। चाहा एक बार एक होई॥
पै यह लट औ आँख तुम्हारी। धरा बियोग बीच तेहि प्यारी॥
गुनि मति काँत सहज औ रूपा। सब तोहि रीझ कंत गुन भूपा॥

प्रीतम भै का भै हियें, तोहि नित बाउर पीउ।
तो लट औ अधरन सों, प्रीतम मन औ जीउ॥

रतन जोत पुनि बात निसारा। भयउ रतन सों मम अवतारा॥
एक सोच मोहि आवत सजनी। तासों सोचत हौं दिन रजनी॥
पिय औगुन लावै मोहि रामा। सानुष जन मन तेरो वामा॥

मानव मानुज उदर सों होई। मनुज उदर बिनु मनुज न कोई॥
पिंतु को परमद असु जब आवै। मात उदर तब नर भौ पावै॥

जनम मोर अस नाहीं, सखी सोच मैं लेउँ।
पिय ऐगुन जो लावे, कौन उतर में देउँ॥

कहा सखी कछु सोच न कीजै। ध्यान अमूरत ऊपर दीजै॥
तोहि करतार रतन सों कीन्हा। कर महँ रतन ज्ञान कर दीन्हा॥
जो करता कहँ करबेइ होई। हौ तेहि कहै होइ तब सोई॥
बिर्ध पुरुष और बन्ध्या नारी। तासों सुत पायन सत धारी॥
बाज पिता सों बालक कीन्हा। अमृत बचन जीभ मों दीन्हा॥

कीन्ह बिमल माटी सों, बहुर बुंद तेहि कीन्ह।
तासों रकत माँस करि, हाड़ फेर जिउ दीन्ह॥

अलख अमूरत सिर्जनहारा। मूरख जगत अलेख सँवारा॥
तेहि छाजत सिजै जस चाहै। दोऊ जग आपुहिं करता है॥
जनक जननि बिन सिजैं पारै। जातें चाहै जनम सँवारै॥
आद पिता के पिता न माता। ऐसें सिर्जा वह जिउ दाता॥
प्रीतम तोहि गुन ऐसो लोभा। लखै न ऐगुन देखै सोभा॥

मित्र मित्र को ऐगुन, पहिचानत गुनमान।
तेरो सकल अवस्था, गुन बूझै पिय प्रान॥

दायावंत है कंत तुम्हारा। है अपराध छिपावन हारा॥
जो गुनवंत अहै जग माहीं। सो ऐगुन हेरत है नाहीं॥
जेहि गुन सो गाहक गुन केरा। जेहि ऐगुन सो ऐगुन हेरा॥
आपुहिं बीच जो ऐगुन पावा। सो न कहा अपराध परावा॥
जो अपराध छिपावइ कहा। जोग बसन ताके तन रहा॥

जो मुख पर ऐगुन कहै, महा मित्र है सोइ।
ताको मित्र न जानये, ऐगुन राखै गोइ॥

राजकुँवर जब मोतिय पावा। सात सखा कहँ नेवत पठावा॥
मिर्तक रहे जीव उन पाए। धाये सकल अगमपुर आए॥

सात मित्र राजा कहँ भेंटा। सरसन बिछुरन संकट मेटा ॥
राजा के कालिञ्जर ठाऊँ। मित्र पराक्रमा प्रेम तेहि नाऊँ ॥
रहा बहुत दिन सों परदेसा। आये नगर धनी होइ भेसा ॥

देखि सून कालिंजरै, मरम कुँवर को पाइ।
रहि न सका राजा बिनु, लीन्ह जोग चित लाइ ॥

सुनि के राजकुँवर को जोगू। भा जोगी त्यागा सुख भूगू ॥
प्रेम के साथ लगै सैसंगी। रावल भेस लिहें सारंगी ॥
आगम संचर राखेन पाऊ। आगमपुर के भयेन बटाऊ ॥
सीस जटा धरि खप्पर हाथा। आये मिले राज के साथा ॥
भेंटेन प्रेम राय कहँ राजा। भा मन मुदित मोद उपराजा ॥

भयेउ जोग कों राजा, राजा वह गन माँह।
जगपत दाया दुर्म को, सब सिर आयेउ छाँह ॥

सीतल छांहा पावइ सोई। जो तप किहें जगत महँ होई ॥
जेहि मन करता की डर भारी। तेहि नित लागै दुइ फुलवारी ॥
दोऊ बीच दुइ झरना बहईं। सब फल फले दोऊ महँ रहईं ॥
औ सूवर नारी तेहि ठाईं। बनी रतन मोती की नाईं ॥
दूसर फल भल को है नाहीं। मन कोमल फल दोउ जग माहीं ॥

जो आवै करता दिसि, एक भलाई साथ।
वोही भलाई के सम, दस आवै तेहि हाथ ॥

कुँवर पास क्रीपा चलि आयेउ। जगपति दुकल समेत पठायेउ ॥
आइ कुँवर सँग क्रीपा बोला। क्रीपा रस भै भाखित बोला ॥
अहो लला जत साधेउ जोगू। तत अब मानहु परमद भोगू ॥
धरु सारंगी गहु क्रीपानू। उद्दित भयेउ मनोरथ भानू ॥
कंथा काढ़हु पहिरहु बागा। जोग मुकुट धरि बाँधहु पागा ॥

काढ़हु माला जोग को, पहिरहु मानिक हार।
दैव दिष्ट सनमुख भयेउ, होहु तुरंग सवार ॥

काढ़त माला कंथा राजा। चकचूहत मन मों उपराजा ॥
माला गनि सुमिरेउँ वह नाऊँ। काढ़त छोह भयेउ तेहि ठाऊँ ॥
जोग चिन्ह वह कंथा पाया। कढ़त उपेजेउ करुना माया ॥
छीपा बूझि कहा हो राजा। नन कंथा मन माला छाजा ॥
जोग न पूजै तजै न जोगू। पूजा जोग लेहु अब भोगू ॥
जल में दूहद आप गा, मारै मोद तरंग।
दुख को सागर बीतेऊ, अब सुख दिन को रंग ॥
दुकुल अहै मानुष की सोभा। चीर बाज सोभाधर को भा ॥
बिनु गुन काया अंबर घालैं। काठ कि खरग अहै परयालैं ॥
तत औ जोग के आहसि चेरा। करु पवित्र अंबर तन केरा ॥
बस्तर लेहु भोग के जोगू। जोग जोग अब है भल भोगू ॥
सुमिरन पूजा है तब ताईं। जब लग नहि निश्चै मन ठाईं ॥
है सब बस्तर मनिमय, मन मों करहु अनंद।
पहिरहु लखि कै सोभा, लाजै रवि औ चंद ॥
पहिरेउ अंसुक कुँवर सयाना। सुना सीर लखि रूप लोभाना ॥
औ सो सुंदर अंसुक सोहा। दूलह देख तजत मन मोहा ॥
जड़िता सेहरा सै छबि लहई। चौका चमकि चौंधि चखु रहई ॥
ऐसे रूप बिराजा राजा। देखि मयंक अरज मा लाजा ॥
चेल पहिर सब चेला सोहे। अस्व सवार भये मन मोहे ॥
सब साथी राजा सँग, भयेउ तुरंग सवार।
तारन मों तारापती, भयेउ कुँवर सुकुमार ॥
बाजन बाजै साजन साजैं। लाजन लाजैं काजन गाजैं ॥
संग न सोहैं अंग न मोहैं। अंग न गोहैं भंग न होहैं ॥
सबै रीझ देखै बर प्यारा। दृष्टि बिछावन मगु पर डारा ॥
बर कै अधर पान रँग राता। लखि मानिक औ लाल लजाता ॥
रहसि कहैं आगमपुर लोगू। धन धन बर इंद्रावति जोगू ॥
जो देखा सोइ रीझ, धन धन सब मुख होइ।
बिनु मोहें बिनु रीझे, एको रहा न कोइ ॥

सखी एक चितवन देहि नाऊँ। कहा कुँवरि सों मैं बलि जाऊँ॥
देखेउँ हरबर बर मैं तेरा। तो बर देइँ देव जिउ मेरा॥
सुनि इंद्रावति मन भा चाऊ। धवराहर दिस ढारा पाऊँ॥
सखी सहित वह प्रान पियारी। चढ़ि धवराहर दृष्टि पसारी॥
कन्यापति सब लोगन माहीं। दृष्टि ताहि दिस आवहिं जाहीं॥
राजकुँवर मुख ऊपर, रहेउ सकल छबि छाइ।
आगमपुर की दारा, देखि रहीं मुरझाइ॥
चितवन कहेउ कि देखहु रामा। वह तेरो दूलह अभिरामा॥
पूरन रूप संपदा जाको। करन रहे चित चितवन ताको॥
आज निबेसन तें सुख पाया। सोभा अधिक चढ़ी तेहि काया॥
देखत प्रीतम मुख वह रानी। प्रेमा गोद गिरी मुरुछानी॥
मान सखी को रहेउ न प्रानू। कन्यापति चखु मारेउ बानू॥
छोड़ेउ धीरज धीरजा, चेत न चेता देह।
आप आप कहँ वोहीं, मारेउ प्रेम अनेह॥
देखि अचेत भईं सब बाला। अँचयन चोखा दरसन हाला॥
सबन कहा यह मानुष नाहीं। अहै महादेवत जग माहीं॥
रहा न चेत पाँव औ माथा। नींबू काटत काटेन हाथा॥
मानुष रूप देखि अस होई। रहेउ न चेत बीच जब कोई॥
करता जा दिन दरस देखावै। जैसों होइ नहीं कहिं आवै॥
कीन्ह रूप मानुष को, अपने रूप समान।
यातें ज्ञान हरत है, मानुष रूप निदान॥
प्रेमा जाप चेत जब पायेउ। इंद्रावति कहँ तुरत जगायेउ॥
पूछा मुरुछानी केहि लेखें। कित कुम्हिलाइ कमल रवि देखें॥
आज अनन्द रूप प्रगटाना। छाजै तुम्हैं कहा मुरुछाना॥
प्रेम उतरि कुँवरी तब दीन्हा। रवि सनेह अंबुज मय लीन्हा॥
मित्र बदन सोभा बर सोहै। नहीं अचर इंद्री बर मोहै॥
प्रीतम हित यह जग मों, जा धन के मन प्रान।
दरस समै आनन्द सों, मुरुछै प्रिया निदान॥

पाय दरस मुदुता भै रानी। तन न समाय चीर हुलसानी ॥
हुलसे नैन देखि पिय सोभा। हुलसे स्वाँत पाय छबि लोभा ॥
पिय को बदन जीउ अस पाया। हुलसे रतन जोत सब काया ॥
दिनमनि रूप गगन उपराहाँ। देखि कमल निकसे जल माहाँ ॥
पीउ बदन सोभा सों भावा। जिय दरपन इंद्रावति पावा ॥

इंद्रावति मन उपवन, आस कली बिकसान।
मन मों रहेउ न बिसमों, आइ अनन्द समान ॥

सखि एक होइ सचेत पुकारा। धरती उवा सुरुज उँजियारा ॥
एक कहा मानुष नहिं होई। यह सुर भेस धरे है कोई ॥
एक कहा रजनीपति आही। मेडर अबहिं न छैंका ताही ॥
एक कहा यह सोभा धारी। जगत कलेवर जिउ है प्यारी ॥
जेहि जस रहेउ दृष्टि औ ज्ञानू। तैसा देखा कीन्ह बखानू ॥

कुँवर सनेह सकल मन, उपजेउ रूप बिलोकि।
लोचन चितवन मगु सों, एक न पारै रोकि ॥

सखिन बचन सुनि कै वह रानी। समुझा आगम सोच समानी ॥
कहा सखिन सों प्रीतम प्यारा। है मोहिं संग लगावन हारा ॥
भयें बियाह गवन पुनि होई। नइहर के बिछुड़ैं सब कोई ॥
परदेसी की लालप अहई। कहाँ एक थल पर थिर रहई ॥
परदेसी है कंत हमारा। देस चलै को राखै पारा ॥

रहनो अंत न होइहै, नइहर देस मँझार।
परदेसी है सहचरी, लोना पीउ हमार ॥

कहेन सोच रानी केहि लागें। यहि दिन है हम सब के आगें ॥
हम रोये जनमत सनसारा। जनम देस कित रहन हमारा ॥
नइहर नगर अन्त नहिं रहना। सीखु सोइ जेहि सासुर लहना ॥
जनम निबाह भलो पिय पासा। बिनु पीतम न लहै कबिलासा ॥
मिलै नरक जो दरसन पीकों। नरक भलो बैकुंठ न नीको ॥

मिलै तहाँ हो प्यारी, नइहर देस पियार।
जेहि अस्थान बसेरा, चाहै पीउ तोहार ॥

जब बनवास राम कहँ भयऊ। सीता सती गोहेन महँ गयऊ ॥
सदन नरक भा पिय बछुरातें। बन बैकुंठ भयेउ तेहि जातें ॥
पिय बिनु फीका सुखरंग जीका। पिय गोहन नीका सुख तीका ॥
जो प्रीतम सँग प्रीत लगावा। सो दोउ जगत बीच सुख पावा ॥
अज्ञा माथे ऊपर लीन्हा। पिय कर अज्ञा भेंट न कीन्हा ॥
पीउ जहाँ है सुख तहाँ, जहाँ न प्रीतम होइ।
तहाँ सुखद को दरसना, कहाँ बिलोकै कोइ ॥

बनि बरात द्वारे जब आयेउ। अमम ठाउँ बइठै कहँ पायेउ ॥
बइठेउ कुँवर पाट उपराहीँ। ऊपर सीतल साखी छाहीँ ॥
सुर नर देखि आसिषा देहीं। निरखैं रूप रहसि फल लेहीं ॥
जे तो मुख तजि साधा जोगू। वे तो अलख दिहा सुख भोगू ॥
थोरे दिन का कुँवर सलोना। लोना अम्बुक कीन्हेउ टोना ॥
रूपवंत राजा कुँवर, सकल बरातिन माँह।
सुंदरता पति होइ रहा, मान पाट उपराँह ॥
जेवन बने सहस परकारा। जेवैं नित भा निर्प हँकारा ॥
बइठे लोग आइ सब तहाँ। दीन्ह ठउर जेवै नित तहाँ ॥
भोजन केतो सुंदर होई। उदर भरे पर खाय न कोई ॥
त्रिषा छुधा पर अँचवै खाई। तब जल जेवन करै भलाई ॥
छुधावन्त कहँ देहु अहारा। देइ नाक फल सिरजन हारा ॥
कहत न पारै रसना, सब पकवान बखान।
सै सवाद एक कवर मों, मिलै खात पकवान ॥
बराबरी सों करइ न पारा। बराबरी सूरज ससि तारा ॥
जत जग बीच भले पकवानू। रहे सकल कित करउँ बखानू ॥
बरनत रसना लोनी होई। जानै सो भच्छै जो कोई ॥
बिनै किहेन राजा कै लोगू। है पकवान न तुम सब जोगू ॥
जो पवित्र भोजन करतारा। दीन्ह तुम्हें सो करहु अहारा ॥
जेंवै लागे जेवनहिं, लै दाता को नाउँ।
एक कवर में पावें, सै सँवाद तेहि ठाउँ ॥

भा अशा जब बाजन बाजा। रजित चला बियाहै राजा ॥
तूर दमामा बाजै लागे। अम्बर गये सबद सुर जागे ॥
माड़ौ के तर कुँवर पहूँचा। रहा गगन लग माड़ौ ऊँचा ॥
हरषि गीत नारी सब गावैं। घर घर सों सब देखै आवैं ॥
पर त्रित दिष्ट परत भल नाहीं। तैसेइ पर पूरुष उपराहीं ॥
रहा उदित होइ रूप सों, दूलह भान समान।
वोहि समय माँड़ौ तर, आयेउ चंद्र छिपान ॥
उश्नरसम कहँ देखत नियरे। रहसा नीरज अपने हियरें ॥
लाज मयंक देखि सकुचाना। परगट होइ नाहिं बिकसाना ॥
तन तन सों तो रहा वियोगू। मन मन सों तो रहा सँजोगू ॥
दुइ मन प्रीत रीत सो जानै। अपने नेह जो मन मों आनै ॥
रवि दूलह मुख परगट कीन्हा। ससि दुलहिन मुख पर पट लीन्हा ॥
पढ़ेन वेद बामन सब, बर कन्या के नाउँ।
रहेउ पर्न नैरित्त जो, भयेउ सकल तेहि ठाउँ ॥
भा बियाह कन्या बर साथा। आयेउ सुख को मानिक हाथा ॥
भयेउ कुँवर जगपत को प्यारा। सब काहू मिलि आइ जोहारा ॥
दाया सों आगमपुर ईसू। डरा छाँह कुँवर के मीसू ॥
जैसे राजा त्याग तप कीन्हा। बैसो अलख भोग सुख दीन्हा ॥
पायेउ बहुत दास औ दासी। सेवक भये अगमपुर वासी ॥
भयेउ नगर वासी कहँ, कुँवर प्रान को प्रान।
सबतें जोरेउ मित्रता, कुँवर सनेह निधान ॥
रहिन सखी सुन्दर जहँ ताईं। इंद्रावति के नियरे आईं ॥
सकल सखी मिलि दीन्ह असीसा। प्रीतम छाँह रहै तोहि सीसा ॥
इहइ लाभ बियाह सों होई। तोहि लाभ हरषित सब कोई ॥
जुग जुग रहै सोहाग तुम्हारा। चाहै तुम कहँ कन्त पियारा ॥
तोहि गुन ऊपर रीझा रहई। कोमल बात प्रीत की कहई ॥
सदा रहै तोहि बस महँ, करता के परताप।
तोहिं पिय को सुमिरन रहै, पियहिं तुम्हारो जाप ॥

अधरन मों मुसकानी रानी। होइ अभिमानी बोली रानी ॥
है मोहि रूप बिमल उँजियारा। बस मँह रहै सो प्रीतम प्यारा ॥
ऐगुन भये न रूठै देऊँ। तनु मुसुकाय हाथ कै लेऊँ ॥
अंमन होइ करउँ असमानू। प्रीतम देइ हाथ महँ प्रानू ॥
पाहन समा कठोर जो होई। करउँ सिंगार होइ जल सोई ॥
अब किछु चिन्ता है नहीं, प्रीतम भा मोहिं हाथ।
अंमन कबहुँ न होइ है, नित रहि है मोहिं साथ ॥
सखियन अँगुरी दाँतन दाबा। प्यारी गरब न हम कहँ भावा ॥
मैं न भली मैं भल जो भाखा। तेहि करतार दूर कै राखा ॥
अगिन सीस जो ऊपर करई। देखहु उनत नीच होइ परई ॥
माटिय सीस नीच कै परई। तबहिं अनेक लाभ सों भरई ॥
नयन आप कहँ देखत नाहीं। सूझि परा तेहि सब जग माहीं ॥
सो डूबा जो भाखा, मैं जग सिर्जनहार।
पार भयेउ जेइ जाना, है एकै करतार ॥
प्रीतम आपन नाहिय प्यारी। अहै समुद्र लहर सों भारी ॥
सेवा नाव चढ़ै जो कोई। पार समुद्र सों उतरै सोई ॥
नाव चढ़त सुमिरै एक नाऊँ। कहै उतारहु मोहि सुभ ठाऊँ ॥
करता आयसु बोहिम पायेउ। तबहिं समुद के ऊपर धायेउ ॥
पिय सों गरब न कबहूँ कीजै। आये सुमाथैं ऊपर लीजै ॥
गरब बात तुमत बोलिउ, करता करै न कोप।
फिरु प्यारी अभिमान सों, ऐगुन होइ न लोप ॥
कै घट काज फिरा जो कोई। मनु घट काज न कीन्हा सोई ॥
खुला दुवारा है तब ताईं। रवि न उअै पच्छिम जब ताईं ॥
आवहीं फिरु मानै करतार। जब लग खोल फिरै को द्वारा ॥
हम मद पियब तियागा प्यारी। पै तुम्हरी अँखियाँ मतवारी ॥
हम कहँ खींच सुरा दिस आनैं। ताहि कहैं हम नैन न मानै ॥
इंद्रावति समुझा बचन, धरती लायेउ भाल।
तुम करतार जगत के, दाता दीनदयाल ॥

ए प्यारी सुमिरत हौं तोहीं। दरसन बेग देखावहु मोहीं॥
धन आनंद राज सुख आही। एकै दाया दरसन चाही॥
बहुत वियोग सुरा मैं पीया। संजोगी मद चाहत हीया॥
संजोगी प्याला अब दीजै। अधर सुधा मतवाला कीजै॥
आज ठौर आखन मों देऊँ। होइ निसंक अंग भरि लेऊँ॥

मोहिं संजोग सलील को, है प्रीतमा पियास।
अनुकम्पा कै दीजै, पूजै मन की आस॥

भइउ सपूरन आधी कथा। मानहुँ ज्ञान सिंधु मैं मथा॥
तीन सहस चौपाइय भईं। देखु आई फुलवारिय नईं॥
पुनि आगें जो सुख सों रहऊँ। तीन सहस चौपाइय कहऊँ॥
हौं अबहीं थोरे दिन केरा। बात बहुत दिन कर मैं हेरा॥
विद्या ज्ञान बहुत जेहि होई। अर्थ छिपागे बूझै सोई॥

नूर महम्मद यह कथा, अहै प्रेम की बात।
जेहि मन सोई प्रेम रस, पढ़ै सोइ दिन रात॥

शेख़ निसार

जीवनवृत्त

हिंदी के मुसलमान कवियों में हम यह विशेषता देखते हैं कि वह अपनी रचनाओं में अपना संक्षिप्त व्यक्तिगत परिचय तथा रचना काल आदि का कुछ व्योरा दे देते हैं जिससे संपादक को बड़ी सुविधाएँ हो जाती हैं। काश की यही प्रथा हिंदी के अन्य कवियों में भी होती तो आज गड़े मुर्दे उखाड़ने में जो दिक्कतें हो रही हैं; विभिन्न कवियों के काल निर्णय के संबंध में विद्वानों में जो भीषण मतभेद की सृष्टि हुई हैं, और समालोचकों में आये दिन जो व्यर्थ का झगड़ा और विद्वेष हो रहा है वह न होता, और समय तथा विद्वत्ता का इतना दुरुपयोग न होता। तमाशा यह है कि तुलसी, भूषण आदि हमारे अधिकांश प्रमुख महाकवियों के ही संबंध में अभी तक सर्वसम्मति से सब बातें नहीं तय हो पाई हैं। अस्तु,

सौभाग्य से इन अख्यानक कवियों ने अपना परिचय तथा रचना काल का स्पष्ट उल्लेख कर बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है।

रचनाकाल

कवि निसार का रचनाकाल देहली के अंतिम मुग़ल सम्राट् शाह आलम के समय में था।

आलम शाह हिंद सुलताना। तेहि क राज यह कथा बखाना ॥

× × ×

साथ ही यह भी लिखते हैं कि उस समय अवध में नवाब आसिफ़ुद्दौला राज्य करते थे। और उनके हिंदू मंत्री बड़े न्यायनिष्ट तथा राजनीतिकुशल थे।

चहुँ दिसि अंध धुंध सब छावा। अवध देस कौं दियो बिहावा ॥
येहिया खाँ आसिफ़ उद्दौला। तासु सहाय अहर नित मौला ॥

हिंदू सचिव वह बली नरेसा। तेहि के धरम सुखी सब देसा॥
तेहि के राजनीत जग छाए। धरम दान को सरवर पाए॥

× × ×।

निवासस्थान और वंश

शेख़ निसार का जन्म अवध के अंतर्गत शेखपुर नामक एक क़सबे में हुआ था। डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर से पता चलता है कि शेख़पुरा नाम का एक क़सबा ज़िला रायबरेली परगना बड़रावाँ और तहसील महराजगंज में है। यहाँ शेख़ों की अच्छी बस्ती है। पिछली मर्दुमशुमारी में वहाँ शेख़ों की संख्या ८,७१९ थी।

कवि निसार ने कहा है कि शेख़पुर उनके पूर्वज शेख़ हबीबुल्ला द्वारा बसाया गया था।

शेखपुर इत गाँव सुहावा। शेख निसार जनम तहँ पावा॥
शेख हबीबुल्लाह सुहाये। शेखपूर जिन आन बसाये॥

× × ×

फिर आगे चल कर कवि कहता है कि सम्राट् अकबर के समय में वे (शेख़ हबीबुल्लाह) देहली से अवध आये और बीस वर्ष तक वहाँ रहे। इनके पुत्र शेख़ मुहम्मद हुए। इनके पुत्र का नाम गुलाम मुहम्मद था और यही शेख़ निसार के पिता थे। फिर निसार ने अपने पूर्वज शेख़ हबीबुल्लाह को प्रसिद्ध मौलाना रूम का वंशज माना है।

पातशाह अकबर सुलताना। तेहि के राज कर जगत बखाना॥
अवध देस सूब होय आए। बीस बरस तहँ रहे सुहाए॥
तेहि के शेख मुहम्मद बारा। रूपवंत भू के अवतारा॥
ता सुत गुलाम मुहम्द नाऊँ। सो हम पिता सो ताकर गाऊँ॥

वंस मौलवी रूम के, शेख हबीबुल्लाह।
जेहि के मसनवी जगत महँ, अगम निगम अवगाह॥

× × ×

ग्रन्थ

अपनी शिक्षा-दीक्षा तथा ग्रन्थ रचना आदि के संबंध में भी कवि स्वयं पर्याप्त सामग्री दे देता है। अरबी, फ़ारसी, तुर्की, और संस्कृत आदि कई भाषाओं में कवि की गति थी और इन्होंने सात ग्रन्थ रचे थे जिनमें तीन गद्य, एक दीवान, एक अलंकार ग्रन्थ तथा एक भाखा काव्य ('युसुफ़-जुलेखा') मुख्य थे। कवि की पंक्तियों से यह व्यक्त होता है कि इनके ग्रंथ फ़ारसी, अरबी और संस्कृत में भी थे, पर इनका हमें अभी तक पता नहीं लग सका है।

सात गरंथ अनूप सुहाए। हिंदी औ पारसी सोहाए॥
संस्कृत तुरकी मन भाए। अरबी और फारसी सुहाए॥
हीर निकार के गेहूँ खाने। रस मनोज रस गीत बखाने॥
औ दिवान मसनवी भाखा। कर दोइ नसर पारसीराखा॥

कवि का समय

निसार कवि कहते हैं कि बुढ़ौती में उन्होंने युसुफ़ जुलेखा लिखी। सात दिन में वह ग्रंथ लिखा गया और उस समय उनकी अवस्था सत्तावन वर्ष की थी। ग्रन्थरचना का समय १२०५ हिजरी दिया हुआ है। प्रतिलिपि में संवत् १८२७ पर हिसाब लगाने पर यह संवत् १८४७ होता है क्योंकि उसके अनुकूल जो ईसवी संवत् दिया गया है वह 'सतरह सै नब्बे ईसा का।' नब्बे में सत्तावन जोड़ने से १८४७ ही बैठता है। स्पष्ट है कि यहाँ लिपिकार ने भूल की है। फ़ारसी लिपि में 'सैंतालीस' का 'सत्ताइस' पढ़ा जाना या लिखा जाना दोनों ही संभव है। जायसी के संबंध में भी ठीक इसी तरह की भूल हुई है जहाँ कि ९४७ हि० का ९२७ पढ़ा गया था। अस्तु इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का जन्म १८४७—५७=संवत् १७९० में मानना चाहिए और तदनुसार ई० सन् १७२२ इनकी जन्म तिथि हुई।

वार वैस महँ कथा बनाए। हीर निकार अनूप सोहाए॥
रस मनोज रस गीत सोहावा। सभै बात का भेस बतावा॥
सत्तावन बरस बीते आयू। तब उपज्यो यह कथा क चारू॥

सात दिवस महँ कथा समापत। दुरमति नाम रहयो सो संमत ॥
हिजरी सन बारह सै पाँचा। बरनेउँ प्रेम कथा यह साँचा ॥
अट्ठारह सै सत्ताईसा। संवत् विक्रम सेन नरेसा ॥

× × ×

आलोचना

काव्य रचना का निमित्त

'यूसुफ़-ज़ुलेखा' काव्य की रचना का संबंध कवि के जीवन की एक दुःखद घटना से है। काव्य के अंत में कवि ने इस करुण घटना का उल्लेख किया है। इनके एक मात्र पुत्र लतीफ़ की मृत्यु २२ वर्ष की अवस्था में हो गई। कवि कहता है कि उसके निधन से मैं पागल सा हो गया था। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए उसने मुझे रोते देखकर कहा था कि पिता तुम रोते क्यों हो, बड़े लोगों को सदा दुःख सहना पड़ता है। नबी यूसुफ़ को दुःख भोगना पड़ा था, राम को दुःख सहन करना पड़ा। दुःख में ही मनुष्य की परीक्षा होती है। आगे-पीछे एक दिन सबको जाना है। जबसे उसकी मृत्यु हुई मैं नित्य याक़ूब की याद करता था। उसी की भाँति पुत्र-शोक में अकालवृद्धत्व को प्राप्त हुआ। उसी के विरह में रो-रोकर मैंने यह गाथा लिखी। संसार के रहस्य का कुछ पता नहीं। अब तो ईश्वर मुझे जल्दी ही मौत दे और मेरे सांसारिक दुःखों का अंत हो। मैं तो रहूँगा नहीं पर यह कहानी सदा रहेगी। जो इस कथा को पढ़ें सुनें उनसे बिनती है कि मुझे आशीर्वाद दें कि मेरी सद्गति हो। कथा के अंत का यह भाग करुण रस की कविता का एक अपूर्व नमूना है। कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

जब तें जनम लीन्ह जग माहीं। छुटि दुखि अवर सो देख्यों नाहीं ॥
अवर दुःख मैं सब कुछ सहा। भयो एक दुख बाउर महा ॥
पुत्र अनूप दई मोहिं दीन्हा। रूप अनूप बुधि आगे कीन्हा ॥
बाइस बरिस रहा जग माहीं। छुट विद्या उन जान्यो नाहीं ॥
नाम लतीफ अनूप सोहाये। सभ गुन ज्ञान दई अधिकाये ॥

बाइस बरिस के बैस महँ, छाँड़ि दीन्ह उन देह।
मुरत अनूप गुलाब सो, जाय मिले पुन खेह॥
तव मैं भय बाउर भेसा। करौं सदा अँतकाल अँदेसा॥
जब मैं लतीफ कर मरम बिसेख्यों। तप संपत अमिरथा देख्यौं॥
रोम रोम यह बिरह बखानी। कोउ न रहा जग रहै कहानी॥
देहु दया मोहै कब मोखू। हरहु मोर अन अवगुन दोखू॥
पढ़ै प्रेम कै अच्छर कोई। देइँ असीस मोर गति होई॥
हम न रहब आखर रहि जाई। सब हि लोग होइहि सुखदाई॥

× × ×

सात दिवस में कथा सोहाई। कीन्ह समापत दीन्ह बनाई॥

इत्यादि।

कवि निसार सैयद इंशाअल्ला ख़ाँ के समसामयिक थे। इसका पता भी आभ्यंतरिक प्रमाणों से मिल जाता है, साथ ही यह भी पता चलता है कि 'हंस-जवाहिर' नामक मसनवी काव्य भी इनके समय में प्रचलित था।

हंस जवाहिर प्रेम कहानी। कहा मसननी अँविरत बानी॥
हंसा कहे जहाँ लह भेदू। औ सब कथा जहां लह वेदू॥
झूठ ज्ञान सम तिन मन भाषा। अब यह साँच कथा चित लागा॥

× × ×

कथा का सारांश

यूसुफ़ जुलेखा की कथा का आधार है प्रसिद्ध फ़ारसी काव्य 'यूसुफ़-जुलेख़ा'। कवि निसार ने इसको भारतीय जामा पहिनाने की चेष्टा की है पर इस चेष्टा में यह अधिक सफल नहीं हो सके हैं। मूल कथा यों है।

नबी याक़ूब किनआँ नगर में रहते थे जो कि 'नूह' साहब का बसाया हुआ था। नबी 'लूत' की लड़की से इसहाक़ ने शादी की थी जिससे 'ईस' और 'याकूब' नाम के दो बेटे पैदा हुए थे। याकूब की सात बीबियाँ थीं और उनसे बारह बेटे हुए। इनकी 'रोहेल' नाम की बीबी से 'यूसुफ़' नामक पुत्र और 'दुनियाँ' नाम की कन्या हुई। याकूब यूसुफ़

को बहुत ज़्यादा चाहते थे और इससे अन्य सब लड़के इनसे भयानक ईर्ष्या करते थे। बात यहाँ तक पहुँची कि शेष सब भाइयों ने मिलकर यूसुफ़ का प्राणांत करने का निश्चय किया। इस विचार से जब वे जंगल में भेड़ चराने जाने लगे तो पिता से कह सुनकर यूसुफ़ को भी ले गये। वहाँ इन लोगों ने उसे कुएँ में ढकेल दिया।[1] उसका एक कुरता छीनकर बकरी के ख़ून में रंग दिया और घर में पिता के सामने कुरता पेश करते हुए कहा कि यूसुफ़ को भेड़िये ने मार डाला।

उधर यूसुफ़ कुएँ में पड़े रहे। एक दिन कुछ सौदागर उधर से गुज़रे। इनमें एक ने पानी निकालने को डोल डाला जिसे यूसुफ़ ने पकड़ लिया और तब सबों ने इन्हें मिलकर बाहर निकाला। सौदागरों के सरदार ने यूसुफ़ के रूप और कांति पर मुग्ध हो इन्हें अपने साथ ले जाना चाहा, पर इतने ही में इनके हत्यारे भाई भी उधर आ पहुँचे और उन्होंने कहा कि यह मेरा ग़ुलाम है और भाग आया है तुम चाहो तो इसे ख़रीद सकते हो। सौदागर ने मुँह माँगा दाम देकर यूसुफ़ को ख़रीद लिया। इस प्रकार इन भाइयों ने यूसुफ़ को अपने राह के कंटक के समान दूर तो किया ही, साथ ही अच्छी ख़ासी रक़म भी वसूल की।[2] ख़ैर सौदागर ने मिस्र की राह ली।

उधर मग़रिब (पश्चिम) देश में तैमूस नामक एक सुलतान राज्य करता था जिसके ज़ुलेखा नाम की एक अनिंद्य सुंदरी बेटी थी। संसार में कोई उसके समकक्ष नहीं थी। दुनियाँ के कोने-कोने से बड़े से बड़े

---

[1] इस स्थल की यूसुफ़ की कही हुई बातें और उसका व्यवहार ईसा या मुहम्मद की उच्चता को याद दिलाते हैं; साथ ही यहाँ की कविता भी उच्च कोटि की बन पड़ी है।

[2] बिदा होते समय फिर यूसुफ़ ने बड़े करुण शब्दों में केवल यही कहा कि भाई मेरा अपराध क्षमा करना और कभी-कभी याद करना, और पिता को कहना मेरे लिये दुःखी न हों। पर भाइयों ने भेद खुलने के डर से यूसुफ़ का मुँह बंद कर दिया।

बादशाहों के विवाह के प्रस्ताव आये पर सुलतान ने सबको कोरा जवाब दिया।

इधर .ज़ुलेखा ने स्वप्न में यूसुफ़ को देखकर मन ही मन उसे ही पति बनाने की प्रतिज्ञा की। पर उससे मिलने का कोई उपाय न देख वह दिन-दिन घुलने लगी। वैद्य, हक़ीम सब थक गये पर उसकी अवस्था शोचनीय हो चली। उसकी धाय बड़ी चतुर थी और .ज़ुलेखा ने उससे अपनी सब बातें प्रकट कर दीं। उसने राय दी कि यदि फिर कभी स्वप्न में उस पुरुष के दर्शन हों तो उसका 'नाँव गाँव' सब पूछ लेना। और हुआ भी ऐसा ही। फिर जब स्वप्न हुआ तो बहुत ज़िद करने पर यूसुफ़ ने कहा कि मिस्र के सचिव के यहाँ आवो तो मुझसे भेंट होगी। धाय ने यह भेद सुलतान पर प्रगट किया कि यदि आप अपनी लड़की की ज़िंदगी चाहते हैं तो मिस्र के वज़ीर के साथ इसकी शादी कर दीजिए।

सुलतान बड़ा दुःखी हुआ, क्योंकि वज़ीर की हैसियत उससे कहीं नीचे थी। पर आख़ीर क्या करता। पैग़ाम भेजा गया और मिस्र के वज़ीर ने बहुत झेंपकर इसे मंज़ूर किया और शादी हुई। .ज़ुलेखा रुख़सत हुई। रास्ते में धाय से इसने आग्रह किया कि एक बार 'उन्हें' दिखा दो। पर जब उसने पति को देखा तो मानों आसमान से गिरी। वह तो स्वप्न में आनेवाला वह सुंदर पुरुष नहीं था। अब घोर संकट इसके सामने उपस्थित हुआ। बात यह हुई थी कि स्वप्न वाले मनुष्य ने यह तो कहा नहीं था कि मैं मिस्र का वज़ीर हूँ। यह तो सिर्फ़ उसके यहाँ मुलाज़िम था। पर .ज़ुलेखा ने समझा कि वही वज़ीर है। इसी ग़लतफ़हमी पर कथा की सारी दिलचस्पी निर्भर करती है।

ख़ैर, आख़िर ज़ुलेखा मिस्र के वज़ीर के हरम में दाख़िल हुई। पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिये उसने धाय की सलाह से एक उपाय सोच निकाला। वह बीमारी का बहाना करके पड़ रही। धाय ने वज़ीर को समझा दिया कि इसको यह रोग है। इस तरह से बड़े दुःख के साथ ज़ुलेखा के दिन कटने लगे।

इधर वह सौदागर यूसुफ़ को लिये हुये मिस्र पहुँचा। वहाँ

उसने गुलामों के बाज़ार में बेचने के लिए यूसुफ़ को खड़ा किया। उसका अपूर्व रूप-सौंदर्य देख कर सारा मिस्र हैरान था। सारा देश उसकी एक झलक देखने के लिए उमड़ा पड़ता था। बड़ी-बड़ी क़ीमतें लग रही थीं। ऐसी शोहरत सुन धाय को लेकर ज़ुलेखा भी उसके दर्शन को चली। देखते ही उसने पहचान लिया कि यह तो वही पुरुष है जिसने स्वप्न में अपनी सूरत दिखा उसका मन हर लिया था। ख़ैर, धाय की सलाह से यह तय पाया कि वज़ीर से कह कर इस दास को ख़रीदवाया जाय। वज़ीर ने ज़ुलेखा को ख़ुश करने के इरादे से यूसुफ़ को ख़रीद कर उसकी सेवा के लिए रख दिया।

अब ज़ुलेखा कुछ ख़ुश रहने लगी। धीरे-धीरे ज़ुलेखा अपने मनो-भाव यूसुफ़ पर प्रगट करने लगी पर वह इस पर कुछ ध्यान न देता। वह अधिकतर उदासीन ही रहता। पर क्रमशः ज़ुलेखा की चेष्टाएँ बहुत स्पष्ट होती गईं और एक दिन यूसुफ़ बहुत कामातुर हो गया और ज़ुलेखा को पकड़ने को बढ़ा पर उसी समय उसके पिता की मूर्ति उसके सामने खड़ी हो गई। वह तुरत सँभल गया और उल्टे पाँव भागा। पर भागते समय ज़ुलेखा ने उसका कुरता पकड़ लिया और झटके में वह फट भी गया पर यूसुफ़ निकल भागा। इससे ज़ुलेखा ने अपने को अपमानित समझ कर वज़ीर से यह शिकायत कर दी कि यूसुफ़ की निगाह ठीक नहीं है, उसने उस पर हमला किया था। प्रमाणस्वरूप उसने उसके फटे कुरते का टुकड़ा पेश किया। पर कुरते के पीछे का हस्सा फटा देख वज़ीर ने असल बात का पता लगा लिया पर ऊपर से चुप रहा और ज़ुलेखा का मान रखने के लिए यूसुफ़ को सिर्फ़ कारा-वास का दंड दिया।

अब ज़ुलेखा को अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। वह बहुत संतप्त रहने लगी। कारागार में यूसुफ़ के लिए भाँति-भाँति के प्रयत्न गुप्त रीति से करने लगी पर वह इन सब हरकतों से बिलकुल उदासीन रहने लगा और कभी ज़ुलेखा की चेष्टाओं पर आकर्षित न होता था।

एक दिन एक सवार किनआँ नगर से मिस्र आया। यूसुफ़ ने

कारागार की खिड़की से उसे देखा और अपने देश का आदमी पहचान कर उसे बुलाया और अपने नगर और अपने पिता का हाल चाल पूछना चाहा, पर वह यूसुफ़ को न पहचान कर इसकी बातों पर कुछ ध्यान न देकर आगे बढ़ना चाहा पर न जाने किस दैवशक्ति से उसके ऊँट के पाँव ही आगे न बढ़ते थे। आख़िर उसने यूसुफ़ से कहा कि मैं व्यापार करने मिस्र आया हूँ। यूसुफ़ ने पिता के लिये अपना संदेश कहा और कहा कि वे ईश्वर से प्रार्थना करें कि मैं जेल से छुटकारा पाऊँ। उसने लौटकर याक़ूब से यह संदेश कहा भी। उधर यूसुफ़ ने कई पत्र पिता के पास भिजवाये पर कोई भी उनके पास तक न पहुँचा।

इधर मिस्र में ज़ुलेखा की बड़ी निंदा होने लगी। सब स्त्रियाँ उसे दुरचारिणी कहतीं। आख़िर जब ज़ुलेखा से न रहा गया तो उसने शहर की बहुत सी औरतों को दावत दी और सब को एक कतार में बैठा कर सब के सामने एक-एक तरबूज और एक-एक चाकू रखवा दिया। जब सब तरबूज काटने में लगीं तब ठीक उसी समय ज़ुलेखा ने यूसुफ़ को बुला कर उनके सामने से गुज़ारा। सब उसके रूप को देख कर इतनी तन्मय हो गईं कि सबों ने चाकू से अपना हाथ काट डाला। इस प्रकार ज़ुलेखा ने यह सिद्ध कर दिया कि यूसुफ़ का रूप ही ऐसा है कि उसे देख कर कोई अपने बस में नहीं रह सकता। आख़िर यूसुफ़ के चले जाने पर सब स्त्रियाँ बड़ी लज्जित हुईं और सबों ने ज़ुलेखा से क्षमा माँगी।

यूसुफ़ सात साल तक जेलख़ाने में सड़ता रहा। ज़ुलेखा उसे मुक्त कराने के उपाय सोचा करती पर उसकी कोई तरक़ीब कारगर न होती थी। इसी बीच मिस्र के सुलतान ने एक बड़ा बेढब सपना देखा जिसका कोई अर्थ ही न बता सकता था। यूसुफ़ के पाण्डित्य और अनोखी सूझ-बूझ की बड़ी शोहरत थी। आख़िर इस स्वप्न-फल के विचार के लिए सुलतान ने इन्हें तलब किया। इन्होंने बताया कि इसका अर्थ यह है कि सात साल तक वर्षा न होगी और यदि शांति का समुचित प्रबन्ध किया जायगा तो प्रजा के प्राण बँच जायँगे। इस पर सुलतान ने समुचित

प्रबन्ध करना शुरू किया और बहुत बड़े पैमाने पर अन्न वस्त्र एकत्रित करने लगा। इसी सिलसिले में सुलतान ने यूसुफ़ के क़ैद होने का कारण पूछा और प्रसंगवश ज़ुलेखा ने अपनी सारी आत्म-कथा साफ़-साफ़ सुलतान पर प्रगट कर दी। मंत्री ने क्रोधवश ज़ुलेखा को त्याग दिया।

पर इस सुलतान ने यूसुफ़ को ही इस मंत्री के पद पर बड़े आदर से बैठाया। इधर ज़ुलेखा तप करने लगी। मंत्री होने पर सात साल तक अच्छी खेती हुई। यूसुफ़ ने बहुत सा अन्न तथा खाद्य द्रव्य इकट्ठा कर लिया। इसके बाद घोर दुर्भिक्ष का समय आया चारों ओर त्राहि-त्राहि मची। इस अकाल के पाँचवें साल वह मिस्र का पुराना वज़ीर मर गया। यूसुफ़ का मान और भी बढ़ गया और सुलतान ने सारा राज-काज इन्हीं के हाथ सौंप दिया।

इधर यूसुफ़ की जन्म भूमि किनआँ में भी अकाल पड़ रहा था। याक़ूब ने अपने लड़कों को अन्न लाने और यूसुफ़ का पता लगाने के लिए मिस्र की ओर रवाना किया। दसों भाई मिस्र पहुँचे और यूसुफ़ ने सब को पहचाना पर अपने को इन पर प्रगट नहीं किया। सब का हाल-चाल पूछकर और बहुत सा अन्न आदि देकर बिदा किया और साथ ही यह भी कहला भेजा कि अपने छोटे भाई इब्न अमीं को लाओ तो और भी बहुत सा सामान देंगे।

सभों ने आकर पिता से सब हाल कहा। उन्होंने बड़े दुःख से इब्न अमीं को जाने दिया क्योंकि यसुफ़ के बाद यही सबसे प्यारा बेटा हो गया था।

आखिर ये लोग फिर यूसुफ़ के पास पहुँचे और इन्होंने सब का बड़ा स्वागत किया। सब एक साथ भोजन करने बैठे। छः थालियाँ लगीं और एक-एक में दो-दो भाई एक-साथ भोजन करने बैठे। इब्न अमीं अकेला पड़ता था, ख़ुद यूसुफ़ उसके साथ बैठ गया। इस मौके पर इब्न अमीं यूसुफ़ को पहचान गया। विदा होते समय यूसुफ़ ने फिर सबको बहुत सा अन्न वग़ैरह दिया पर इब्न को रोकने की ग़रज़ से

उसके कपड़े में बाँट रखवा दी जिससे वह चोर समझ कर पकड़ा गया। कहते हैं कि इस पर किनआँ और मिस्र वालों में घोर युद्ध हुआ और किनआँ वाले हार कर बंदी कर लिये गये और सुलतान ने सब को मरवा डालने का हुक्म दिया पर यूसुफ़ ने किसी तरह माफ़ करवाया। बाद को सब भाइयों ने यूसुफ़ को पहचाना और सब गले मिल कर बहुत देर रोये और सबों ने अपनी पिछली करनी पर बड़ा दुःख प्रकट किया। बाद को सब किनआँ गये पर यूसुफ़ ने इब्न और यहूदा दो भाइयों को रोक लिया था। किनआँ पहुँचने पर सब को यूसुफ़ का पता चला और याक़ूब के साथ सारा किनआँ यूसुफ़ के दर्शन को चला। यूसुफ़ ने सब की बड़े प्रेम से ख़ातिर की और तीस वर्ष बाद पिता पुत्र मिले। मिस्र का सुलतान भी बड़ा सुखी हुआ। वह निस्संतान था और क़ाफ़ी बूढ़ा हो गया था अतः उसने इस मौके पर यूसुफ़ को अपने सिंहासन पर बैठा कर राज्याभिषेक कर दिया। यूसुफ़ अब सुलतान था।

इधर ज़ुलेख़ा को यूसुफ़ के विरह में तप करते ४० वर्ष हो गये थे। वह बूढ़ी और रोते-रोते अंधी हो गई थी। वह अपना सब कुछ खो चुकी थी अब वह पथ की भिखारिन थी।

एक दिन शहर में यूसुफ़ की सवारी निकली। यद्यपि नेत्र-हीन थी, उसे यूसुफ़ के अंतिम दर्शन की बड़ी अभिलाषा हुई और बड़ी ख़ुशामद के बाद कुछ औरतों ने उसे यूसुफ़ के रास्ते में खड़ा किया। संयोग से यूसुफ़ ने इसे तुरंत पहिचाना और इसे बड़ी दया आई। यूसुफ़ ने पूछा तुम्हारा यह हाल क्योंकर हुआ। उसने कहा सब तुम्हारे कारण। याक़ूब को भी सब हाल मालूम हुआ। उन्होंने ज़ुलेख़ा को दुआ दी जिससे वह फिर षोड़षी रूप में परिणत हुई और रूपलावण्य पहले से भी उज्ज्वलतर हुआ। अंत में दोनों का विवाह हुआ और याक़ूब ने दोनों को दुआ दी।

पर जब सब कुछ हो गया तब आख़िर को ज़ुलेख़ा को कुछ शरारत सूझी। उसने यूसुफ़ को छकाने की ठानी ताकि उसे कुछ पता तो चले कि कैसे हमने ये ४० बरस बिताये हैं। आख़िर को यूसुफ़ को

नाकों चना चबवा कर तब अंत में जब उसके मरने की नौबत आई तो ज़ुलेख़ा ने आत्मसमर्पण किया।

कथा का आधार तथा उसकी विशेषता

'यूसुफ़-ज़ुलेख़ा' की कथा पद्मावत आदि अन्य कथाओं से एक महत्त्व-पूर्ण विभिन्नता रखती है और उस पर ध्यान देना आवश्यक है। अन्यः सभी प्रेमगाथा या आख्यानक काव्य जो अभी तक प्राप्त हो सके हैं, किसी न किसी लोकप्रसिद्ध भारतीय ऐतिहासिक घटना का आश्रय लेकर रचे गये हैं। अंतर इतना ही है कि कुछ में यह आश्रय केवल नाम मात्र का और कुछ में ऐतिहासिक तथ्यों के सामंजस्य का आद्योपांत यथाशक्ति ध्यान रक्खा गया है। हाँ कविता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए जितनी निरंकुशता का अधिकार इस कोटि के महाकाव्य लेखकों को हो सकता है इसका किसी ने बहुत दुरुपयोग किया है, किसी ने कम। पर यूसुफ़-ज़ुलेख़ा की कथा भारतीय इतिहास या संस्कृति से कोई संबंध नहीं रखती, इसका आधार या आश्रय पूर्णतया विदेशी है। इसमें जिस समाज का चित्र खींचा गया है वह भी भारतीय न होकर ईरानी या मिस्री हैं। इसकी प्रेम-परंपरा का कोई संबंध भारतीय-जीवन से नहीं है। वह सोलह आने ईरान या अरब आदि इस्लामी देशों की है। यूसुफ़-ज़ुलेखा की प्रेम-कथा तो नहीं किन्तु यूसुफ़ के बेचे जाने और मिस्र में अधिकार प्राप्त करने की कथा तथा अकाल के कारण उसके पिता और भाइयों के मिस्र जाने की बात बड़ी सजीवता से दी गई है। प्रेम कथा का रूप देने में निसार की कल्पना अधिक है। कुछ फ़ारसी काव्य-परम्परा का भी प्रभाव है। जामी ने फ़ारसी में यूसुफ़-ज़ुलेख़ा लिखी थी। इसमें पुत्र-वियोग की जो कथा दिखाई है गई उसमें निसार की आत्मा बोलती दिखाई देती है। वह स्वयं भी पुत्र-वियोग से व्यथित था और पिता की वियुक्त दशा की पूरी-पूरी अनुभूति रखता था।

स्वप्न में किसी अपरिचित पुरुष को देखकर उसके प्रेम में पागल हो जाना, भारतीय काव्य और रस-पद्धति के लिए

ज़ुलेखा की प्रेम-परंपरा एक नई बात है। प्राचीन संस्कृत या हिंदी काव्यों में हम इस प्रकार के प्रेम पर आधारित कोई बड़ा काव्य नहीं पाते। 'ऊषा-अनिरुद्ध' की बात छोड़ दीजिए, वह एक दूसरे ही ढंग की चीज़ है। उसमें चित्रलेखा के कौशल द्वारा खोज में चित्र दर्शन का भी सहारा मिल गया था। गुणश्रवण तथा चित्रदर्शन आदि ढंग तो हमारे यहाँ मिलते हैं; और अधिकतर प्रेमगाथाओं में अपनाये गये हैं। 'स्वप्नदर्शन' पर आधारित प्रेम बहुत अंश तक अस्वाभाविक होता है और वास्तविक जीवन में असंभव सा ही है। वन, वीथी, तड़ाग आदि कहीं पर नायक-नायिका का एक बार परस्पर साक्षात्कार हो चुका हो, निगाहें चार हो चुकी हों, उसके बाद स्वप्न-दर्शन होना स्वाभाविक है, और ऐसा वास्तविक जीवन और काव्य दोनों ही में हम प्रायः देखते हैं। पर जिसको कभी न देखा न सुना, न चित्र ही देखा, उसे स्वप्न में देखना और सदा के लिये उसी में अपने को लीन कर देना यह फ़ारस की ही देन है।

फिर दूसरी विभिन्नता यह है कि पदमावत आदि मसनवी काव्यों में गुणश्रवण या चित्र-दर्शन आदि जिस किसी कारण से भी प्रेम आरंभ होता है, दोनों ओर नायक-नायिका में समान रूप से आरंभ होता है। यहाँ सब कुछ ज़ुलेख़ा की तरफ़ से ही हैं। यूसुफ़ इससे बिलकुल बरी रक्खा गया है। इसने कभी न स्वप्न ही देखा न इसकी याद में अस्थि-पिंजर मात्र ही दिखलाया गया, इधर ज़ुलेख़ा इसके कारण अपमानित और लांछित होकर परित्यक्ता हुई और ४० वर्ष तक तप करते-करते अंधी बूढ़ी और मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुई, इधर यूसुफ़ दास से मंत्री, फिर मिस्र का सुलतान तक हो गया। इसे मानों पता भी नहीं कि ज़ुलेख़ा इसकी याद में मर रही है। अगर इत्तफ़ाक से ज़ुलेख़ा की कुटिया की तरफ से उसकी सवारी न निकलती तो शायद ज़ुलेखा मर ही जाती और कोई यूसुफ़ तक उसके मरने की ख़बर तक पहुँचानेवाला न था।

इस प्रकार की अस्वाभाविकताओं का हम एक ही कारण देखते हैं। इस कथा में नायक दो रूप में चित्रित किया गया

लौकिक और अलौकिक

है—लौकिक और अलौकिक। 'राम-चरित-मानस' के नायक के संबंध में भी महाकवि तुलसीदास ने जाने या अनजाने में ऐसा ही किया है। उनके संबंध में 'कवि' तुलसी और 'भक्त' तुलसी दोनों अपनी-अपनी बात बारी-बारी से कहते हैं। पर कवि निसार के संबंध में यह बात नहीं है। उन्होंने भगवद्भक्ति से प्रेरित होकर यह कथा नहीं लिखी है। पर इस्लाम की दुनियाँ में यूसुफ़ 'नबी' या ईश्वर के प्रतिनिधि, मनुष्य रूप में माने गए हैं; और इनकी कथा फ़ारसी 'यूसुफ़-ज़ुलेख़ा' में वर्णित है। इस मौलिक ग्रंथ का कहाँ तक अनुकरण निसार ने किया है यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। पर इतना हम जानते हैं कि जहाँ-जहाँ चाहे जिस किसी भी जाति या भाषा के कवि नायक में एक साथ ही 'मनुष्यत्व' और 'ईश्वरत्व' का आरोप करते हुए चले हैं वहाँ इसी तरह का गपड़चौथ हुआ है। कविकुलगुरु तुलसी की प्रतिभा असाधारण थी। उन्होंने दोनों का निर्वाह कर ही दिया है, एक प्रकार से; और उनकी बातें इतनी खटकीं भी नहीं।

चरित्र-चित्रण

पर यही बात हम निसार के संबंध में नहीं कह सकते। यूसुफ़ के चरित्र-चित्रण में कवि ने किसी हद तक उसे 'हर्ष-विषाद-रहित' महामानव के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है पर सफलता नहीं मिल सकी है। वह 'उदात्त' गांभीर्य हम यूसुफ़ में नहीं पाते। कहीं-कहीं तो इनका व्यवहार काफ़ी निम्नकोटि का सा भी बन पड़ा है। अब जैसे युसुफ़ के हृदय में ज़ुलेख़ा की प्रबल काम-चेष्टाओं से कामातुर होकर उसको आलिंगन करने को दौड़ पड़ना, फिर यकायक पिता की तस्वीर सामने आ जाने पर सँभलना और उल्टे पाँव भाग खड़ा होना और ज़ुलेखा का उसे रोकने के लिये झपटना और कुरता थाम लेना, कुरते का फट जाना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो नायक और नायिका दोनों के चरित्र को बहुत नीचे गिरा देती हैं। पर ज़ुलेख़ा का चरित्र तो यहाँ बहुत ही निम्नकोटि का कर दिया गया है। कहा गया है कि ऐन मौक़े पर यूसुफ़ के भाग

निकलने से उसे इतना घृणित क्रोध होता है कि वह अपने पति से शिकायत करती है कि यूसुफ़ ने उस पर बलात्कार की चेष्टा की थी, पर उसने किसी तरह अपनी इज़्ज़त बचाई। अपने कथन की सत्यता में वह यूसुफ़ के फटे कुर्ते का भाग पेश करती है। यह व्यवहार तो कुछ-कुछ मुग़ल कोर्ट की रखेलियों और बाँदियों के छल-कपट और प्रेम-षड़यंत्रों की याद दिलाता है। पर इसके लिए हम निसार को कहाँ तक उत्तरदायी ठहरावें ? यह तो फ़ारसी काव्य-पद्धति और इस्लामी समाज-चित्र की बातें हैं, जिनका कवि ने अवधी में वर्णन मात्र कर दिया है ।

नायक, नायिका के सिवा धाय का चरित्र विशेष ध्यान देने योग्य है। मुसलमान बादशाहों में अंतःपुर में दाई या धाय जैसी होती थीं उसका सच्चा चित्र हम देखते हैं। गुप्त प्रेम में शाहों और सुलतानों की बेटियों को ये दाइयाँ डूबते को तिनके के सहारे की भाँति थीं। ये दूती का काम करती थीं और आख़ीर तक साथ देती थीं।

भाइयों के पारस्परिक द्वेष का निकृष्टतम उदाहरण उस काव्य में मिलता है। बाप यूसुफ़ को और भाइयों से ज्यादा मानता था इसलिये उन्होंने बिचारे को खपा ही डाला और बाप से आकर कह दिया कि उसे भेड़िये ने खा डाला ! फिर वह किसी तरह से कुएँ से निकला भी तो उसे अपना दास कह कर बेंच डाला और अच्छी ख़ासी रक़म वसूल कर ली ! नबी के सगे भाइयों का यह हाल है ! विमाता के पुत्र भरत और शत्रुघ्न की याद बरबस आ जाती है। कितना असम्भव पार्थक्य है ! किन्तु इसके लिए निसार को दोषी नहीं ठहरा सकते हैं क्योंकि भाइयों के द्वेष की बात ऐतिहासिक है।

कविता

यह हम पहले भी कह चुके हैं कि इन सभी मसनवी कवियों की कविताएँ प्रायः एक ही ढर्रे की हुई हैं। रही अवधी भाषा। वही दोहे-चौपाइयों की छंदावली और वही विषय ! पर निसार काव्य-भाषा और विषय दोनों

ही दृष्टि से अन्य मसनवी काव्यों से काफ़ी पार्थक्य रखता है। विषय या कथावस्तु का पार्थक्य हम ऊपर दिखा चुके हैं।

निसार की भाषा में हमें साहित्यिक अवधी के परिमार्जित रूप का आभास मिलता है। 'पदमावत' के ढंग के ग्रामीण या ठेठ प्रयोग जुलेख़ा में शायद ही कहीं मिलते हों। 'मानस' की अवधी से भी कुछ अंशों में निसार की भाषा परिष्कृत है। अरबी, फ़ारसी के शब्द प्रायः आते रहते हैं। इन्होंने अपनी रचना में विशेष कर ऋतुवर्णन और बारहमासा वर्णन के समय कवित्त और सवैये भी ख़ूब लिखे हैं जो कि प्रेमगाथा कवियों के संबंध में एक अनहोनी बात है। इनके कवित्तों में ब्रज-भाषा की छाया भी प्रचुर परिमाण में मिलती है। एक उदाहरण दिया जाता है।

मासा भादों महँ सुहावन जगत सुख छायो सभै,
रितु फलत फूलत और तरुवर गैल सों पूरन भए।
भुवन सीतल छाँह सुंदर सुख सँजोगिन के रहै,
कवन हरियर करै पिउ बिन बेल बिरही सों डहै॥

इस तरह का छंद 'पदमावत', 'चित्रावली,' 'मृगावती' आदि किसी में न मिलेगा।

अलंकार आदि बाहरी सजावट निसार के काव्य में कम है। अनुप्रास का शौक़ भी इनको न था। हाँ, रस का परिपाक अच्छा हुआ है। इस काव्य में करुण रस का प्राधान्य आद्योपांत है। यों तो विरह वर्णन सभी सूफी कवियों का मुख्य विषय रहा है और इस संबंध में ये लोग प्रायः ऐसी उड़ान भरने के अभ्यासी रहे हैं कि पढ़ कर रसबोध के स्थान पर हँसी आये बिना नहीं रहती। सारा कथानक ही उपहासास्पद हो जाता है। पर जायसी और निसार इसके अपवाद हैं। निसार ने इस काव्य की रचना एक नितांत दुःखद (पुत्र शोक) सांसारिक घटना के बाद की थी। वह इस समय स्वयं ५७ वर्ष के थे और इस समय उनके एक मात्र सुयोग्य पुत्र का निधन निश्चय ही एक

दुखांत घटना थी। इस मर्मांतक घटना को यथाकथंचित् भुलाने के उद्देश्य से ही उन्होंने इस कथा की रचना में हाथ डाला था।

× × ×

उद्देश्य

जायसी आदि अन्य मसनवी शाखा के कवियों का उद्देश्य लौकिक प्रेम के मिस अलौकिक का निर्देश करना होता था, पर यहाँ हम वह बात भी नहीं पाते। दो एक स्थान पर हम 'अलख' आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग पाते हैं पर उस अध्यात्मतत्व या रहस्यवाद का पता कहीं नहीं चलता जिसके लिये जायसी और उनके 'पद्मावत' की इतनी ख्याति हुई। इस श्रेणी के प्रायः सभी काव्यों में कवि अंत में स्पष्ट रूप से कह देता है कि यह सारी कथा, 'अन्योक्ति' के रूप में कही गई है और पाठकों से स्पष्ट अनुरोध रहता है कि वे कथा में वर्णित प्रेम-कहानी को इसी रूप में लें। नायक को साधक, नायिका या माशूक को खुदा या ईश्वर, राह बताने वाले 'सुआ' को गुरु, इसी प्रकार 'शैतान' माया, सांसारिक बंधन आदि सभी के प्रतिनिधि स्वरूप कोई-न-कोई कथा का पात्र होता है। पर इस कथा में हम इस तरह की कोई बात नहीं देखते। यहाँ 'प्रेम की पीर' पहले नायिका पर ही चोट करती है और वही नायक की तलाश में, जिसके नाँउ-ठाँउँ का कोई पता नहीं, बाहर निकलती है। सूफ़ी परंपरा में ईश्वर की कल्पना माशूक के रूप में की गई है और एक 'गुरु' की अनिवार्यता पर बहुत जोर दिया गया है। पर कितना ही खींच-तान करने पर भी यहाँ इस तरह की कोई 'अन्योक्ति' ठीक बैठती नहीं; और न कवि कहीं इस तरह का कोई स्पष्ट निर्देश ही करता है। इस काव्य के उत्तरार्द्ध में जुलेखा की एकाङ्गी प्रेम और उसकी अंतिम सफलता अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। शुरू में जुलेखा में यौवन और अभिमान मद दिखाया गया है किंतु अंत में वह प्रेम की कसौटी पर खरी उतरती है। वह रूप के दर्शन की इच्छुक है, धन दौलत और पद की इच्छुक नहीं है। यह मौलिक प्रेम अन्त में अलौकिक की ओर जाता है और 'पद्मावत' की भाँति यह ग्रन्थ छार में छार मिलाकर एक अपूर्व

वैराग्यमय वातावरण उपस्थित कर देता है। यह वातावरण कवि की मानसिक स्थिति के अनुकूल था।

खाय पछार जो छार पर, करै आह एक बार।
पंछ प्रान सो उड़ि गयो, रहे छार महँ छार॥

इसमें आध्यात्मिक संकेत केवल इतना ही है कि सच्ची तपस्या निष्फल नहीं जाती है और लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिणत हो जाता है।

इस संग्रह में कथा का प्रारंभिक भाग और अंतिम भाग लिया गया है। बीच के कुछ भाग इस ढंग से संगृहीत हैं कि कथा का संबंध ठीक बैठ जाता है। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है और यह संग्रह पहले-पहल प्रेस में जा रहा है। इसकी फ़ारसी में लिखी हुई प्रति-लिपि पहले पूरी संपादन के निमित्त एकेडेमी में आई थी, और मुझे तथा श्री सत्यजीवन वर्मा को इसका भार सौंपा गया था, पर अभी तक यह पूरी प्रकाशित न हो सकी। इसकी पांडु-लिपि फ़ारसी में होने के कारण पाठ में असंख्य गड़बड़ियों का होना स्वाभाविक है। तुलना के लिये नागरी अक्षरों में लिखी हुई कोई दूसरी पांडु-लिपि अभी तक नहीं मिल सकी है।

यूसुफ़- ,जुलेख़ा

आदि खंड

सुमिरौं प्रथम स्वरूप सुहावा। आदि प्रेम निज तन उपजावा ॥
उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बहुरि पवन अंबुअ उपजावा ॥
आगिन तें पवन पवन तें पानी। पुनि पानी ते खेह उड़ानी ॥
यहि सब में उपज्यो संसारा। धरती सरग सूर ससि तारा ॥
चारि तंत में सब कुछ साजा। पँचबे सन आकास बिराजा ॥
मुनि रिष गँध्रब दूत बिठाये। जंगम अस्थावर उपजाए ॥
प्रेम अगिन तेहि काहुँ सँभारा। रचा मनुष बहु विधि बिस्तारा ॥
तेंहि सौंपा वह प्रेमक थाती। दीपक माँह धरा जस बाती ॥
तेहि बाती महँ आय छिपाए। होय परछिन पुनि देह जराए ॥

प्रभुताई के बीच तें, को गत लिखन पार।
कहाँ स उत्तम अंस वह, कहँ निकसत तेहि झार ॥

रचा मनुष तेहि रूप सोहावा। प्रेम अंस तेहि हिएँ छिपावा ॥
अस गुनवंत दयाल सयाना। तेहि निरगुन नर सब अग्याना ॥
जाकै रूप न रंग न रेखा। ताकिय रचना आव न लेखा ॥
वहै रूप वपु प्रेम क साना। दीन्ह झार कहि अलख सुजाना ॥
यहि बिधि सब जग परगट कीन्हा। एक ते एक उदित कर दीन्हा ॥
जब वह नेस्त करै पुनि सोई। एक ते एक अलोपित होई ॥
पानी खाइ खेह का लेई। पुन पानी कहँ अगिन हरेई ॥
पवन अगिन कहँ करे सँघारा। मिले आन तेहि अंस अपारा ॥
वह के संग जगत कर लेखा। नेस्त हेस्त सभ करे सरेखा ॥

अलख अमर अबिनासी, घट घट व्यापक होय।
सरब मई सुखदायक, दुख भंजन है सोय ॥

वह पूरन चौदह खँड माँहीं। वह बिन जिया जंतु कोउ नाहीं ॥
सब मँह आप सु खेले खेला। नट नाटक चाटक जस मेला ॥

ना वह मरे न मिटे न होई। अपरम मरम न जाने कोई॥
जाकी रति सैं सुख नित साजा। तन तिरिया महँ आय बिराजा॥
कहँ रसना तेहि अस्तुति जोगू। रचा ताहि जो चीन्हे भोगू॥
गुंजत ज्ञान ओ भेद अपारा। अगम आव घट तिन दहुँ सारा॥
कबहूँ आय अकेला रहई। कबहूँ यह रचना चित चहई॥
नाटक खेल रच्यो संसारा। जा कहँ देख ज्ञान बल हारा॥
एक रूप चारिहुँ दिस देखा। दूसर अवर न जाय विसेषा॥

अगनित बार सँवारा, तेहि जग अगम अपार।
जहाँ अलख संसार सब, जहँ जग तिन्ह करतार॥

वहि कर दरस दुओ जग पूरा। नर बाउर सो गिनहि अधूरा॥
वह निर्गुन सौगुन सोउ रूपा। परघट गुपत सो दुओ अनूपा॥
जो निर्गुन कहँ चाहिय देखा। अलख अमूरत जाय न देखा॥
चौसर गगन तो रूप विसेषे। रूप अपार हिये जग देखे॥
पै जब आप देखावै चाहिय। दिव्य दिष्ट निरभावै ताहिय॥
पूरन चहुँ दिस जोत अपारा। बिना दिष्ट कोउ लिखे न पारा॥
जो यह जग वह रूप न लेखा। वह जग केहि बिध जाय बिसेखा॥
अनहद सब्द सुने सब कोई। का नहि दरस दिये तिन्ह सोई॥
कत सरवन सुन बचन हुलासा। काहें ते नयन सो रहैं निरासा॥

सुने सब्द सब कोऊ, अनहद दस परकार।
ताकर रूप देखें, कारन कवन बिचार॥

तैं दयाल सुखदायक राजा। जिन अस मोहिं गरीब निवाजा॥
हतेउँ नेस्ति आधीन मिले ना। तैं करतार रहे मोंहि कीन्हा॥
मूरख हतेउँ कीन्ह सज्ञाना। गुन विद्या सब कीन्ह निधाना॥
गौरी सहन बंस अतवारा। दीन्ह स्वरूप भाउ उँजियारा॥
तिन मोंहिं दीन्ह सदा सुख भोगू। तिन्ह का देहुँ अहहुँ केहि जोगू॥
संकट गाढ़ बड़े जब सहहीं। तिन पल महँ हर लेहि गुसाईं॥
मैं तो अधम पातकी आहा। तैं निरभान कीन्ह जस चाहा॥

गुंजत ज्ञान गिरा अनेक, दीरघ दया अपार।
तोरे गुन केहि लेहि कहे, तैं दाता करतार॥

बरनौं ताहि आदि बेहि साजा। तेहि के जोति जगत उपराजा॥
आदि साज तेहि अनत पठावा। बोहित साज सो पार लगावा॥
तेहि के जोति सब्र सिष्ट सँवारा। जिया जंतु जोहि वार न पारा॥
जो अस पुरुष न जग महँ आवत। ऊँच नीच को पार न पावत॥
जग बोहित वह सेवक देवा। केहि गुन पार उतारे खेवा॥
जिन अवतार सो सबहिं सरेखा। कोउ निर्गुन कोउ सर्गुन देखा॥
अस अवतार काहु नहिं लीन्हा। जिन निर्गुन सरगुन दोउ चीन्हा॥
कोट कलाँत करे जो भावे। बिन वह नाम मुगति नहिं पावे॥
वह कर नाम लिए एक बारा। पावे मोख मुगति निस्तारा॥

आदि जोति जाके रचे, तेहिं तें सब कुछ कीन्ह।
मोख मुगत गुन पावे, जब नाम मोहम्मद लीन्ह॥

चार मीत जस चार गरंथा। चारिउ सभा चारि सो पंथा॥
पहिले अबूबकर मग चीन्हाँ। नबी परापत राज जेहि कीन्हाँ॥
दूजे उमर खिताब सोहाये। लिख सपंथ इबलीस पुराए॥
तीजे उसमान पूरन लाजू। आदि करी चढ़ि कीन्हेउ राजू॥
अली बली गुन कारत भारी। आद इमाम जो पर उपकारी॥
खंड खंड जेहि खंड अखंडा। लीन्हौं दंड मंड भुज दंडा॥
दीन नबी कर प्रोहित कीन्हा। मारि सत्रु कहँ सब जग कीन्हा॥
तिन इमाम जग खेवक आये। पाप हरे गुन पाप लगाये॥
हसन हुसेन महा जग तारन। दीन्ह सीस उम्मत के कारन॥

होय असहाब सो करि चढ़े, वहि दीन सो प्रोहित कीन्ह।
आद अंत लहि जगत सब, अगम निगम करि दीन्ह॥

आलम शाह हिन्दू सुलताना। तेहि के राज यह कथा बखाना॥
देहली राज करे औ नीता। उमरावन तेहि कीन्ह अनीता॥
कादिर खान सो अधम रुहेला। सो अपराध कीन्ह बद फेला॥

पादशाह कहँ आँधर कीन्हा । सुत उतारि सब दुख तेहि दीन्हा ॥
कीन्ह अपत तैमूर घराना । राज प्रताप अधम तेहि माना ॥
वह चंडाल अधम अन्याई । पातशाह तैं कीन्ह बुराई ॥
जस वै कीन्ह नेक फल पावा । देइयँ चरित खेल दिखरावा ॥
नेह विटप पुन जहर मिलाये । पातशाह सर छत्र भराए ॥
अंधधुंध सभ जग करि दीन्हा । तस आपुन देहलीपति कीन्हा ॥

कीन्हीं राज प्रताप जुत, रहिअ उतै कछु नाहँ ।
तब सेवक साँई भये, साँई दुखित जग माँह ॥

चहुँ दिस अंधधुंध सब छावा । अवध देस काँ दियो बहावा ॥
येहिया खाँ आसफुद्दौला । जासु सहाय अहइ नित मौला ॥
हिन्दू सचिव वह बाली नरेसा । तेहि के धरम सुखी सब देसा ॥
दुऔ गुन ताह सो धर्म बिधाना । धरम नींत जग इंदु समाना ॥
करै नीत कुछ और न भावे । धरम दान को सरवर पावे ॥
तेहि के राज नीत जग छाये । सूर सुजान न सके सताये ॥
करै न नीत धरम सुन्हि होई । मनुष समान सो परगट होई ॥

धरम नीत सब जग करे, परजा सुखी सरीर ।
जुग जेग रहे सुदेस भी, यहि नव्वाब उजीर ॥

सेखपुरा उत गाँव सुहावा । सेख निसार जनम तहँ पावा ॥
चारिउ ओर सुघन अमराई । अगम अथाह चहूँ दिस खाँई ॥
सेख हबीबुल्लाह सोहाये । सेख पूर जिन आन बसाये ॥
बादशाद अकबर सुलताना । तेहि के राज कर जगत बखाना ॥
अवध देस सूबा होय आये । वीस बरस लहि रहे सुहाये ॥
तेहि के शेख मुहम्मद नाऊँ । सो हम पिता सो ताकर गाऊँ ॥
तेहि घर हौं बिधनैं अवतारा । चारि दीप जस चौमुख बारा ॥
सभै बली सुपुरुष सुज्ञाना । रूपवत औ बिद्यामाना ॥

बंस मौलवी रूम कै, सेख हबीबुल्लाह ।
जेहि के मसनवी जगत मह, अगम निगम अवगाह ॥

अब आपन गुन करौं बखाना। हौं निरगुन कुछ भेद न जाना॥
सब्हे गुरू कर गुरू सुहावा। सो हम गुरू वह जग महँ आवा॥
जेहि सो गुरू कि दोउ जग आसा। अवर गुरू की भूख न प्यासा॥
चहै गुरू वह पार लगावै। चहै तो बार बार भटकावै॥
वह कर प्रेम हिएँ महँ गोवा। अवर प्रेम सभ चित तन खोवा॥
अच्छर एक पठावा सोई। बहुर गुरू वह कियो बिछोई॥
भयो हिया जस समुद अपारा। किये गरंथ अनूप सँवारा॥
झूँठ कथक कहि रैन बिहाये। अब यह समै भौर कै आये॥

बंस मौलवी रूम कै, मौलैं लावा पंथ।
होय सिद्ध बुध मसनवी, निरगम अगम गरंथ॥

सात गरंथ अनूप सोहाये। हिंदी और पारसी सोहाये॥
संसकिरत तुरकी मन भाये। अरबी और फारसी सोहाये॥
हीर निकारि के गेहूँ खाने। रस मनोज रस गीत बखाने॥
औ दिवान मसनवी भाखा। कर दोइ नसर पारसी राखा॥
बार बैस महँ कथा बनाये। हीर निकारि अनूप सोहाये॥
रस मनोज रस गीत सोहावा। सभै बात कर भेद बतावा॥
हंस जवाहिर प्रेम कहानी। कहा मसनवी अमृत बानी॥
ईशा कहे जहाँ लह भेदू। औ सब कथा जहाँ लह वेदू॥
झूँठि जानि सब ते मन भागा। अब यह साँच कथा चित लागा॥

तीन नसर एक मसनवी, औ निसाब दीवान।
सर दुर्द हीर निकार तिन, रस मनोज रस खान॥

हिजरी सन बारह से पाँचा। बरनेउ प्रेम कथा यह साँचा॥
अठारह से सताईसा। संवत बिकरम सेन नरेसा॥
सतरह से बारह पुनि साका। सतरह सै नब्बे ईसा का॥
सत्तावन बरस बीते आयू। तब उपज्यो यह कथा बँचाऊ॥
सात दिवस महँ कथा समापत। दुरमति नाम रहे सो सम्मत॥
गयो तरुन को तेज उमंगा। साथी गये छाँड़ि सब संगा॥

बाएँ अँस उठि के जग माहीं। बिरिध दिवस अब कुछ रस नाहीं॥
बना जनम को गोरख धंधा। अबहुँ न समझे यह मन अंधा॥
बार बंस औ वरुन सोहावा। गयो बीत तीसर पन आवा॥

बजे नगारा कूँच का, करहु सुचेत सँभार।
अगम पंथ साथी नहीं, केहि बिधि उतरब पार॥

बिरिध वैस महँ कीन्ह बिचारा। केहि विधि होय मोर उद्धारा॥
कहयों तो तंत्र कथा उत साँचा। जो कुरान मा सुना औ बाँचा॥
सभ भाषा महँ कथा सोहाई। बरनन भाँति भाँति करवाई॥
इबरी औ अरबी सुर बानी। पारस औ तुरकी मिसरानी॥
भाषा माँ काहू ना भाखा। मोरे अंस दइव लिखि राखा॥
सो अब कथा कहौं चित लाई। जेहि तन मोख मुगति होइ जाई॥
यूसुफ नबी विदित जग आवा। तारा गन्ह महँ चंद सोहावा॥
जहँ लहि महा सिद्ध अवतारा। सब महँ रूप दीन्ह उँजियारा॥
कथा अनूप जगत महँ सोई। प्रेम भगति सत धरम समोई॥

यूसुफ नबी अनूप जग, प्रगट भये संसार।
जाकी कथा तंत अब, बरनऊँ भजि करतार॥

जो यह कथा सुनै चित लाई। नासै पाप पुन्न अधिकाई॥
बाँझिन सुनै सो संतति पावे। अकट तरुनि माँझहि फरिआवे॥
निरधन होय, होय धन आकर। निरगुन सुने होय गुन सागर॥
दुःखी सुने सुक्ख अधिकाई। बंदी सुने तो मोख होइ जाई॥
बिछुरे परे सो देय मिलाई। रोगी सुने रोग हरि जाई॥
निरदायी कहँ दाया आवे। जोगी सुने जोग अधिकावे॥
कैसेउँ विपति गाढ़ जो होई। सुनै कथा बुध डारै खोई॥
सुने सती दिन दिन सत बाढ़ै। बिरही बिरह दीन दुख दाढ़ै॥
प्रेमी सुने प्रेम अधिकावें। पंडित सुने महा रस पावें॥

जो कोइ सुनै पढ़ै लिखै, होय सिद्ध संसार।
वंस सुनत सुख पावे, देइ असीस निसार॥

कथा अनूप अहै जग माहीं। दूसर कथा सो यह सँघ नाही ॥
नबी लागि यह कथा सुहाई। सरग लोक तिन दैव पठाई ॥
एक दिवस जबरैल जो आये। हसन हुसेन को दुःख सुनाये ॥
मारिन्ह तिन बैरिन निरदाई। पानी बूँद न दीन्ह कसाई ॥
सुनि के मरन नबी दुख माना। रोवै लाग दुखित होइ प्राना ॥
तब जबरैल कथा यह लाये। आन अरथ यह बाँच सुनाये ॥
औ इमाम कहँ उम्मत मारिन्ह। यूसुफ बंधु कूप महँ डारिन्ह ॥
कथा सत्त अब कहौं सुहाई। जेहि विधि सरग लोक तेहि आई ॥
चूक होय तो लेहु सँभारी। सुद्ध असुद्ध सो लिखहुँ बिचारी ॥

बरनौ कहा अनूप अब, प्रेम भरी औ साँच।
मोख मुगति गति पावहिं, जो रे सुनावै पाँच ॥

किनाँ नगर जो 'नूह' बसावा। तहाँ नबी याकूब सोहावा ॥
जग महँ महा सिद्ध अवतारा। पूजै ताहिं सकल संसारा ॥
लूत नबी की सुता सुहाई। सो बियाहि इसहाक के आई ॥
भय इसहाक के दुइ सुत संगा। एक उदर दुइ रवि ससि रंगा ॥
एक ईस याकूब सो दूजा। तप जप विद्या कोउ न पूजा ॥
महा सिद्ध ता कहँ विधि कीन्हा। इसराईल नाम तिन्ह कीन्हा ॥
उपजे श्याम देस दोउ भाई। रहे किनाँ याकूब सोहाई ॥
भेजे ताह अलख संदेसा। लावै निगम पंथ सब देसा ॥
नीच ऊँच कहिं मारग लावै। औ गुरु मुख सब भेद बतावै ॥

करे तपस्या रैन दिन, जप तप बरत औ नेम।
जबराइल आवहि तहाँ, आन बढ़ावैं प्रेम ॥

सात इस्तरी सुखद सोहाई। बारह पुत्र दई अधिकाई ॥
रुबिया औ राहेल सुहाये। दोउ दुहिता सुत लूत के जाये ॥
दौहित विधने नारि कुलीना। पाँच सहेली सुघर नगीना ॥
दुइ दुइ पुत्र दुहूँ के भये। आठ पुत्र दासी सन कहे ॥
बहुत गरंथ माँह अस हेरी। दोइ नागर तेहि के दुइ चेरी ॥

धरम दीन्ह राहेल स्वरूपा। महा सती औ ज्ञान अनूपा॥
तेहि के कोख कीन्ह अवतारा। यूसुफ इबन अमीन दोइ बारा॥
प्रथम दुहिता दुनियाँ नाऊँ। पुनि यूसुफ मानै तेहि ठाऊँ॥
यूसुफ नबी जनम जब लीन्हा। परगट जोग जगत महँ कीन्हा॥
दुइ अंसा यूसुफ नबी, पायो रूप अपार।
एक अंस बिधि रूप महँ, दीन्ह सबै संसार॥
बुधि सरूप जब उतपति कीन्हा। दोइ अंसा यूसुफ कहँ दीन्हा॥
एक अंस महँ सब जग पावा। धन वह रूप जो दइय बनाना॥
यूसुफ नबी लीन्ह अवतारा। घर बाहर होइगा उँजियारा॥
जो उपमा कबि दीन्ह बखानी। रूपवन्त जस यूसुफ सानी॥
तेहि स्वरूप कर कहौं बखाना। जेहि कर रूप सो कीन्ह बखाना॥
जब तिन जन्म सो यूसुफ लीन्हा। अलख सबहि सुख तिन्ह सो दीन्हा॥
सत्रु अनेक भयो जरि छारा। जो इमलाक़ यहूदा मारा॥
बड़े बंस सब बली सोहाये। एक तें एक सरिस अधिकाये॥
सैन धनी गहि गदा पवारहिं। बन महँ सौंह सिंह कहँ मारहिं॥
दस दिग्गज दस बंधुवै, दल गंजन बलवान।
सेवा करैं सु तात कै, जगत काज सुज्ञान॥
दस भाई जो तरुन जुझारा। दुइ भाई लखि बालक बारा॥
इब्न अमीन जब लीन्ह अवतारा। माता मुई छाँड़ि दुइ बारा॥
निस दिन रखै नबी निज पासा। छिन बिछुड़े जब होय उदासा॥
बहु विद्या औ ज्ञान सोहावा। नितैं पुत्र का सभै पठावा॥
और पुत्र जो एक छिन आवैं। वेद पढ़ाय सोकाज बढ़ावैं॥
यूसुफ कहँ दिन रात पढ़ावैं। छिन नैनन नहिं ओट करावैं॥
जबराईल प्रान तजि दीन्हा। तब यूसुफ कहँ फूफहि लीन्हा॥
प्रान तें अधिक रखै दिन राती। निस दिन रखैं लगाये छाती॥
औ याकूब चहै मन माँहीं। फूफिहिं एक छिन छाँड़हिं नाहीं॥
बहुत समय यूसुफ लिए, जायँ भूलि तप जोग।
तेहि कारन बिधि कोप कै, दीन्हा पुत्र बियोग॥

भगिनी बंधु रहै अस रीती । दोउ बाउर सम यूसुफ प्रीती ॥
बसन एक इसहाक सोहावा । बाँधहिं फाँट सो लीन्ह कढ़ावा ॥
एक दिन सोवत माँह छिपाये । यूसुफ फाँट सो फेंट बँधाये ॥
ऊपर और दुकूल पिन्हावा । श्रो याकूब के पास बिठावा ॥
लाय सो भूलि फेंट कै चोरी । बसन बंधु तें बरबस छोरी ॥
भूलहिं तेहि बहु सुख तें पाला । नैन ओट छिन होय बेहाला ॥
एक दिन यूसुफ बैठ्यौ पाटा । रूप तेज मनु बरै लिलाटा ॥
काहू केर मुकुरनी लीन्हा । तब अभिमान हियें महँ कीन्हा ॥
जो मोहिं का बेंचै लै जाई । को लै सकै दरब कहँ पाई ॥
उदय अस्त लहि दरब पटोरा । मोरै मोल जोग सब थोरा ॥

यूसुफ कहँ निस दिन पिता, राखै प्रान समान ।
आन तें अधिक सपूत सुत, सुंदर सुघर सुजान ॥

नीक न लाग दइअ कहँ बाता । काहुक गरब न रखै बिधाता ॥
एक दिन यूसुफ रिस अधिकारा । कोपित भयौ दास कहँ मारा ॥
औ मातहिं मारा तिन दासा । भयौ हियें वह दास निरासा ॥
औ याकूब गिरा कै मारे । बोध न कीन्ह सो दास पुकारे ॥
करता कोप हिएँ महँ आने । दास होय तब यूसुफ जाने ॥
आयो एक सुरेख भिखारी । आन बार याकूब पुकारी ॥
कहा नबी तुम्ह आसन करहू । पावहु भोग छुधा कहँ हरहू ॥
काहु यह बात सो गयौ भुलाई । यूसुफ प्यार मतें बिसराई ॥
ताके भूख रहै सुध नाहीं । दीन्ह सराप तपा हिय माँहीं ॥

बरस चारि महँ भूलहिं, जब कीन्हा सरग पयान ।
तब पावा याकूब तेहि, हिया अधिक हुलसान ॥

वह मन भावन रूप सोहावा । औ जेहि दीन्ह रूप जग पावा ॥
आन स्वरूप हेत जो लाये । वह मन भावन ताहि सुहाये ॥
औ याकूब सिद्ध अवतारा । निस दिन यूसुफ रूप निहारा ॥

अलख सहाय क्रोध तब कीन्हा । यूसुफ बिरह सोग तेहि दीन्हा ॥
आँखी ओट पिता नहिं करई । छुधा त्रिषा मुख देखत रहई ॥
निस दिन रखै प्रान सम पासा । और पुत्र मन रहैं उदासा ॥
आवहिं पुत्र करहिं सब सेवा । काहु के ओर न देखै देवा ॥
चालिस सहस मेष चुन लीन्हा । तिर तिर सहस सब्हन कहँ दीन्हा ॥
सात सहस यूसुफ कहँ दीन्हा । सो दुंबे सब महँ चुनि लीन्हा ॥

सब्हन हिये लखि क्रोध भा, देखि पिता कर प्यार ।
लघु बालक कहँ दून तिन, दीन्ह अंस अधिकार ॥

नबी के अँगन एक द्रुम्म सुहावा । कलपवृच्छ सम ताकर छावा ॥
जब याकूब नबी सुत पावे । सुंदर सुता वृच्छ उपजावे ॥
ज्यों ज्यों पुत्र होय वहि बारा । त्यों त्यों बढ़ै वृच्छ के डारा ॥
बालक तरुन होय सुख पावै । काट डार वह छड़ी बनावै ॥
यहि बिधि तेहि निकसे दस साखा । दसौ पुत्र पायो बैसाखा ॥
यूसुफ जन्म लीन्ह जग माहीं । लोना द्रुम महँ निकसे नाहीं ॥
कह्यो तात तिन पुत्र सोहाये । सबहि बंधु कहँ छड़ी सोहाये ॥
कस न दइव मोहिं आसा दीन्हा । तब अरदास दई तें कीन्हा ॥
आये जबराइल कै आसा । हरिहर रतन शाख कैलासा ॥

सो आसा यूसुफ नबी, पावा अभय हुलास ।
लखि भाइन्ह कहँ क्रोध भा, जरैं हियैं आभास ॥

हत्यो जो बंधु यहूदा नाऊँ । गये बंधु सब तेहि के ठाऊँ ॥
हम सब पितैं करहिं बड़ काजू । दिन दिन बढ़े सो ओकर राजू ॥
दिन भर रहैं सघन बन माहीं । भूख प्यास कुछ जानहिं नाहीं ॥
यह बालक कुछ करे न काजू । इन्हे दीन्ह दून कर साजू ॥
कछु दिन महँ सौंपे घर बारा । हमहिं रहहिं सेवक तिन्ह हारा ॥
बालक कुटिल पितैं बौरावा । तेहि ते करन्ह सो बैग उपावा ॥
अबहिं विरिछ ना मूल सँभारे । डारहिं उत्पत ताहि उखारे ॥

जब वह मूल करै बिस्तारा। कैसेउँ कहै न चूक कुल्हारा ॥
देख अनुज कहँ कोपित ताता। बोला मरद यहूदा बाता ॥

वह बालक वै विरिध मैं, वै सौं पिता वह भाय।
दोऊ कै दुख हिये महँ, दोऊ जगत नसाय ॥

यूसुफ रैन सपन एक देखा। बहुर पिता तिन कहा सरेखा ॥
जानहु गरह एकादस आए। रबि ससि मिल मोहिं सीस नवाये ॥
सुन याकूब सु कीन्ह हुलासा। राज पाट सुख भोग विलासा ॥
जग महँ होहु महीधर राजा। सुद्ध बुद्ध नित आगर साजा ॥
पै यह सपन सुनै नहि भाई। नाहिन होहिं शत्रु दुखदाई ॥
मुख तिन बात निसारे कोई। अनत भेद वह परगट होई ॥
का होनार अनुज सों कहा। करहु बिचार सपन कस अहा ॥
बंधुन कहा खोट यह बारा। पितैं ताह मुँह लाय बिगारा ॥
रबि ससि मात पिता निरभाई। नखत एग्यारह हम सब भाई ॥

कीन्ह मता दस बंधु मिल, डारहि ता कहँ मार।
नाहि तो हम सब दास सम, वह ठाकुर घर बार ॥

पिता आदि हम सब सिर नावहिं। सपन झूँठ कहि नेह बढ़ावहिं ॥
हत्यो निरिप इमलाक हठीला। देव कहावे सुघर नवीला ॥
पिता सदा सो तासें लड़हीं। औ कबहूँ सरबर ना करहीं ॥
ताहि यहूदैं छिन महँ मारा। घर कोपहिं महँ सिला पबारा ॥
जो अस बज्र न टारे टरई। ताहि मारि निहचिन्त सो करई ॥
ताहि सो पुत्र कर आदर नाहीं। यूसुफ हित राखै हिय माहीं ॥
बसीकरन जो पितहिं पठावा। सोइ पिता पर मंत्र चलावा ॥
जो वह झूँठ कहत है बाता। जानहिं साँच सो ताकहँ ताता ॥
हम कोटिन जो बात सुनावें। उनहीं कू परतीत न आवें ॥

तेहिं यूसुफ कहँ मारिये, जहाँ न पावै नीर।
रक्त पिएँ मिट जाय रिस, जो कुछ क्रोध सरीर ॥

करिकै मत आपस महँ सारा। पिता पास आए भिनसारा॥
जो राउर हम आज्ञा पावहिं। लै यूसुफ कहँ बनै सिधावहिं॥
जेहि बन महँ नित मेष चरावैं। यूसुफ देखि हिये सुख पावैं॥
बालक देख सो मन हुलसाहीं। वे खेलहिं हम मेष चराहीं॥
कहा जाउ हम भेड़ चरावै। यूसुफ का कहुँ बिक लै जावै॥
मोर हिये उपजै यह संसा। जिन लैहि जाहु संग यह मंसा॥
तब सबूह मिलि यूसुफ पहँ आए। खेल कूद कै बात सुनाये॥
यूसुफ जाय पिता तिन कहा। हम हिय बहुत लालसा अहा॥
सब भाइन्ह सँग बनहिं सिधावैं। दिन भर खेल कूद घर आवैं॥

औ यूसुफ याकूब सन, बालक सम हठ कीन्ह।
दसो बंधु दस ओर नित, त्रत अँदोर करि लीन्ह॥

हम यक यक अस बल बरवंडा। हैं गयंद बली भुज दंडा॥
भागै सिंह हाँक एक मारैं। दसो बंधु दस दिग्गज टारैं॥
मैमँत गयँद न आनहि लेखै। काँपहि गैंडा सिंह बिसेखै॥
का हम सौंहँ जो करै सु आना। वृथा सोच तुम हियें समाना॥
यूसुफ तात सों बहुत हठ कीन्हा। होय व्याकुल तब आज्ञा दीन्हा॥
अपने हाथ सों केस बनाए। और पितैं बागा पहिराए॥
बार बार लै हिये लगावा। माया ते चख जल भरि आवा॥
चले तात यूसुफ के संगा। जस दीपक सँग फिरै पतिंगा॥
करै बिदा तेहि हिये लगावै। बिछुड़े प्रान महा दुख पावै॥

केहि बन महँ लै जाहिं तोहिं, मन न धरै अब धीर।
कोमल गात गुलाब सम, सहै सो घाम सरीर॥

लागहि छुधा जो बन के माहीं। तिरखा तें तुम अधर सुखावहिं॥
तुम बालक वह बन अँधियारा। बिक्र जंबुक हैं भूत बैतारा॥
पवन तेज ते तन कुम्हिलाई। धूप देख काया मुरझाई॥
लागहि प्यास जो बारम्बारा। होय घाम देखि बिकरारा॥
खड़े खड़े मुँह दूभर भारी। होय कंठ सो प्रान दुखारी॥

आयहु बेग न लावहु बारा। होइहि तात सो दुखित तुम्हारा ॥
चारि याम होय जुग चारी। साँझ परै सुठ होब दुखारी ॥
कहा पुत्र उपदेस हमारे। गाढ़ परे जिन दिहेऊ बिसारे ॥
मन सु सतै कछु होय जु ताता। सँवरहु एक निरंजन दाता ॥

कहा पिता रुबैल तें, सौंपहुँ तुम्हें परान।
दिन आछत लै आयहु, कियहु न साँझ निदान ॥

जो बिधि लिखा आन सो पूजा। करि न सकै कोऊ अब दूजा ॥
महा सिद्ध अब भए अधीरा। भूला अलख दयाल गँभीरा ॥
नीर छीर दुओ भा जनु भरा। सभउँ कहँ दीन्हों चित हरा ॥
जब वह प्यास लगे तब दीन्हो। ओ आरत बहु भाँति सो कीन्हो ॥
बाहर नगर बिरिछ एक आहा। द्रुम बिछोह नाम तेहि काहा ॥
परदेसी जो कहूँ सिधारे। कुटुँब हितू तेहि लग पग धारे ॥
रोय रोय समधै तेहि लोगू। चख जल सींचहि बिरिछ बियोगू ॥
तहँ याकूब जो रोदन कीन्हा। ओ यूसुफ जल मारग लीन्हा ॥
बहुत बेर लगि ठाढ़े रहै। तरवर बिरह बात जस कहै ॥

आगम बिरह बिछोह का, दीन्हा बिरिछ जनाय।
रोम रोम दुख व्याप्यो, लाग हिये पछताय ॥

डारहिं डार ओ पातहिं पाता। सुना वृच्छ तिन बिरहक बाता ॥
जब लहिं पिता दिष्टि भर हेरे। आरत कीन्ह झूठ बहुतेरे ॥
काहू अनुज सीस पर लीन्हा। काहू आप कहँ पाहन कीन्हा ॥
कोउ चूमै कोउ हिये लगावै। कोउ चूमैं कोउ काँध लगावै ॥
काहुन पीठ पर ताह चढ़ावा। जस तुरंग लै चहुँ दिस छावा ॥
कोउ कहै सिरताज हमारा। कोउ कहै सम प्रान अधारा ॥
जब लै गये दिष्ट के ओटा। सिर से डार दीन्ह जस मोटा ॥
कोउ मारै कोउ बाँधै हाथा। कोउ साँसै बहु कोप कै साँसा ॥

तुम्ह बालक अस निडर भए, रचि रचि बचन अनेक।
हम ते पिता बिमुख रहैं, यह तुम कीन्ह न नेक ॥

रचि रचि बचन पितैं बौरावा। तुम बालक अस विख बिखरावा ॥
भै भै मरहि करहिं सब काजू। औ बैठे चुप बिलसहु राजू ॥
अब सु कहौ का करौ उपाई। टूक टूक करि दैं हियँ भाई ॥
जब मारहिं चहुँ दिसि निरदाइय। रोय रोय एक एक पहँ जाइय ॥
मरतहिं लात परहिं तेहि दूरी। धावहिं लै निकासि कै छूरी ॥
लै पाँवरि उन काटि बहावा। नाँगे पाँव नबिय दौड़ावा ॥
कँवल चरन महँ परै फफोला। प्यास ते जीभ भई जस ओला ॥
यूसुफ नबी बंधु के आगे। साँसत देख सो रोवन लागे ॥
बंधु तुम्हारा अहैं लघु भ्राता। तुम्ह सो तात सन्ह सौंपेहु ताता ॥

मोंहि मारे तुम दुख है, पिता मरहि तेहि रोय।
तेहिं से अब दाया करहु, धरहु क्षमा रिसि खोय ॥

चहुँ दिसि तिन भाइन्ह तेहि मारा, भयो पियास तें बहु बिकरारा ॥
यूसुफ तबहिं पाय के आसा, गयो भागि रोहेल के पासा ॥
मोंहिं पितैं सौंपि तुम्ह दीन्हा। कौने दोख क्रोध तुम कीन्हा ॥
मारि लात उठि दूर पवारा। कहा बोलावहु एकादस तारा ॥
चंद सूरज जिन तोंहि सिर नाए। तेहि सँवरहु जो होंहि सहाए ॥
तब समयू ते माँगा पानी। रोय दिखावा जीभ सुखानी ॥
भाजन दीन्ह भूमि मँह डारे। क्रोधवंत होय मुख महँ मारे ॥
गात गुलाब सछत करि डारा। क्रोधवंत होइ मुख महँ मारा ॥
छुरा काढ़ि सिर काटन लागा। तब यूसुफ लादे पहँ भागा ॥

होय तरास लाग्यो कहै, जिन काटहु तुम सीस।
देहु डारि मोंहि कूप महँ, करै जो कछु जगदीस ॥

लातैं मारि जो दीन्ह पवारी। गयो पान कहँ ठाढ़ पुकारी ॥
तुम्ह पानी कर अहौ पियासा। हम प्यासे तुम खून के आसा ॥
वे निरदाइ न दाया करहीं। जीना सबै सपन करि देहीं ॥
गुफतालून जाद कै पासा। कहै बंधु मैं अहौं पियासा ॥
कहै बंधु मोंहि पानी देहू। मरौं पियास से धरम सो लेहू ॥

चाहा देहि यहूदा पानी। ढरकावा समयूँ रिस मानी॥
सबहि बंधु बोलहिं बिख बानी। चंद्र सूरज तें माँगहु पानी॥
गरह एकादस लेहु बोलाई। जो तोंहिं पानी देहिं पिलाई॥
नौ भाई कोपित भये, कहै बंधु सन बात।
बैरी छोट न जानिये, ना छोटे दिन रात॥

कोउ कहै यहि डारहु मारी। पियहिं रकत रिस मिटै हमारी॥
कोउ कहै बिष घोरि पिलावहि। कोउ कहै बन छाड़ि सिधावहिं॥
कहा यहूदा बंधु के मारे। होय बिनास नरसहि कुल सारे॥
पुनि मत कीन्ह सो होइ इकठाईं। डारहिं कूप माहँ बरियाईं॥
बन माँ कूप अहै अँधियारा। चला जाय जो परै पतारा॥
कुरता काढ़ि रक्त महँ भरहीं। पिता पास चलि रोदन करहीं॥
कहहिं कि बिक यूसुफ कहँ खावा। कहा तुम्हार सो आगेहिं आवा॥
यह कुरता लोहू कर भरा। हेरा बहुत सो पावा परा॥
दिन दस पिता करहिं दुख सोचू। पुनि मिटि जाय पुत्र कर सोचू॥
बनजारा कोउ आइहि, लेइह ताहि निसार।
लेइ जाइहि परदेस कहँ, मिटै अँदेस हमार॥

यही मता आपुस महँ कीन्हा। कुरता काढ़ि अंग तिन लीन्हा॥
यूसुफ नबी जो रोदन करहीं। निरदाई कुछ दया न करहीं॥
मोंहि कहँ नगन करहु जिन भाई। बसन समेत मोंहि देहु बहाई॥
मृतक देइ बसन सब कोई। मोहि नगन मारे का होई॥
रस्सी तासु गले महँ पिरुई। बहु मिनती माना नहिं कोई॥
आधे कूप जो पहुँचा बारा। समयू काट गुनी वहि डारा॥
भाई सत्रु कूप महँ डारी। चलै सुचित होय काज बिगारी॥
दीन्ह काटि जब गुन निरदाई। तब जबरैल सँभारेहु आई॥
लै सो कूप महँ ताहि उतारा। भये जबरैल पिता अनुहारा॥
कहा कि जिन चिंता करहु, धरहु हिये संतोष।
सिद्ध कीन्ह करतार तोहि, करिय सबहि बिधि पोष॥

किये प्रबोध भोग फल धरै। बसन पिन्हाय सोच सब हरै॥
यूसुफ नबी पिता कहँ देखै। रूदन कीन्ह औ पिता बिसेखै॥
करुना कीन्ह पिता हिय लाये। तब जबरैल सो उठ्यो छोहाये॥
जो निस दिन तुम्ह जोयहु गाता। सो अब कीन्ह रक्त रँग राता॥
अधर पीत जामुन सम किये। गात लोग बदमेल सो भये॥
नाँगे चरन धरमि दौरावा। रस्सी बाँध कूप लटकावा॥
जेहि भाई पहँ रोवै जाई। मारि लात वह दूर पराई॥
आधे कूप जो पहुँच्यो जाई। दीन्हा काट गुनी निरदाई॥

जस दुख दीन्ह सो बंधु मोहि, बैरिहु नाहीं देय।
गात सछत गये डारि, प्यास प्रान हरि लेय॥

सुनि जबरैल न कियो सँभारा। लागे बहै नैन जल धारा॥
मैं न होहुँ याकूब सोहावा। हौं जबरैल सरग तैं आवा॥
बाँधहु सत्त हिएँ औ धीरा। एक दिन दैव लगावहि तीरा॥
दुख बैराग बीत सब जाई। औं याकूब तें देइ मिलाई॥
करहिं बंधु तोरिय सेवकाई। होहु नबी जग राज कराई॥
सब दुख हरै करै तोहिं राजा। बंधु दास होय करिहैं काजा॥
जो करतार करहिं निज दाया। का सो करै बैरिय निरमाया॥
कोटि सत्रु जो कीन्ह उपाइय। इब्राहिम कहँ लीन्ह बचाइय॥
बैरी सबहि किये संहारा। भयहु ताह फुलवरी अँगारा॥

दिये बहुत दुख संत कहँ, करैं बहुत उद्धार।
जैसे कंचन कीजियै, खरा अगिन महँ डार॥

करिकै नगन अगिन महँ तावा। इब्राहिम कहँ कुरता आवा॥
सो कुरता न याकूब सुहावा। चित्र समान सो बसन बनावा॥
जंत्र समान भुजा महँ बाँधा। भूत बयारि न आवै राँधा॥
तब जबरैल नगन तेहिं देखा। भये दुखित लखि नगन सरेखा॥
तब कुरता बाजू तन खोला। पहिरायौ सो बसन अमोला॥
चौकी एक अनूप लै आया। तेहि पर यूसुफ कहँ बैठावा॥

जो अमरित ना सुना न देखा। सो यूसुफ कहँ दीन्ह सरेखा ॥
कहहु भोग सँवरहु करतारा। हरै दुख सो बेग तुम्हारा ॥
करि परबोध सो सरग सिधारा। यूसुफ तिन सो कह्यो कै बारा ॥
महा सिद्ध तुम होहु कै, महाराज जग माँह।
माँत पिता हत बंधु कुल, करहु तो सब पर छाँह ॥
अवया मार रकत रँग धारै। कुरता लै सो चलै हत्यारै ॥
बिरह बिछोह जो नगर निसारा। तहाँ ठाढ़ याकूब दुखारा ॥
औ यूसुफ कै भगिनी दीना। पिता संग वहि हती मलीना ॥
भइय साँझ नहि यूसुफ आये। केहि कारन तेहि बिलँब लगाये ॥
बार बार वहि बाट निहारी। ओ यूसुफ कहँ पिता पुकारी ॥
यही समय आये हत्यारे। रोदन करत झूँठ वै सारे ॥
सुनि रोदन यह भा बिकरारा। हिरदै मनहुँ बान अस मारा ॥
दुनिया कहै कुसल है नाहीं। बिरन मोर नाहीं उन्ह माहीं ॥
बिन बीरन यह नगर सब, भयो सून अँधियार।
पिता मुए घर ऊजरा, काह कीन्ह करतार ॥
लखि दुनिया सो छार चढ़ाई। कहाँ छाँड़ि आयो मोर भाई ॥
रोय रोय दुनियाँ गोहरावा। आवहु यहाँ पिता दुख पावा ॥
रोवै लाग देखि कै ताहाँ। सबहु आयो मोर बीरन काहाँ ॥
रोवत गये पिता के पासा। बहु बिलाप वै किय परगासा ॥
काह कहै कछु कहा न जाई। हम सब गये सो छाँड़ि चराइय ॥
पसुन पास यह खेलत अहा। तहाँ सो आन भेडहिं वह गहा ॥
ढुँढत फिरै सभै बन झारा। तब लहि बिक तेहिं कीन्ह अहारा ॥
रकत भरा कुरता वह पावा। देख हिये करुना होइ आवा ॥
तेहि ते पिता करो संतोखू। हम काहू कर आह न दोखू ॥
बात तुम्हारे जीभ कै, कैसे अबिर्था जाय।
बिधि कर लिखा को मेटै, यूसुफ कहँ बिक खाय ॥
सुनि याकूब सो मुरछित भयऊ। मानहु प्रान काल लै गयऊ ॥
जबराइल धरयो मुख हाथा। हरै साँस लखि धूमिल माथा ॥

खाय पछाड यहूदा रोवा। वृथा प्रान पिता कर खोवा ॥
का अस मरम बंधु तुम कीन्हा। पिता सिद्ध कै हत्या लीन्हा ॥
रोय रोय दुनियन सिर फोरा। भयो कठिन दुख रोज अँदोरा ॥
दिन भर बाट बिलोकत हारे। गये बार खिज बार सिधारे ॥
व्याकुल पिता पुत्र कै काजा। सिर पर पडे अचानक गाजा ॥
दिन भर रहै विलोकत बाटा। साँझ भये तेहि आयो घाटा ॥
भये साँझ यह दुख कै कारी। को मेटै यह निस अँधियारी ॥
बीरन मोर कहाँ पहँ गयऊ। जेहि बिन घर अँधेर सब भयऊ ॥

वह बीरन जेहि बिन भयो, घर बाहर अँधियार।
दहुँ आये तजि सुवन बन, कै दहुँ कुप महँ डार ॥

अस अज्ञान न कुरता मारा। लहू लाय ते आये सारा ॥
ज्ञानी लोग जो कुरता देखैं। करहिं बिचार औ झूठ बिसेखैं ॥
जो बिक खात रहत कत सारा। टूक टूक होय जात नियारा ॥
निस भर रहै बिकल बिसँभारा। आयो प्रान होत भिनसारा ॥
जब जागै तब यूसुफ कहा। कहैं लोग कत यूसुफ कहा ॥
तब रोवहिं अस छाँड डफारा। सरग दूत रोवहिं एक बारा ॥
तब जबरैल भूमि पै आये। तो याकूब नबी समझाये ॥
अब संतोष किये बनि आवै। रोदन किहें कोऊ न पावै ॥
तुम्ह अवतार सिद्ध कर लीन्हा। सहो दुख जो साँई दीन्हा ॥

पुत्र गये संतोष करि, प्रान देहु जिन रोय।
रोदन करहु सदा हिए, पुत्र जो कियो बिछोह ॥

तब याकूब सु चित्त सँभारा। रोवै लाग सँवर करतारा ॥
कहा कि कहो पुत्र का भयऊ। प्रान न गयो प्रान कत गयऊ ॥
तुम्ह कछु मरम दुखी कर जाना। करहु बोध कर सिस्ट बखाना ॥
जीयत अहै कि मिरतक भयऊ। जेहि बिन घर अँधियर होय गयऊ॥
कहा कि मैं कछु भेद न जाना। बिन अज्ञा का करहुँ बखाना ॥
मरन जियन जानै जमराजू। कै जानै जिन जग उपराजू ॥

तब याकूब कहा सिर नाई। पूँछहु तुम यमराज ते जाई॥
कहो जाय याकूब सँदेसा। जहाँ होय यमराज नरेसा॥
बोला जम यूसुफ कर प्राना। मोरे पास न दूतन आना॥
तब जबरैल सुनावा, वै संदेस अपार।
जेहि सौंपा तुम्ह पुत्र कहँ, तेहि सौं माँगहु बार॥
सुनि याकूब डरे मन माहीं। अलख त्रास ते सुठि बिलखाहीं॥
डरे हिएँ सिर दै मुँह मारा। मोंहि ते चूक भई करतारा॥
मैं बाउर बड अवगुन कीन्हा। चहौं दुःख जो उत दुख दीन्हा॥
कहा कि अब कीजै संतोषा। समरहु ताह करहिं जो मोषा॥
तब याकूब सो कुटी बनावा। बाहर नगर तहाँ चलि आवा॥
घर औ बार छाँड़ि सब लोगू। निस दिन करै कुटी महि जोगू॥
काहू दरस ना देय सोहावा। औ कोऊ तहँ जाय न पावा॥
रोदन भवन नाम तेहि राखा। यूसुफ नाम करै नित भाखा॥
जो सोए तो यूसुफ कहै। जो जागै यूसुफ मुख छहै॥
यूसुफ कहै भूख जब लागै। यूसुफ कहै प्यास तन भागै॥
नींद भूख औ प्यास महँ, यूसुफ नाम अधार।
सँवर सँवर मुख पुत्र का, रोदन करै अपार॥
नींद भूख तज साधहिं जोगू। करहिं तपस्या बिरह बियोगू॥
नित कुरता वह नैन लगावै। औ यूसुफ कहि कहि गोहरावै॥
रोवत नयन भये दोउ अंधा। फाट न हिया सँवर चित बंधा॥
गये नैन दोउ पुत्र बियोगू। जोगउ तैं साधा तब जोगू॥
यह बिध देख पिता कर हाला। भयैं पुत्र सब हिए बेहाला॥
रोदन जब याकूब करेई। सरग दूत कर जाप हरेई॥
जब याकूब रोय जिव खोवहि। जाय भुलाय दूत सब रोवहिं॥
कहाँ प्रान तोहि माइन्ह डारे। कहाँ छाँड़ि आये हत्यारे॥
केहि दिस जाउँ कहाँ तोहि हेरौं। कौने बाट नाम कहि टेरौं॥
निस दिन हिये लगाये, मैं तोहि सोवत पास।
सब निस जाग भयावन, रहौं बिचारत साँस॥

मुख तुम्हार अब देखत नाहीं। ताते प्रान रखै घट माहीं ॥
एक घडी जो दरस न पाऊँ। रोवत फिरौं चहूँ दिस धाऊँ ॥
जब लहि नाव लिये ना कोई। तब लहि जीवन दूभर होई ॥
अब तोर कौन सुनाइय नाऊँ। तोहि बिन सून भयौ सब ठाऊँ ॥
भयो भवन तोहि बिन अँधियारा। काटेब खाय सबहिं घर बारा ॥
केहि बन महँ तुम्ह काँ परहेले। तुम्ह बालक कत फिरहु अकेले ॥
मोरे साथ रहे मन माहीं। सुख तुम्हार कुछ देख्यो नाहीं ॥
केहि बन करौं सो खोज तुम्हारी। कवन देस होय जाऊँ भिखारी ॥
अब केहि बिधि दिन बीतहि मोरा। केहि बिधि रैन बिहायहि मोरा ॥

यूसुफ नाम रैन दिन, लेत रहै याकूब।
दिन भर पलक न लावे, पुत्र बिछोह अनूप ॥

केहिं सो साँझ लै हिये लगाउब। भोर होत केहि लाल जगाउब ॥
केहि के सुनब मधुर रस बाता। केहि कर हिये लगाउब गाता ॥
केहि के देखब चाल सोहाई। जेहि काँ देखि हंस मुरझाई ॥
केहि तें भेंट करब दिन राती। केहिं काँ देखि सिराइह छाती ॥
जब याकूब सो होंहि अधीरा। आवहिं जबराइल तिन्ह तीरा ॥
कहहिं कि तुम रोउब जिय खोवहिं। काँपे सरग दूत सब रोवहिं ॥
तुम अवतार कि सिद्ध सरीरा। ऐसे दुख जनि होहु अधीरा ॥
तब याकूब सो छाँड़ि डफारा। कहा कि काह करूँ करतारा ॥
ऐसे पुत्र काहे कहँ दीन्हा। मनहरिया फिर कस हर कीन्हा ॥

दाया कीन्ह अनेक बिधि, दीन्ह पुत्र अस मोंहिं।
देखि रूप गुन बिसुध भयो, तब मोंहि दीन्ह बिछोहिं ॥

तब काहें का अस चित लावा। जो अब हाथ रहा पछतावा ॥
अलख ठाढ़ चित उन सो लावे। ताकर फल मानुस अस पावे ॥
दीन दयाल करै अस दाया। दिये अनूप सुखी करि साया ॥
तेहि दयाल कहँ दइय बिसारे। देखे निस दिन नस्ट बिचारे ॥
फुलवारी बहु फूल बनाये। एक तें एक सुरंग बनाये ॥

जो मन पुहुप एक तिन लावे। जाय सूख कुछ हाथ न आवे ॥
चित्र अनेक जो रच्यो चितेरे। मोहित होय रूप रँग हेरे ॥
आवे चित्र काज कुछ नाहीं। चित्र काज सँवरहु मन माँहीं ॥
काहे न चित्र चितेरे लावहु। चित्र विचित्र रूप निरमावहु ॥
जो कुछ रहे न हाथ महँ, तेहि चित दीजिय काउ।
जो न मरे नहिं बीछुड़े, तेहि ते प्रीत लगाउ ॥
भोर होत फिर बन कहँ गये। अनुज सँघार सुचित मन भये ॥
यूसुफ मया मीत मन भयऊ। चोरिय एक यहूदा गयऊ ॥
जाय कूप मँह ताहि पुकारा। कह्यो बीर का हाल तुम्हारा ॥
यूसुफ नबी कहा बिकरारी। कहा यहूदा रोय पुकारी ॥
का पूँछो अब हाल हमारा। परे अकेल कूप अँधियारा ॥
बिच्छू साँप भरे तिन माँही। दिन एक जियन भरोसा नाहीं ॥
जब लग सुदिन न दीपक बारा। जाय न देइ पिता तिन बारा ॥
का अवगुन अस कीन्ह तुम्हारा। जो अस कूप अंध महँ डारा ॥
कूप अंध दुख भयो सँघाता। का पूछौ दुखिया कर बाता ॥
परे अँधेरे कूप महँ, कोऊ न संघी भाय।
बिच्छू साँप भरे तहाँ, केहि बिधि कुसल कराय ॥
मात पिता केहि सुख ते पाला। भाई अंध कूप महँ डाला ॥
कह्यौ पिता तें जाय सँदेसा। पुत्र तुम्हार गयो परदेसा ॥
मरत नाम जिन कह्यौ सुनाई। मरैं पिता निज प्रान नसाई ॥
कियो पिता की बहु बिधि सेवा। जेहिं ते पार लगे तुम खेवा ॥
छुधा तृखा जब लागे भाई। भूख हमार न दिहयो भुलाई ॥
जब दुख पड़े बिपत अवगाहा। सँवरहु बंधु मोर दुख दाहा ॥
बसन हीन तन नगन हमारा। सँवरहु बंधु ओ किहयो बिचारा ॥
सेवा किहेउ पिता कै भाई। जेहिते हम दुख जाइ भुलाई ॥
जब मिरतक कोई देख्यो भाई। सँवरेहु मूरत मोर सुहाई ॥
सुन यूसुफ उपदेस यहु, रोय यहूदा भाय।
कहा कि सँवरहु अलख कँह, जो दुख माँह सहाय ॥

समयू बहुरि पकरि बिक लावा। करि मुख बिकतें रकत लगावा॥
लैके ठाढ़ पिता पहँ कीन्हा। यूसुफ खाइ यही बिक लीन्हा॥
आयो आज फेरि वहि ठाऊँ। लायो ताहि पकरि कै पाऊँ॥
तब याकूब सु छाँड़ि ढफारा। कहैं लाग का तोर बिगारा॥
यूसुफ मुख लखि दया न आई। केहि बिधि लीन्ह सो तेहिं कहँ खाई॥
कैसे मन पतिआयौ तोरा। लीन्हसु खाय परान तुम्ह मोरा॥
औ याकूब सीस भुइँ लावा। अय दयाल सुखदायक रावा॥
अज्ञा होय कहे विक बाता। यूसुफ रकत अहै मुख राता॥
पूँछि लेहुँ सम अरिन्ह अयारा। तिन्ह यूसुफ कहँ कीन्ह अहारा॥

भय आज्ञाँ जगदीस कै, बोला बिक धरि सीस।
कह्यो अरथ युसुफ कर, लेहु हमार असीस॥

यूसुफ कहँ खायौं केहि ठाऊँ। देहु बतायै तहाँ चलि जाऊँ॥
यूसुफ केस तहाँ एक पाऊँ। लेउँ सुदान बैन महँ लाऊँ॥
लाखन अजा मेख हमारे। का तोहि मिला प्रान के मारे॥
वह मुख देख दया नहिं लागे। उठे न घात मया के आगे॥
कहै लाग सुन बिक नरनाहा। दोस न लाग कछू हम माँहा॥
जहँ लै सिद्ध औ साध सरीरा। तेहि मानुस दुःखित हम पीरा॥
तुम अज्ञाँ तिन संघ न देखै। वहै पुत्र परान बिसेखै॥
यूसुफ रूप देख सर नावहिं। तेहि कैसे हम खाय उड़ावहिं॥
हम ते घाट भये कछु नाहीं। देहु असीस घरहु अब जाहीं॥

सावक मोर बिछुड गयो, ढूँढत फिरौं बेहाल।
पुत्र तुम्हार पकरि कै, लाय कीन्ह मुख लाल॥

तब याकूब सँवरन लागे। विक तें पूँछन लाग सुभागे॥
तुम यूसुफ कर खोज बतावहु। कहौं सत्त संदेह मिटावहु॥
लाल हमार कहाँ लै डारा। जीयत अहै कि मारि सँघारा॥
सावक तोर दई तोंहिं दिये। यूसुफ सुधि कहै जस लिये॥
तब बोला बिक भुँई धरि माथा। का हम से पूछहु नरनाहा॥

पिसुन सरूप धरे मुख रहहीं। हम काहू कर दोख न करहीं॥
दोस होय अवगुन के लाये। पाप परावा परें सुनाए॥
आन उपाय कहै जो कोई। पातक तासु ताहि सिर होई॥
औ हम का जाने फिर भेदा। जानै सोइ रच्यो जिन भेदा॥
तुम्ह सुअंस करतार के, आवहिं दूत तोहि पास।
का पूँछहु हम से बिथा, पूछौं दइयँ जो आस॥
बिक टीले चढ़ि जाय पुकारा। किन यूसुफ कहँ कीन्ह अहारा॥
यूसुफ बंधु सो हत्या लावा। कहहिं कि बिक यूसुफ कहँ खावा॥
हैं याकूब नबी रिस माँहा। रोदन करै मरै नरनाहा॥
जो वह सराप देइ करतारा। सब बिक मरहिं होहिं जरि छारा॥
मैं करिया देइ भयौं अदोखा। अब ढूँढहु तुम आपन मोखा॥
सुनि सारे बिक आरन केरे। आन बार याकूब सुधेरे॥
कहा कि तुम नाहिंय कछु दोखा। करै अलख तुम सब कर मोखा॥
कुटिय के आस पास चहुँ ओरा। मारहि कूक औ करहिं अँदोरा॥
सुनि अँदोर याकूब दुखारा। आयो निकसि बिरह कै मारा॥
चहुँ दिस बिक रोवत चले, देखि नबी कर रोज।
कहै चलहु अब कीजिये, यूसुफ नबी कर खोज॥
बिक अजया याकूब पहिं आई। रोवै लाग सीस भुँई लाई॥
सहस जंगम बन महँ अहे। हमें दोख केहि कारन कहे॥
पुत्र तुम्हार हमें दुख दीन्हा। रकत हमार सुदोखित कीन्हा॥
सो कुरता लोहूकर भरा। तुम्ह अपने नैयनन्ह पर धरा॥
राउर नैन ज्योति हरि गई। यहि हत्या हम्ह सिर पर भई॥
जनम जनम मैं औगुन दोखा। केहि बिधि करै दैव हम मोखा॥
तब याकूब बोध तेहि कीन्हा। तुम्ह कहँ दोष दइय नहिं दीन्हा॥
दोष ताँह जो तुमका मारा। यूसुफ बसन रकत रँग धारा॥
कत कुरता यूसुफ कर सारा। अजया मार रकत सों भारा॥
तुम्हें दोख कछु नाहिन, वै दोषी हत्यार।
जिन्ह यूसुफ तें मोहि कहँ, कीन्ह बिछोह निसार॥

सात दिवस दुख भयो अपारा। उतरे तेहि बन माँ बनजारा॥
मालिक नाम महा अस नायक। जात मिसर कहँ वहि सुखदायक॥
आगे वै सपना महँ देखा। होय लाभ यह बन उन देखा॥
सदा आप नायक यह बासा। करै सो वही बनै महँ बासा॥
तोहि महँ आये एक बनजारा। जल हित डोल कूप महँ डारा॥
यूसुफ नबी डोल गहि लीन्हाँ। रोवत ताहि हाँक पुनि दीन्हा॥
डारि डोल भागा डर खावा। औ नायक तें जाइ जनावा॥
जंतु एक है कूप के माहीं। डोल अडोल है डोलत नाहीं॥
तब नायक वहँ आपसि धावा। तेहि के सँग मानुस बहु आवा॥
अंध कूप तें ताह निसारा। होयगा बन सगरो उँजियारा॥

पानी खोज जो कूप मँह, डारा डोल 'निसार'।
तँह यूसुफ कहँ पावा, धन नायक व्योपार॥

नायक देख परान अस पावा। होय मोहित लै चला सोहावा॥
लै यूसुफ कहँ चल्यौ चलाई। तब लहि पहुँचे वै दस भाई॥
धाय आन सब कीन्ह पुकारा। कहाँ जाँव लै दास हमारा॥
दिन पाँचक तें भाग परावा। खोजत फिरौं कहूँ नहिं पावा॥
यूसुफ चहा कहै निज बाता। नायक ते बरनै दुख भ्राता॥
तब समयूँ इबरी महँ कहा। बोल ब बचन जो जीवन चहा॥
यूसुफ नबी मौन तब साधा। लाग्यौ कहै बंधु दुख बाधा॥
भागे सदा दास बिन मारे। करे न काज भये हम कारे॥
भोग न करै रहै नित रूसा। कब ताहि रखें सो घाल मँजूसा॥

दास हमार वो चोर हैं, सुन नायक निज बात।
मोल देहु लै जाहु तुम, मिटै कोर दिन रात॥

मन महँ कहै लाख लहि देहू। यह बालक कहँ पुत्र करेऊँ॥
मालिक कहा कहौ सो देहीं। यह सुदास दोखी कहँ लेहीं॥
वह यूसुफ कर मोल न जाना। थोर दाम माँगा अज्ञाना॥
तीन दोख यह मँह बड़ मारे। भाये चोर रोय बद कारे॥

कहा लेउँ मैं दोषी दासा। जाय तो जाय रहे तो पासा ॥
मोरे पास रोकट है थोरा। बिसह्यौं मोल हस्ति औ घोरा ॥
बसन अतर औ पाट पटंबर। मृग कस्तूरी केंसर अंबर ॥
कहा कि रोकर होय सो देऊ। यह सु दास दोषी कहँ लेहू ॥
तीन दरम रोकर हम पासा। सो तुम लेहु देहु यह दासा ॥

अस कोरे हम दास तैं, भय नायक दिन रात।
जो तुम देउ सो लेब हम, अवर न अब कहु बात ॥

कहा कि जो कुछ देहु सो लेहीं। का दोषित कर मोल करेहीं ॥
तुरतेहि दीन्ह न लायसि बारा। तब यूसुफ पुनि कीन्ह जोहारा ॥
मालिक कहा दाम भर लेहू। लै मोंहि कहँ कागद लिखि देहू ॥
तब समयूं कागद लिख दीन्हा। मालिक मोल यूसुफ कहँ लीन्हा ॥
हम सब मोल दाम पर पावा। दास चोर कहँ बैंचि अडावा ॥
लै कागद यूसुफ कहँ चला। कहा कि करम हत्यों मोर भला ॥
लागे कहै कि भागे दासा। रखियो बँद मँह निसि दिन प्यासा ॥
जो बह भागि जाय कहुँ नायक। हमें न दोख दियो सुख दायक ॥
तेहि ते डारि देहु पग बेरी। ऊँट चढ़ाय फिरहुँ चहुँ फेरी ॥

गयऊ सँकर पग बेरी, हाथ हथकडी नाय।
टाट भूल पहिराय के, फिरहु सो ऊँट चढ़ाय ॥

कँवल चरन महँ बेरी नवावा। कुसुम्ह बाँह हतकरी पिंहावा ॥
टाट भूल यूसुफ कहँ दीन्हा। बसन अनूप काट तिंह लीन्हा ॥
जब वह बैंचि चले निर्दाई। यूसुफ रोय उठा अकुलाई ॥
आज्ञा देहु जाउँ उन्ह पासा। आवै समुद सो अस सो आसा ॥
नायक कहा मया तोहिं आई। वे जस सत्रु अहैं निरदाई ॥
कहा कि करत कोटि अनरीती। मोरे हितयें जाय न प्रीती ॥
पहने टाट भोल अस भारी। बेरी पकरि चला बनवारी ॥
यूसुफ बिदा होय तहँ कीन्हा। एक एक कहँ अंकाम दीन्हा ॥
वह रौवै वे हँसैं निर्दाये। टाट भूल लखि मन रहसाए ॥

भूँख प्यास दुख मृत्यु मँह, भूलि न जायहु मोह।
सँवरेहु सदा हिये मोंहि, हम दुख विरह बिछोह॥

अनुज दास कहँ सँवरेहु भाई। तुमहि सपथ जनि दिहेहु भुलाई॥
अब हम जाहिं कहाँ किन देसा। कते रे मिलन कत जियन अँदेसा॥
दास चोर बँधुआन बनावा। दहुँ आगे का चहिय दिखावा॥
अब हम कहाँ, कहाँ तुम्ह भाई। जनम संघ देइ बिधि बिलगाई॥
तात चरन सिर लायहु भाई। मोरे ओर तें कहेउ सुनाई॥
पिता न दिहेउ प्रान तुम्ह रोई। हेहु असीस भेंट जेहि होई॥
मोर मृत्यु जिन्ह ताह सुनायहु। फिर फिर सिर चरनन्ह लै लायहु॥
मरहिं न पिता करेउ अस काजू। नाहित होय दुओ जग लाजू॥
रोय रोय सब बरन सुनावा। तब नायक तेहिं बोलि भेजावा॥

मात पिता जन परिजन, लोक कुटुँब परिवार।
यूसुफ चला बिदेसु कहँ, किनआं नगर जोहार॥

रोवत चला ऊभ लै साँसा। रहे न पिता मिलन की आसा॥
चलै फेर देखहि उन ओरा। मकु भाई पूंछहिं दुख मोरा॥
भाइन्ह कहा विलम्ब जिन लावहु। नायक संघ विदेस सिधावहु॥
यूसुफ नैन मघा झर लाये। नायक पास गयो बिलखाये॥
यूसुफ हिये सँवर यह बाता। मुकुर देख मुख आपन राता॥
ऐस रतन संपत उन्ह पावा। चला बेगि नहिं बार लगावा॥
मन महँ जस कीन्हे अभिमाना। तस सुमोल आपन हम जाना॥
तेहि अवगुन यह दुरगत भयऊ। दास चोर बँधुवा होय गयऊ॥

चला सँगहि लै नायक, यूसुफ ऊँट चढ़ाय।
फिरि फिरि करै जुहार वह, किनआँ देस सिर नाय॥

नायक पंथ मिसर का लीन्हाँ। चहै दास यूसुफ सँग कीन्हाँ॥
लियै जात सँग वै निरदाई। मात गोर पर पहुँचा जाई॥
यूसुफ नबी नैन भरि हेरा। रोय रोय माता कहँ टेरा॥
लखि माता की कबर सुहाई। होय बिकरार गिरा मुरझाई॥

पुत्र तुम्हार जात परदेसा। भएहुँ दास देख्यो नहिं भेसा ॥
वै चरनन महँ देखहु बेरी। टाट भूल जो कबहुँ न हेरी ॥
लोटै पड़ा कबर पर रोई। खाय पछार जीव कत खोई ॥
देखि कबर पर दास अभागा। क्रोधवंत होइ मारन्ह लागा ॥
यहि अवगुन यह मोल बिकाने। अबहूँ त्रास हिये नहिं माने ॥
बेचनहारन्ह सत कहा, भागि जाय यह दास।
मस्तक मारि सो लैचला, पकरि सो नायक पास ॥
जब सो दास यूसुफ कहँ मारा। माता कबर काँपि एक बारा ॥
प्रान हमार भयो तुम दासा। मारि तुम्हें करि दास निरासा ॥
पदुम बरन जो चरन तुम्हारा। तेहि चरनन महँ बेरी डारा ॥
कौन देस तोहिं कहँ लै जाहीं। जहाँ सुमात पिता कोउ नाहीं ॥
काँपैं कबर ओ यूसुफ रोवा। दास पुत्र तें मात बिछोहा ॥
आँधी उठी भयौ अँधियारा। सूझि परै नहिं हाथ पसारा ॥
घन गरजै बादर चढ़ि आए। दामिनि कौंध चमक दिखराए ॥
आवै चमक जो नायक पासा। लखि मालिक मन भयो तरासा ॥
मैं तो दोष कीन्ह कुछ नाहीं। केहि कारन दामिनि डरपाहीं ॥
बार बार जो आवै जाई। मालिक देखि हिए डर खाई ॥
कौन पाप मोहि परगट्यो, कीन्ह दइय अस कोप।
जानि परै अँधकार महँ, सब मिलि होब अलोप ॥
तब एक दास आगे चलि आवा। औ मालिक तें भेद जतावा ॥
दास जो मोल लीन्ह तुम आजू। भयो कोप बिधि तेहि के काजू ॥
जैसे तेहि मारा बिन दोखू। तेहि सुदास तें माँगहु मोखू ॥
हत्यौ कबर पर रोवत दासा। तेहि मारत अँधेर चहुँ बासा ॥
तब मालिक यूसुफ पहँ आवा। नाय सीस कर जोरि मनावा ॥
करहु छमा औ देहु असीसा। जेहि तें छिमा करै जगदीसा ॥
तब यूसुफ दोउ हाथ पसारा। मिटि गा गरज कौंध अँधियारा ॥
कीन्ह बहुत हठ बेचन हारे। तेहि कारन बेरी पग डारे ॥
बैरी पाँव ते काटि बहावा। करि असनान बसन पहिरावा ॥

मालिक देखि अधीन भा, कीन्ह बहुत अरदास।
जैसे पकरि मँगाय कै, सौंपि दीन्ह सो दास॥

लै आए यूसुफ कै पासा। कहा कि है दोषी यह दासा॥
जो तुम कहौ सो साँसति करहीं। जेहि तें सबहि दास तोंहि डरहीं॥
यूसुफ नबी बोल यह चेरा। निज बाहुन तेहि आनन फेरा॥
हत्यो जो रंग स्याम अँधियारा। चाँदी सम होयगा उँजियारा॥
मालिक देखि सो अचरज कीन्हा। वह सुदास यूसुफ कहँ दीन्हा॥
पुत्र समान रखै तेहि लागा। कहै कि भाग मोर अब जागा॥
नित नवीन बागा पहिरावै। अपने संग सो भोग खवावै॥
यूसुफ नबी करै नित रोवा। सँवर सँवर याकूब बिछोहा॥
मालिक भेद बहुत निरभावे। छुटि सुदास नहिं और बतावे॥

मालिक साज समाज के, चला मिसिर के देस।
कहूँ बिरह दुख ताकर, कीन्ह जो मिसिर परबेस॥

जुलेखा बरनन खंड

अब बरनौं यह कथा सुनावा। जासु बिरह तेहिं मिसर लै आवा॥
मगरिब देस सो नगर बखाना। तहँ तैमूस शाह सुलताना॥
सबूह कछु ताहि दीन्ह करतारा। राज पाट सब कटक सँवारा॥
संतति और न दीन्ह गोसाईं। सुता एक अछरी कै नाईं॥
सो कन्या हुत बार कुमारी। नाम जुलेखा दई सँवारी॥
भई तरुनि जग बास बसानी। रूप अनूप जगत सब जानी॥
देस देस के नृप सुलताना। कीन्ह चाह सुलतान न माना॥
दुहिता जोग रूप कहँ पावा। जेहि तें होय सँजोग मरावा॥
कहँ यह जोग जगत महँ कोई। जो यह कन्या कर बर होई॥

सात दीप से चाह उत, लागे आवे जाय।
काहू देय न उतर नृप, तौ लै गरब सुभाय॥

अब नख सिख बरनौं तेहि केरा। बाउर होय जो दरसन हेरा॥
प्रथम कहौं माँग कै रेखा। सुरसती जमुना बिच देखा॥
खरग धार वह माँग सोहाई। सेंदुर तहाँ न रकत लगाई॥
औ ता महँ गूँथे गज मोती। राहु केत महँ नखत के जोती॥
दुऔ दस घन बादर जस छावा। मध्य कौंध चमकै दिखरावा॥
दामिन अस वह माँग सोहाई। केस घमंड घटा जस छाई॥
जस जमुना के नदी अपारा। माँग बाँध तिन्ह सुघर सँवारा॥
सेत बंध तस माँग सोहाई। बिरही नैन बार जनु पाई॥
जो न होत वह माँग अनूपा। डूबत नैन स्वरूप अनूपा॥

माँग सुहाई सुख बँधी, भाग अधिक तेहि दीन्ह।
राहु केत दोउ दस तहाँ, मनहु किरन रब कीन्ह॥

केस सीस का करौ बखाना। तच्छक देखि सो ताहि लजाना॥
मुख पर लरहिं जो होइ बेकरारा। तब संदेह करै संसारा॥
कोउ कहै अहै तम राजा। सोहै तहवाँ जोत बिराजा॥
कोउ कह अहै दिनेस सोहावा। बरत हेत कालिंदी आवा॥
कोऊ कहै कि नागिन कारी। दीन्ह छाँड़ि मन सो उँजियारी॥
कोऊ कहै श्याम अलि मोहा। पुहुप पराग आय तेहिं सोहा॥
पुहुप चित्र महँ मृग मद बारा। खींची चित्र चितेरन्ह मारा॥
केस सीस मानो निसि कारी। प्रात काल मुख कै उँजियारी॥
केस रचत तज आस न पासा। को तेहिं जाय सो पावै बासा॥
सिरिस फूल तहँ सोभा देई। औ चोटी लखि मन हरि लेई॥

बेनी गूँथी लरी से, जग नागिन बन लीन्ह।
मूँगा चौकी पीठ पर, भान छाँड़ि तेहि दीन्ह॥

अब लिलाट बरनौ सुखकारी। राका ससि तासों उँजियारी॥
कनक खोर सो टीका दीन्हाँ। ससि गुरु कमल अंध ग्रह कीन्हाँ॥
मंगल बूँद सुरंग सोहावा। ससि गुरु भुम्म एक ग्रह पावा॥
राहु केत गज दोउ दस कारे। मध्य सोम पूरन उँजियारे॥

तहाँ सो झलक किनारी देखा । जस ससि महँ दामिनि परबेसा ॥
इत अवरोध उधुंध सुहावा । दुओ दस राहु गुपुत दिखरावा ॥
गुर सुर कुज ससि कै यक ठाईं । सोहैं सदा लिलाट सोहाईं ॥
गिरवर गढ़ सोहै तिन्ह सारा । होय बिकल तेहिं देखन हारा ॥
जोत कहिय मन झूठि कै जाना । उन कै अंग बिकल भै आना ॥

चंद लिलाट न सोहै, पूरन जोत अपार ।
वह कलंक बिकलंक नहिं, वह षट बुध लहि सार ॥

भौंह धनुक का बरनै कोई । जाय सो ग्यान तहाँ लखि खोई ॥
बरनै सर वह धनुख समाना । ताहिं देख जग डरपै प्राना ॥
भौंह कमान चढै नित रहै । सर संधान सो मारन्ह चहै ॥
गाछ गाछनैं सुंदर सोहैं । लखि भृकुटी सो सूर मन मोहैं ॥
इन्द्र धनुक तेहि देखि लजाना । खीन बान होइ बेगि बिलाना ॥
धनु महँ जीव आप परबेसा । दुओ दस केस सोहावन केसा ॥
भौंह सरासन भृकुटी बाना । नैन बान इत बाँधहिं बाना ॥
देखि ताह थिर रहै न ग्याना । जाय भूलि सब सुद्धि पराना ॥
तिन्ह बेंदा कोटिन छबि देई । धनि मानहु जीवन हरि लेई ॥

धनु भौंहैं बिधनै रच्यो, भृकुटी सनमुख बान ।
देखि सरासन सिर चढ़ै, काँपे जगत परान ॥

नैन देखि मन होय बेहाला । जासु कटाछ हिए महँ साला ॥
सेत साम ओ अरुन सोहावा । बिख अमिरित मधु घोर दिखावा ॥
जाकहँ लखै भये चख राता । मरि मरि जियै रहै मदमाता ॥
अंबुज बरन दिधिग अरुनाई । भानु बरन होय गयो लुभाई ॥
अञ्जन जोर सदाँ मतवारे । घूमहिं निस दिन प्रेम अखारे ॥
दौ बोहित दोउ नैन सँवारा । लाज सनेह बोझ दोउ भारा ॥
दुअ अँबिरित कै सुभग कटोरी । ता महँ सरब हलाहल घोरी ॥
लहर कटाछ न जाय बखाना । जिन देखा तिन निश्चय माना ॥
दोइ खंजन सारद रितु माहीं । राका ससि निरभरै लडाहीं ॥

दुओ सुनैन जग में किए, जाल सितासित साज।
लाय बिछाया मधुर बिध, मन मोहन के काज॥

दोउ सरवन दुइ सीप सुहाये। मोती भरा सदा दिखराए॥
करनफूल और पात सुहाए। बाली तेहाँ अधिक छबि आए॥
बरनि न जाय सरव रस ताके। प्रेम बचन सुनि निसि दिन जाके॥
प्रथम प्रेम कर सरवन बासा। बिन नैनन कर करहिं पियासा॥
बहुरि हिए महँ करि बर बेसा। करहिं ताहि बाउर कै बेसा॥
पुनि सरूप सरवन सुख दाई। करन करन का बरन सोहाई॥
कान अनूप सो प्रेम नगीना। कानन ते उपज्यो नित हीना॥
कान न करहिं सो कान सोहाए। सुनहिं बचन सो वह मन भाए॥

सरवन अधिक सोहाने, दुअ दस रूप अनूप।
बिन कटाक्ष करतार कहँ, दुओ दस रतन सरूप॥

नासिक रसिक सदा रस गाहक। बास सुबास लिए जेहि लाहक॥
नथ बेसर छबि खेल कराए। मोती डोलत हिया डोलाए॥
मानहु हाथ सिकन्दर केरा। रूप भँवर ते लहरन फेरा॥
मोती पकसि अधर पर आई। चिनगी मनो चकोर चुराई॥
सबहि मुख के सोभा वइ नासिक। सब रस लीन्ह औरहिं सो बासुकि॥
जस चंपे की कली सोहाई। खड़्ग धार तेहि मन बिकसाई॥
नासिक रसिक महा सुकुमारा। निरखहिं मनुस अनेक अपारा॥
धन नासिक की रीत सोहाई। गुन अवगुन सबहू दीन बताई॥
सभै बदन कर अहै सिंगारा। बांधे काम खरग कै धारा॥

नासिक सोभा का कहैं, सब मुख सोह बढ़ाय।
तापर ऊँच सुहाए, उत समुंद्र अधिकाय॥

अब कपोल बरनौ सुख दाई। गात गुलाब देखि मुरझाई॥
सबहि कपोल सुरंग सुहावा। देखत काम ताहि छबि आवा॥
कँवल कपोल न जाइ बखाना। कहँ ससि पर जग ताहि समाना॥
बेसर देख सो आन लजाए। कहँ तेहि सम जेहि उपमा लाए॥

ता में दसन अनूप सोहावा। तिल कपोल छबि बरनि न आवा ॥
बिसुकरमै लखि सुधर कपोला। दीठ परै तिल दीन्ह अमोला ॥
ईंगुर जान कपोलन साना। उत सुरंग तिन्ह भँवर भुलाना ॥
सिहर सुहावन बोल अनूपा। जाय रूप लखि जाय सुरूपा ॥
रचा चतुर बिधि सुधर चितेरा। परी बूँद खसि केरिन हेरा ॥

कँवल कपोल सोहाने, तिन सोहै तिल स्याम।
जस अलिन्द अरबिंद पर, आन कीन्ह बिसराम ॥

अधर सुधा घर बरनि न जाई। भये अनूठि वै जूँठन पाई ॥
अँबिरित सम देवतन कर जूँठा। वह सो अधर पुहूप अनूठा ॥
जानि न परहिं अधर उत खीने। नित भाखैं वै मधुर नवीने ॥
सुनत बचन वै अधर सोहाए। ऊख पियूख बनूख सुखाए ॥
अधर सजीवन मूर सुहावा। सुधा पिडाक बिरंचि बनावा ॥
अधर खोल जब वह मुसकाई। खान सजीवन की खुलि जाई ॥
जब मुसकाय सखिन्ह सें गोरी। झरहिं फूल औ होहिं अंजोरी ॥
अरुन मृदू औ अमिय सुधारा। रहत अधर पियूख अधारा ॥
जो वह अधर मधुर मुसकाई। तो मिरतक|कहँ देत जियाई ॥

अधर सुधाधर मधुर उत, कीन्ह सुरँग सुख भाग।
जेहितें बोलें औ हियें, सदा सजीवन पाग ॥

चिबुक सो ताहि का बरनै कोई। सिद्धि सदन महँ कूप सो होई ॥
देखत कूप होय बिकरारा। बूड़ै मरै जिऐ इक बारा ॥
प्यारे बदन सिद्ध करतारा। तहाँ कूप महँ चिबुक अपारा ॥
चहै दिष्टि मुख देखै लागै। पड़े कूप महँ जाय सो थाकै ॥
भँवरन पड़ै डीठि वह जाई। टक टक रहे सो थाह न पाई ॥
चिबुक गाड़ उत सुडौल सँवारा। मज्जहिं जग मानुस बिसतारा ॥
वह सुझलक जेहि उपमा पाहीं। बूड़हिं तड़पहिं चित तेहि माहीं ॥
परे जबहिं डूबहिं उतराहीं। पार घाट तेहि पावत नाहीं ॥
गाड़ अनूप बार बिसतारा। चमकै सुभग सो दई सँवारा ॥

चिबुक सुहावन सुंदर, गाड़ अनूप अपार ।
को तिन महँ बूड़हि तरहिं, कतहुँ न पावे पार ॥

गिवँ अनूप बरने का कोई । देखत पाप जाय तेहि धोई ॥
गींव सुहावन सुभग अनूपा । जातरूप डरि जाइ सुरूपा ॥
कुंदन चाक चढ़ाय बनाए । देहि अदेहिन गार सों सुहाए ॥
चमकै अरुन सुहावन गीऊँ । कनक खोट जेहि लखि जीऊँ ॥
बिसुकरमै उत सुंदर साजा । गीवा देखि हिये महँ लाजा ॥
लखि सुगींव थिर रहै न ज्ञाना । साँचे ढार रचा सज्ञाना ॥
चंपक कली उर बसै अनूपा । कहँ भूखन जो गिवँ रस रूपा ॥
सभै अंग बिधि आप सँवारे । सभ ऊपर वह गींव निवारे ॥
कंठ अमोल गोल उत सोहा । मुनि गँधरब रिषि ता लखि मोहा ॥

गीव उठाने गरब तें, पड़ै कूप अभिमान ।
रंभा सिध औ उरबसी, रमा मनोज लजान ॥

उर चमकै जस उदित जुन्हाई । तिन्ह उरोज दुइ मुरति सुहाई ॥
कोमल कुंच बन्यौ धरनीसा । बरन लरै फल रंग महीसा ॥
नारंगी सो उरज कठोरा । कुछ उपमा तेहि जाय न जोरा ॥
उर कुंदन पानी जस डारा । दुइ मूरति महँ आप उतारा ॥
दोउ लाल कै मूरति साजा । देखि सो लाल रंग वह लाजा ॥
कुंदन बागन क्यारि बनाई । दुइ अँबिरित फल तहाँ सोहाई ॥
कँवल कोबिदहि उरज सोहाई । चख अलिंद रस लीन्ह लुभाई ॥
मुरत मनोज देखि कै हारा । निज अँवधाय सो रख्यौ नगारा ॥
घुँघची सम तेहि रंग सोहावा । तहाँ स्यामता उत छबि पावा ॥
तहाँ हार औ मोहन माला । होय प्रान हाल बेहाला ॥

कुच कठोर देखत हरै, सुर नारी एक बार ।
काम कला पूरन तहाँ, कीन्ह आप बैपार ॥

छतिय अनूप दुइ लहै सँवारा । पान फूल कै रहै अधारा ॥
रोमावलि रेखा तिन्ह सोहै । नैनन्ह देखि ताहि मन मोहै ॥

अँबिरित कुंड सो नाम सोहाई। रहै नागिनी मुख लपटाई॥
देखि गरुड़ वह चकिरित भई। नागिनि ठहकि तहाँ रहि गई॥
अँबिरित कुंड नाभिमुख पूरा। रहि पाछे मुख फेरि न मोरा॥
छतिय निहारि सखिन्ह ललचाहीं। सुर नर मुनि कोउ देखा नाहीं॥
जो देखे वह छतिय सोहावा। पूरन काम सो आन सतावा॥
ता पर पीठि अनूप सँवारा। होय मलीन दीठि कै मारा॥
कोमल बिमल पेट निरमाया। रोमावलि बेनी कै छाया॥

रोमावलि बेनी बिरह, सोहै छत्र अनूप।
गात सोहावन उत बिमल, छाया अतुल सरूप॥

का बरनै भुज सोभा कोई। रचा चित्र महँ चित्रित सोई॥
भुज ते कर अँगुरिन लहि सारा। चढ़ा उतार सु चित्रित धारा॥
पुहुप छत्र वह दंड सोहावा। काम चितेरै चाक फिरावा॥
भुज भूखन कर भूखन सोहै। अँगुरिन मुंदरि लखि मन मोहै॥
दोउ कर सोहै ललित कलाई। भले देख अच्छ पाय अछाई॥
वह सावक चंदन कै साखा। लपटे रहैं करैं अभिलाषा॥
कर भुज ते उत सुंदर साजा। रोम रोम छबि सिस्ट बिराजा॥
भुज भूखन नौ रतन सोहावा। कर पहुँचीन जरत छबि पावा॥
चित्त हरा लखि पावन रूपा। धनि पावन कर रूप अनूपा॥

इंदु बुद्ध अरु मेंहदी, रतनक जनु तेहि बान।
तेहि ईंगुर छबि देखि कै, रहै मोहि मन मान॥

पीठहिं तेहि कर गोल बेयारी। ता पर परी जो चोटी कारी॥
मूँगे की चौकी छबि देई। तिन बैठे नागिन छबि देई॥
पीठ के तन को सकै निहारी। डँसै डीठ महँ नागिन कारी॥
वह सो पीठि जेहि तजे न डीठी। देखा करै सदा वह डीठी॥
देखत रहै पीठि चख हारी। पाछ परे रह डीठ न पारी॥
सुंदर पीठि कनक रँग धारा। बिसुकरमैं जस साँचै ढारा॥
पीठि देखि मन चक्रित होई। कुसल छेम लखै का कोई॥

दुअ दस पीठि अपूरब देखा। सोहै बुद्ध कनक कई रेखा ॥
सो रेखा लखि ज्ञान हराई। कदलि रेख के पटतर लाई ॥

पीठि दीठि देखत सदा, होय हिए बिकरार।
नागिन बेनी तिन्ह बसी, डँसी पीठि एक बार ॥

निसँक लंक बरनी नहिं जाई। डीठि भार कत सकै उठाई ॥
रहैं मखी अचरज कै माहीं। कोउ कह आह कोउ कह नाहीं ॥
बार चाह कटि कोमल बेनी। देखि न सकै सो डीठि बिहूनी ॥
नारिन संग जहाँ पग धारा। लचि लचि जाय बार कै भारा ॥
चलत नारि मन संग करेई। दुमची लचि धनु हिया डरेई ॥
कनक तार अस लंक सोहाई। कोंप दीठि सो रहै डराई ॥
धन चरित्र वह सुघर सँवारा। सहैं नारि सभ तिन कै भारा ॥
सभ तन देखैं नैन सोहाए। अंग संग लखि तेहि डर खाए ॥
कटी भाग छबि देइ अपारा। मोहहिं सुर मुन तेहिं झँकारा ॥

निरगुन सुरगुन पाव जस, तस कटि परै न देखि।
अवर अंग देखैं नयन, भागहिं लंक बिसेखि ॥

जंघ तंत का करौं बखाना। कँघल अमोल सुभग सुर ताना ॥
भारी जंघ तंत सोहावा। पिंडुरी जहाँ अधिक सुख पावा ॥
मूँगा की यह जंघ सुहाई। तस पिंडुरी अस चाँक सुहाई ॥
का बरनै ताकै सुकुमारी। सभ तन सौंह तासु अधिकारी ॥
औ पिंडुरी सोहै उत गोरी। नैनन भार होय मति थोरी ॥
पिंडुरी जंघ लखि रहै न ज्ञाना। लखि तँत जंघ तजहिं सब प्राना ॥
जैस तंत तस जंघ सोहाए। तस पिंडुरी अस चाक फिराए ॥
चाक चढाय सँवार्‌यो ताही। होय अधीर नैन लखि जाही ॥
तिन्ह पायल पैजनी सोहाई। घुँघरू बिछिया बुद्धि हेराई ॥

जंघ सोहावन देखि कै, सत्त धरम भजि जाहिं।
पिंडुरी निरखत पाप दुख, हरै पला छिन माहिं ॥

नख अमोल कछु बरनि न जहहीं। कँवल चरन लखि संपुट गहहीं॥
जस अरबिंद सुरंग सुहावा। तस वह चरन अनूप बनावा॥
देखि कमल होय रग बिहीना। वह सुचरन सुख रँग रस लीना॥
चरन बरन तेहि जाहिं सोहाए। देखत पाप सोभाग हेराए॥
औ अँगुरिय तेहि सुंदर आनी। मेहँदी ईंगुर ही के पानी॥
यक नूपुर बिछिया उत सोहै। कोकिल सुनत सबद वह मोहैं॥
रूपौ चरन सब सोभा साथा। देखत चित्त रहे तेहि हाथा॥
उत कोमल एँड़ीय सोहाई। देखि महाउर हिए लजाई॥
जब तरुनी भइ राजकुमारी। काम अनंग अंग संचारी॥

उत एँड़ी सुकुमार तेहि, अँबिरित लाल लगाय।
धरत पाँव वह बाल के, वासुकि देखि लजाय॥

सखिन्ह जो चाहें पाँव पखारा। चक्रित ज्ञान रंग लखि सारा॥
रूप अधिक तैं हिए उछाहा। भूखन रचि तिन गँधरब लाहा॥
निस दिन सखिन्ह संग फुलवारी। करै कुलाहल कोट धमारी॥
मदन प्रवेस हिए महँ कीन्हा। पेम सुरंग अंग महँ कीन्हा॥
देख सरूप सखिन्ह ललचाहीं। पवन बास तिन्ह पावत नाहीं॥
धाइ खिलाई सखिय सहेली। तेहि के संग करहि सुख केली॥
साज सिंगार औ अभरन जोरा। रूप गुमान न काहुन जोरा॥
मता पिता के प्रान अधारी। समय सोच नहिं जानै नारी॥
और रोग तेहि तैं मुरझाहीं। गात तंत उन्नत अधिकाहीं॥

भय बालापन बारी, सदा रूप अधिकाय।
मात पिता वहि तरुनि लखि, लागै हियै लजाय॥

स्वप्न खंड

एक रात जो करै सोहावन। प्रेम स्वरूप बिरह उपजावन॥
प्रेम भरी रजनी उँजियारी। सखिन्ह साथ सोवै सो नारी॥

आधि रात लहि जागि कुमारी। प्रेम कै बात सुनत सुखकारी ॥
आई नींद तमसि अलसानी। सोइ गईं सब सखी सयानी ॥
सोवा पहरू औ कोतवारा। सोवा सो उत घंट वजन्हारा ॥
सोवैं सुखी दुखी नर नारी। सोवैं खग मृग खेत करारी ॥
सब सोवा कोउ जागत नाहीं। जागत एक प्रेम जग माहीं ॥
सोवै लगि तेहि समय जुलेखा। यूसुफ कहँ सपने महँ देखा ॥
मीठी नींद सबै लग सोवा। प्रेम बीज हिय जा महँ गोवा ॥

भाँन सरूप तहँ आय गय, देखि रहै टक लाय।
लीन्ह प्रान तिन्ह काढ़ि कै, रूप अनूप दिखाय ॥

देखत नारि बिमोहित भई। निरख रूप बाउर होइ गई ॥
नैन बान ते बेधा हींया। बात न आउ मौन भइ तीया ॥
छिन एक ठाढ़ रहा रँगराता। पुन मुसकाय कीन्ह अस बाता ॥
हम तुम्ह का चाहा चित लाई। तुम्ह हियँ ते जिन देहु भुलाई ॥
कहि यह बात चहा उर लावा। जागि परी कुछ दिष्टि न आवा ॥
जागत कै चकचौंहट लागा। जस पंछी कर तें उड़ भागा ॥
हिरदै लाँगि प्रेम की गाँसी। भयौ सुज्ञान हानि तन नासी ॥
सोवत सुख जागत दुख पावा। रोम रोम तन बिरह अकुलावा ॥
मूरत एक सुदिष्ट दिखाई। हिए माहि जस गई समाई ॥

प्रेम फंद अरुझाने, गई ज्ञान मति भूल।
सँवर रूप अकुलाय मनु, उठै हिये महँ सूल ॥

उठि बैठी मुख सँवरत सोई। नई लगन कहि सकै न कोई ॥
जब सँवरै मुख तब बिलखाई। लै सुलाज तें रोय न जाई ॥
बिरह बान बेधा एक बारा। रोम रोम ब्याकुल तेहि छारा ॥
चिनगी बिरह आगि कै लागी। सुलगै लाग हिए महँ आगी ॥
सखिन्ह देखि धन बदन मलीना। मन व्याकुल तन सुध बुध हीना ॥
पूँछै कत तुम्ह चित्त उदासा। कवन सोच तुम हिरदैं बासा ॥
तुम्ह सब कर जग प्रान अधारा। काहे लाग भई बिकरारा ॥

सम सुख तुम्हहिं बिधाता दीन्हाँ। मन मलीन केहि कारन कीन्हाँ॥
पान न खाहु न सूँघहु फूला। अभरन अबर सिंगारहु भूला॥

दिन भर मौन किये रहै, भूख प्यास गये भूल।
पान न खाय न रहि सकै, काँट भए सब फूल॥

भूखन रतन उतारि जो डारा। दुख दायक भये सबहिं सिंगारा॥
मन महँ सोच करैं मुरझाई। लैगा प्रान स्वरूप दिखाई॥
नाउँ ठाउँ कछु जानत नाहीं। कहाँ सो खोज करूँ जग माहीं॥
नियरें ठाढ़ि रहै वह मूरति। जेहि बिन तन मन प्रान बिसूरत॥
रूप दिखाय सो चेटक लावा। मधुर बचन कहि अधिक लुभावा॥
सेज परै जागै फिरि लखै। लखै न रूप उठै फिर रोवै॥
ना वहि मूरत ना वहि ठाऊँ। कौन हत्यो वह का नहि नाऊँ॥
छूटै आँसु चलै जस मोंती। कहै के अय मनभावन जोती॥
कहाँ गयो वह रूप दिखाई। नट नाटक अस लाई॥

तोहिं संपति वहि दइ किये, जिन्ह कीन्हाँ तोंहि भूप।
एक बार फिरि आवहू, आनि दिखावहु रूप॥

ज्ञान हेराय तो मुरत हेरानी। लागत आगि न बरसै पानी॥
जातवेद होय सेज जराई। जानि बेध सब बेद भुलाई॥
पावक झर से पवन जो लागे। रोम रोम लै सरागन दागे॥
खिन उठ सेज परै बिकरारा। खिन उठ कै बैठे विसँभारा॥
खिन तम डहै से अगिन उदाना। खिन बरसै चख ऊँदक झराना॥
खिन सो उठै विरह कै ज्वाला। खिन मुख सँवरत होय बेहाला॥
कहै कि ए बैरी दुख देवा। का मै कीन्ह चूक अस खेवा॥
खिन रोवै खिन नैन छिपावै। खिन सोवै पै नींद न आवै॥
बिकल सरीर भयौ जस पारा। बिरह अगिन तें सुठि बिकरारा॥

खिन चख बरसै अगिन जल, करत न बनै पुकार।
कल न परै पल ना लगै, सहै दुकूल न भार॥

यहि बिधि निसि बीतै दिन आवै। सखिन्ह देख चख नीर छिपावै ॥
अधिक बिकल होय प्रान गँवावै। रोवत बनै न कहत सोहावै ॥
बैठिहि मौन साध बैरागी। हिये सँभार बिरह कै आगी ॥
उठ धाईं सभ सखी सहेली। करत सदा जस कूकत बेली ॥
देखा आप जो प्रान पियारी। सखिन्ह होंह अधिको बिकरारी ॥
निस दिन खोज करै सभ कोई। कँवल भेद का जानै कोई ॥
धाई लखा पेम कै पीरा। चरचा देखि मलीन सरीरा ॥
जब सु एकँत भई तब कहा। केहि बिधि अंबुज संपुट गहा ॥

कहौ भेद धनि आपन, जो कुछ बिरह बियोग।
करौं उपाय सो रोग कै, लै मेरऊँ तेहि जोग ॥

मैं तोहि का केहि चाह से पाला। दिन दिन देखि सो होहुँ बेहाला ॥
बालापन तोहि हिएँ चढ़ाये। फिरौं चहूँ दिसि तोर फिराये ॥
पख्यों सो तन छीर अधारा। प्रान तें अधिक सो प्यार तुम्हारा ॥
नित छाती पर तोहि सोलावा। नैन ओट मोहिं चैन न आवा ॥
तोर सो दुःख हरयो मोर चैना। कैसे दुखो लखो निज नैना ॥
सुनि यह बात चरन सिर लावा। आपन अरथ सो बरनि सुनावा ॥
तुम माता तें अधिक पियारी। तोहि छुट अवर न हितू हमारी ॥
और तोहिं सम कोउ नाहिं सयानी। तोहिं सब बेद भेद जग जानी ॥
पै दुख मोर कठिन है धाई। जेहि दुख कर कोउ नाहि सहाई ॥

कहा हौं मोह्यों अछरी; कहु मानुख केहि मान।
जेहि कै नित मोहि आस है, कत दुख सहै परान ॥

कह्यो लाज तें कहा न जाई। जो न कहौं कत प्रान रहाई ॥
प्रान जात का भेद छिपाऊँ। कहौं बिथा जो औषध पाऊँ ॥
धाय कहा तुइँ प्रान अधारा। तोरे लाग तजौं घर बारा ॥
सौं देखो तोहिं चित्त उदासा। कहाँ मोहि अब रहै हुलासा ॥
सो जानहु हम गुन अधिकारी। कस न कहहु तुम भेद उघारी ॥
जानहु प्रेम कीन्ह तन रेखा। काहुन कहँ तुम नैनन देखा ॥

तेहि कर करों सो औखष खोजू। हरौं सकल दुख डारौं रोजू॥
कहा जुलेखा सुन मोर बाता। मोर हिया कुठाउँ सुराता॥
सपने महँ वह रूप बिसेखा। जो कबहूँ ना सुना न देखा॥
करौ जतन अब धाय, न तो मरौं जिव खोय।
कहा भेद मैं तुम्ह तें, सुने न दूजा कोय॥
तेहि कर बिरह बान मोरे लागा। लागत रोम रोम तन जागा॥
चहहु प्रान तो करहु उपाऊ। हौं पंखिय जेहिं पंखन पाऊ॥
मोहि बारे बिधि हिये सँवारा। लाज न मरों न जाय उघारा॥
जो निलज्ज होय प्रान लुटावँहु। जन परिजन महँ लाज गँवावँहु॥
धाई सुना प्रेम कै बाता। उपज्यो रोम रोम दुख गाता॥
कहा बिरह पद कठिन अपारा। जेहि के प्रेम वार नहिं पारा॥
भये सपने लखि प्रान उदासा। पूँछि न लिह्यो नाउँ औ बासा॥
नाउँ ठाउँ जेहि कर कुछ नाहीं। को जानै कछु उन जग माहीं॥
कै दुहुँ सरग लोक कर कोई। दैगा दुख दिखाय सुख सोई॥
कै तुहुँ कछु चाटक देखरावा। झूँठ साँच कोउ जान न पावा॥
काह करौं कत जाउँ चलि, कसों कहौं दुख रोय।
बिना नाउँ औ ठाँउ कर, का जाने को होय॥
सुनि यह बात सो भई अधीरा। बाढ़ै अधिक प्रेम कै पीरा॥
भई अधीरज औ अज्ञाना। कहा कि कौन अहै सुलताना॥
अहै सो मोर जीव लेनहारा। देउँ प्रान तो वहि हत्यारा॥
आई सखी धाय चहुँ ओरा। लियें भोग औ कनक कटोरा॥
बैठी रहै मौन की नाईं। सखिन्ह खवावहिं भोग बरियाईं॥
वह जिय अवर भोग कै जोगू। बिरह बिथा औ प्रेम बियोगू॥
भूला खेल औ भोग बिलासा। भूला सुख औ खेल हुलासा॥
भूला बेद औ कथा कहानी। प्रेम के पंथ बँधहु अरुझानी॥
भूला अभरन राग सुहागा। सखिय भईं दारुन बिछनागा॥
भूला खेल कोलाहल, सुख संपत गय लूट।
प्रेम फंद अरुझाने, अवर फंद सब टूट॥

चार जाम दिन यहि बिधि खोई । बोलत बात सिखिहि मुख जोई ॥
निस काँ सेज बिछावै रोगी । धाइ पड़ैं पट ओढ़ वियोगी ॥
चलैं आँसु जस झलझल सेजा । रोय बुझावै तपत करेजा ॥
सखिन्ह पाँव जो चापैं बैसे । बेधहिं बान सुदारुन ऐसे ॥
कहैं कथा जो सखिन सयानी । चित्त बियोग को सुनै कहानी ॥
फूल सो आन बिछावन सेजा । दहकै देह ओ तपै करेजा ॥
चंदन आनि बदन महँ लावैं । लागि आगि तन दुगुन दुखावैं ॥
भवन भाकस अस घर खाये । अभरन तनु जस काल डँसाये ॥
रोम रोम जारै दुख दीन्हाँ । भा तन फाँस बरन वह नेहाँ ॥

होय ब्याकुल बिलखाय, पल न लगे बेहाल ।
तज धीरज चख मूँदि कै, बिनवै दीनदयाल ॥

बूड़हि देहु थाह मँझधारा । बिछुड़े तोहिं मिलावन हारा ॥
कहाँ मुरत औ ताकर वासा । कवन हतो जिन कीन्ह उदासा ॥
का तेहि नाँव ठाँव तेहि कीन्हीं । कलपौं नाथ जाऊ मैं ताही ॥
कहाँ रूप उपज्यौ करतारा । कहाँ सो अहै जीव लेनहारा ॥
पियुखन कै अस बचन बतावा । लैगा प्रान सो बोल सोहावा ॥
केस सीश्र वै कहाँ बनाये । कवन जल तिन्ह प्रान फँसाये ॥
यहि बिधि रोवत जोवत आसा । सब निसि जात भरत ऊसाँसा ॥
निसि बीते यह दग्ध अपारा । बिरह बिहाय होय भिनुसारा ॥
कहाँ नैन औ रसभ कपोला । कहाँ सो अधर सुधाधर बोला ॥

मरै जियै लाजय डरै, करै न बिरह उधार ।
जेहि पर परै सो जानै, लगन कै अगिन अधार ॥

दिन भर सखिन्ह संग मुख जोवै । निसि एकँत होय झलझल रोवै ॥
भीजे सेज ओ पाट बिछावन । सँवरै हिये रूप मन भावन ॥
नींद भूख सगरौ परिहरै । सोय रहै नित मोती भरै ॥
छुट रोदन औषदहिं अपारा । और न कुछ तेहि नींद अहारा ॥
बिरह बिथा हिय अंदर राखै । लाज खोय न काहू तें भाखै ॥

यहिं बिधि दिन बीतै निस आवै। रात दिवस धन रोय गँवावे ॥
देखैं सखी कँवल कुम्हिलानी। पै कछु भेद परै नहिं जानी ॥
पूछे भेद कहै कछु नाहीं। बैठी रहै भवन कै माहीं ॥
कहाँ रैन वह चैन कै होई। जो फिर दरस दिखावै कोई ॥

दिन भर रहै सो बंद महँ, सूर जरावत दीन्ह।
दिन तें पीर बढ्यो सखि, निसि तें बढ़ै सनेह ॥

बीता बरख हरख तन त्यागा। रह्यो अकेल बिरह बैरागा ॥
भए अस दुखित छूटिगा भोगू। जोगउ तें साधा सुठ जोगू ॥
चरचै बिरह सो सखी सयानी। जेहि के मरम परै नहिं जानी ॥
माता देख भई बिन प्राना। कौन तुसार कँवल कुँभिलाना ॥
लीन्ह बुलाय हिये महँ लाई। लाय हिये महँ धीर बँधाई ॥
माता भेद सखिन्ह से पूँछे। का वै कहैं भेद सो पूँछे ॥
डरहिं सखिय तेहि देखि सुभावा। रहा निकट दुख कठिन नियावा ॥
निसि दिन जरै बिरह कै जारे। उतपत प्रेम भये सुख कारे ॥
देखि सुता जननी अकुलानी। आरत करै आप सुग्यानी ॥

चढ़ी माय कैलास पर, भोग दई से हाथ।
सेवा करै अनेक बिधि, राखे निसि दिन साथ ॥

कोटि जतन कै हारी सोई। एक दिवस बिधि आन सँजोई ॥
मूँध चहै हिय परगट केरा। खोलन चह हिय केर अहेरा ॥
सोवै तन जागै वह जीऊ। हिये नैन ते देखै पीऊ ॥
जेहि बिधि आदि परघट भो सोई। आवा फेर ना जानै कोई ॥
धाय नारि पाँव लै परी। हाथ जोरि आगे भइ खरी ॥
कहा कि प्रीतम लेहु न प्राना। देहु बिछोह किहेउ तन हाना ॥
तोरे दरस परस कै आसा। रह्यो आस घट पंजर साँसा ॥
तुम अस कंत भुलायो मोहीं। मैं नित जरयौं सपन लखि तोहीं ॥
निस दिन सीस चढ़ायों खेहा। भसम बिरह तोहि अंबुज देहा ॥

तुम अस निठुर बिछोही, बहुरि न लीन्ह्यो चाह।
मुयौं सो विरह बिछोह तें, अब कछु करहु निवाह ॥

कहा कि अस मोहिं उपज्यो सोगू। तुम्ह तें अधिक सो बिरह बियोगू ॥
तुम पर कौन बिथा अस बीती। हौं जस सहौं सो प्रेम पिरीती ॥
तोरें बिरह भयो अज्ञाना। छाँड्यो देस औ नगर अपाना ॥
तोरै लाग भयो परदेसी। मिला न कोई प्रेम सँदेसी ॥
सो तुम मोहिं भुलावहु नाहीं। राख्यौ प्रीत सदा हिय माहीं ॥
सदा मोंहि तुम नियर विसेखो। दूजे पुरुख और जनि देखो ॥
जो चाहो हम दरसन राता। दूजे तें जिन बोलहु बाता ॥
जब सँवरों तब हौं तुम्ह पासा। हम तुम्ह आस रहौं तोरे आसा ॥
होय बिलंब सोच जनि मान्यहु। प्रेम न कतहुँ अबिरथा जानहु ॥

मोहिं भूल्यहु जिन प्यारी, औ सँवरहु दिन रैन।
करो सदा बैराग चित, तब पावहु सुख चैन ॥

कहि यह बात चहा उर लावा। जागि परी कुछ दिष्टि न आवा ॥
वहै सु सेज वहै सोउ नारी। अधिक भई ब्याकुल बेकरारी ॥
उठि बैठी औ लागी देखै। देखै सभै न ताहि विसेखै ॥
कहा कि अरे प्रानपत मोरे। बँध्यो प्रेम फाँस मैं तोरे ॥
कब देखहिं भरि नैन अघाई। केहि दिन हिय की प्यास बुझाई ॥
कब वह घड़ी सो पल फेरि आवै। जेहि दिन दरस परस उन पावै ॥
मैं बाउर कछु सुध न कीन्हाँ। नाऊँ औ ठाऊँ पूँछ नहिं लीन्हाँ ॥
कहि तें कह्यौ सो आप न हारा। पूँछ न लिहयौं सो अरथ अपारा ॥

प्रेम आय हिय में बसा, बसा सो आठों अंग।
दिन दिन वह बिरहिन दहै, कौन सु चरचै संग ॥

दिन भर रहै मौन की नाईं। रैन जाग और रोय बिहाई ॥
परसन भयो जो सपने माहीं। नाऊँ ठाऊँ कुछ जान्यों नाहीं ॥
अब की बेर फेर तोहिं पाऊँ। बरुनि सजल पग साँकर नाऊँ ॥
राखौ नैन घालि बिलँभाई। मूदौं पलक देहुँ नहिं जाई ॥
आवत लख्यों न गोंपित देखा। भयौ मोर बाउर कै लेखा ॥
कहँ बिधिना अस करै सुभागा। मिलौं कनक जस कोटि सुहागा ॥

तोर जोति मोर हिये समानी। दूसर और कहा मै जानी॥
पिउ आए मै पापिन छूँछी। नाँउ ठाँउ कछु लेहु न पूँछी॥
जब लहि आवागवन करेहूँ। तब लहि अधिक बिरह दुख देहूँ॥

यह बिधि बीती रैन सभ, भयो चराचर रोर।
धाई आइ निकट उठि, और सखिन चहुँ ओर॥

तब धाई ते कना उघारी। सपने दरस फेर चख चारी॥
कहा कि दरस भयौ परकासा। पूँछि न लेउँ नाउँ औ बासा॥
रखै लाग चित अबिरम जोगू। भये मोहित लखि बिरह बियोगू॥
चित बैराग औ हिये उदासा। रही लूटि होय नाउँ कै आसा॥
वहि के हिये सो विरह बियोगू। जानहिं लोग भयौ कुछ रोगू॥
औषद देहिं पिलावहिं मूरी। औ सुख चैन दीन्ह तिन दूरी॥
माता देखि भई बैरागी। तन मन उठै कोख कै आगी॥
दुहिता रोग सुना सुलताना। और सब नगर देस कुल जाना॥

भयौ प्रगट सभ जगत महँ, दुहिता रोग बिराग।
बेल अँकूरे हिये महँ, बाढ़ि सरग कहँ लाग॥

भइ बाउर तन सुध बुध त्यागी। चाहा जाय सु घर से भागी॥
पातसाह तब बैद बुलाये। होय ब्याकुल नाड़िका दिखाये॥
औषद भाँति भाँति कै कीन्हा। काढ़ा औ चूरन रस दीन्हा॥
तेहिं ते अधिक बिथा तेहि बाढ़े। भागे बैदन कहि दिन गाढ़े॥
प्रेम पीर तें भई अधीरा। होय ब्याकुल तन फारे चीरा॥
उठि उठि चलै छाँड़ घर बारा। तन पर लागि चढावै छारा॥
पातसाह तब लाज लजावा। दुहिता पग बेरी लै आवा॥
बेरी परी न मानै नारी। निसि दिन सखी रहैं रखवारी॥
कहै कि ए मन मोहन प्यारे। पग साँकर देखौ अनियारे॥

मोरे मन सँकरी परी, तन सँकरी केहि मान।
निज नैनन देखौ निरख, यह तन मन कै हान॥

यक दिन पहरु धौराहर सोये । सँवर सँवर मुख ब्याकुल होये ॥
सँवरै वही स्वरूप अमोला । दुख तें नैन जल परलै खोला ॥
कहा कि ऐ मोरे प्रान अधारा । भल दिये दरस बिछोहन मारा ॥
कहि के सपथ अय प्रीतम प्राना । जिन्ह तोहि दीन्ह रूप औ ग्याना ॥
नाँउ ठाँउ अब देहु बताई । एक बार फिर दरस दिखाई ॥
कै किरपा औ सहसन दाया । निज दासी पर फिर कर माया ॥
तोरे बिरह मरौं अब रोई । सोऊँ सेज रकत जल बोई ॥
सखी सहेली न जिऊँ सोहाई । मात पिता कुल कान गँवाई ॥
छाँड्यों भोग भुगत तोरे नेहाँ । छाँड़ सिंगार चढ़ायों खेहाँ ॥

छाँड्यो सब सुख दुख सह्यो, किय्यो जोग तेहिं लाग ।
एक बार फिर आवहु, आनि बुझावहु आगि ॥

एक रैन फिर आन तुलानी । आये समुख नींद अलसानी ॥
तीसर सपन फेर वैं देखा । वहै रूप जो आद बिसेखा ॥
जानहु आप फेर अस बोला । अमीकुंड अधरन तैं खोला ॥
मैं तोहि लाग तज्यों घर बारा । पर्यो कूप महँ मोहि निसारा ॥
मोर तोर प्रीत आदि लिखि राखा । करहु सो अंत भोग अभिलाखा ॥
तब दुख हटै होय सुख सारा । जब पाऊँ मैं दरस तुम्हारा ॥
यह सुन नारि भई तब ठाढ़ी । अरुझी बेल प्रेम की गाढ़ी ॥
अब की बेर जाय नहिं देहूँ । जब लहि नाउँ पूँछ नहिं लेहूँ ॥
अब लहि यहि जिव निकसि न गयऊ । जो फिर दरसन प्रापत भयऊ ॥

नाउँ ठाउँ बतलावहु, पठऊँ जहाँ सँदेस ।
होय जोगिन बैरागिन, चलि आवहुँ वहि देस ॥

तब मुसकाइ कहा सुन प्यारी । मिस्र देस महँ बास हमारी ॥
मिस्र साह कर सचिव सोहावा । आवहु वहँ तब होय भेरावा ॥
सचिऊ नाम जगत नित सोहै । और नाम बिरला कोउ कहै ॥
मैं अपने बस महँ हौं नाहीं । आवहु वेगि मिस्र कै माहीं ॥
कछु दिन सहौ विरह दुख दाहू । बिन दुख प्रेम न प्रापत काहू ॥

जो दुख तें नहिं होय उदासा। अंत होय सुख भोग बिलासा॥
जस चाहौ तुम मों कहँ प्यारी। तस चाहौं तोहि अनत कुँवारी॥
सपने महँ सुनि भई हुलासा। जागि परी कोउ आस न पासा॥
रोय उठी गहबर अकुलानी। नाउँ ठाउँ सुनि कै बिलगानी॥

जिऊँ तो जाउँ मिसिर कहँ, मरूँ तो मारग माहँ।
छार होहुँ उड़ि जाउँ अब, जहाँ बसै मोर नाहँ॥

ज़ुलेखा बिरह खंड

सदा ज़ुलेखा रोदन करै। यूसुफ रूप हिएँ महँ धरै॥
रूप दिखाय कंत छल कीन्हाँ। विरह बियोग जोग दुख दीन्हाँ॥
झूठ बात कहि मोहन बाता। काहे कियो सो छल कै बाता॥
मैं तोर बचन साँच परमाना। लाज गँवाय मिसिर महँ आना॥
जो तेहि हते जराऊँ साधा। जरतिउँ बैठि तऊ दुख बाधा॥
रहत सत्त मोर यह संसारा। अब का करौं कठिन दुख डारा॥
मिटै रोग आवै हम पासा। सत्त धरम कर होइ बिनासा॥
हौं आपत पत राखहु लाजू। प्रान गए जीवन केहि काजू॥
खायों कुल कै लाज सुहावनि। भयों निलज जग ठीठ कहावनि॥

लाज धरम सब छाँड़ि कै, आयों मिसिर के देस।
चहौ प्रान पत मोर जो, करहु बेगि परबेस॥

जेहि कारन मैं लाज गँवावा। सो न भयो सब हत्यो छलावा॥
रोगिनि भई रहौं कब ताईं। यक दिन मरौं रोय हिय माहीं॥
तोर रूप मैं सपने देखा। भयो मोर अब तिहि कर लेखा॥
हेरै गयो हुमाय जो कोई। उलू मिला जो सरबस खोई॥
पानी हेरै गयो पियासा। रेती देखि सो भयौ तरासा॥
कोइ बोहित चढ़ि चाहत पारा। बोहित फट्यौ जाइ मँझधारा॥
बहा जात भा व्याकुल प्राना। आगे आनि काठ उतराना॥

भयो काठ वह प्रान अधारा। बूड़त बहत सो ताहि सँभारा ॥
जब वह काठ नियर भा आई। काल सरूप भयौ दुख दाई ॥

करम हमार है पातर, को अब करै सहाय।
गहिर अहै मँझधार महँ, परेउ काल बस आय ॥

यूसुफ मूरत हिएँ उरेखै। धरै ध्यान निज आगे देखै ॥
करै बिलाप कहै दुख सारा। का मोहिं बिरह अगिन महँ जारा ॥
देहु दरस औ आस पुरावहु। कबहुँ न मिसिर नगर कहँ आवहु ॥
करै मोर दुख परसन पाऊँ। निसि बासर दुख रोय गँवाऊँ ॥
जो मोहिं आसा देत न दाता। करत्यौं वहै दिवस अपघाता ॥
जेहि दिन दरस न तोर बिसेखा। सूर के ठाऊँ राहु मैं देखा ॥
काहे क अब लहि जरत्यौं जारे। मरत्यौं वही दिवस बिन मारे।
एक सपन दूजे सरग के बानी। किहेउ न तेहि अस जिवहानी ॥
निसि दिन तोहि भरोस जिव राखौं। बार बार बिनती यह भाखौं ॥

जेहि विधि सपन देखावहु, लायहु चित सो चित्त।
तेहि विधि आनि जिआवहु, मरौं तोहि बिन नित्त ॥

कबहूँ कहै पवन तें रोई। करै बिलाप अधीरज होई ॥
मारुत सदा करहु परबेसा। फिरहु राति दिन देस बिदेसा ॥
कवन ठाउँ जहँ तुम नहिं जाहू। काटहु मोर बिरह अधिकाहू ॥
जाहु जहाँ वह पीतम प्यारा। कहहु जाय दुख दुखद अपारा ॥
कहौ कि सपन माहैं गहि बाँहाँ। दिहेउ भुलाइ फेरि कस नाहाँ ॥
दै धोका मोहिं मिसिर बोलायहु। तुम अजहूँ लगि लाल न आयहु ॥
मैं जोऊँ नित बाट तुम्हारी। रहौं बंद महँ बिरह के मारी ॥
केहि कारन अस बाचा कीन्ह्यो। देस छुड़ायो सुधि नहिं लीन्ह्यौ ॥
नैहर तज्यौं न पायों तोही। तेहि पर धरम करम करमोई ॥

धृक जीवन पिउ प्रान बिन, धृक बिन धरम परान।
दुअ जग करिआ होय मुख, होय सत्त कै हान ॥

षड़ ऋतु खंड

रितु बसंत बन आदिन फूला। जोगी जती देखि रँग भूला ॥
पूरन काम कमान चढ़ावा। बिरही हिएँ बान अस लावा ॥
फूले फूल सिखी गुंजारहिं। लागी आगि अनार के डारहिं ॥
कुसुम केतकी मालति बासा। भूले भँवर फिरहिं चहुँ पासा ॥
मैं का करूँ कहा अब जाऊँ। मों कहँ नाहिं जगत महँ ठाऊँ ॥
टेसू फूल तो कीन्ह अँजोरा। लागी आगि जरै चहुँ ओरा ॥
तुन फूले और आँब फुलाने। करुना करौं दिस बास बसाने ॥
फेरी त्यागि भिरिंग दुख दाहे। कानन भाँवर सदा सुनाए ॥
पीतम भूल गए सुख पाई। निरमोहीं कहँ दया न आई ॥

यह रितु चित कैसे रहै, सहै बिरह कै पीर।
पूहुप देखि बसंत रितु, कैसेहु धरै न धीर ॥

कबित्त

भागे सोच वियोग बँजार सभै, बिन कान कुलाहल चाखहिं।
चाखे जोगी जती अनुराग, सों भँवर पतिंग सभै रस पावहिं ॥
पाखे पेम सुरंग में दीन्ह, सनेह भरित ऋतु लाज जो लागहिं।
लागहिं टेसू दवा चहूँ दिस, कौन दिसा होइ बिरहिनि भागहिं ॥

सोरठा

हरे हरे ऋतुराज, बनि आवें लोहित भए।
आवे कौने काज, कंत न पूछे बात मोंहिं ॥

ग्रीष्म ऋतु उत परहिं अँगारा। घेरि अगिनि बिरहिन कहँ जारा ॥
यह ऋतु महँ सब जाय सुखानी। बिरह बेल अजहूँ न लहानी ॥
ग्रीषम तेज बिरह के आगे। मोरे हिए दाँउ अस लागे ॥
मंदिल छाय उसीर सोहावा। रवन भवन आवन मन भावा ॥
उमड़ि घुमड़ि घन चढ़ै अकासा। संजोगिन मन मुदित हुलासा ॥
बरै लाग पावस कर डेरा। फिर घिर (घर) कामक मठ घेरा ॥

तम तन मैन जरावैं जीऊ। काह करै निरमोही पीऊ ॥
फल अँबिरित बौरे चहुँ ओरा। हम कहँ बिरह हलाहल घोरा ॥
निठुर कंत नहिं पूँछहि बाता। का हियँ लगे फल अँबिरित राता ॥
नीर घटा उमड़ी घटा, घटा मोर चख नीर।
नैना घट समझहि सदा, घट घट ढेर सरीर ॥

कबित्त

सूखि समुंद्र गए रबितेज, सूखि गए सरिता जल धारी ॥
सूखि गए पुहुमी पति मंदिल, सूखि गए जल मेघ सुखारी ॥
सूखहिं कूप तड़ाग लता द्रुम, बेलि बली वन औ फुलवारी ॥
सुखहिं 'निसार' अंबुनल सूखहिं, नाहिन ये अँखियान दुखारी ॥

सोरठा

सूखि भए बेचैन, ग्रीषम ऋतुद्रुम बेलि बन।
एकन सूखे नैन, नित तरसहिं बरसहिं सखी ॥
ऋतु पावस घन घोर विराजे। घोर घमंड घटा चढ़ि गाजे ॥
घन गरजे दामिनि लौकाही। नारि कंत के गोद छिपाहीं ॥
ज्यों ज्यों चमक गरज अधिकाई। त्यों त्यों नाह नारि उर लाई ॥
हम केहि के गिउ लावें बाहीं। पावस समय देहि बल नाहीं ॥
खग मृग कबि औ मानुष सारा। साजि सदन सुख करहिं अपारा ॥
घर हमार सब भरिगा पानी। उत राजा हम बहि उतिरानी ॥
जिन के छिन पिउ तजहिं सुनाहीं। सुखी नारि पावस ऋतु माहीं ॥
करम हमार भयो दुख दाई। का प्रीतम कहँ आस लगाई ॥
दोस हमार जो अवगुन कीन्हाँ। निरमोही का मन चित दीन्हाँ ॥
पावस घन अँधियार महँ, कैसे बचिहे प्रान।
होय रैन बज्जर कै, जो जागे सो जान ॥

कबित्त

बोलहिं मोर बियोग भरे, कोकिल कूल हिया निज घोलहिं।
झूलहिं स्याम बिना घन स्याम, घमंड ते मेघ चहूँ दिस झूलहिं ॥

डोलहिं आसन जोगी जती के, 'निसार' महारस घूँघट खोलहिं।
खोलहिं मेघ बियोगिन को दुख, डूबहिं चित जो पिया मग कूलहिं॥

सोरठा

दादुर मोर अँदोर, एक ओर घन घोर उत।
सती पवन झकझोर, सूने मँदिल न जाइ रहि॥

सारद समै रैनि उँजियारी। हँसि हँसि पिय हिय लागहिं नारी॥
देखि बियोगिन कंचन जोरी। सारद लाय दीन्ह जस होरी॥
भा परकास अगस्त दिखरावा। सरिता सागर नीर सुखावा॥
सरद चाँदनी निरमल देखा। भा हमार बाउर कर लेखा॥
सब निसि बीती गिनत तराई। सुख सोवहिं जिन के घर साईं॥
सेज अकेल सोभ तन जारी। जस घायल कहँ चाँदनि मारी॥
सरद समय पिउ चाहन सेजा। धृक जीवन हिय फटै कलेजा॥
सचिऊ के साजहि सुख साजा। बरन चाँदनी निसि उपराजा॥
सेत बादला सेत किनारी। हीरा मोति चंद घन सारी॥
सभै सेज होय दुख अधिकाए। सेत बहुत सो घन कहँ भाए॥

सेत भभूत रमाय मुख, कर जोगिन कै तंत।
धूनी लाऊँ जाय तहँ, जहँ निरमोही कंत॥

कबित्त

हिव सो जरे बिरहानल तें, दिन प्रीत रखै वह आगि जराए।
घायल प्रेम के बान मोहीं, करि है बिन प्रीति सरूप लखाए॥
घायल और जरो न जिए, सभ लोग सहैं सन जोत दिखाए।
काहे ते प्रान तजो सजनी, नित रार करे सैं संमुख धाएँ॥

सोरठा

लगे प्रेम के बान, जरै बिरह की अगिनि सों।
केहि बिधि तजै परान, सरद चाँदनी के चुनी॥

अब हेमंत परघस्यो पाला। हिम तन उठहि बिरह कै ज्वाला॥
आवत जात न दिन निर माई। रैनि पहाड़ परै पुनि आई॥

भए जुरावन सभै सँजोगिन। औ कुफनू भय जरै वियोगिन ॥
बदन जुरावा सभ नर नारी। बिछुरे प्रान जाय दुखारी ॥
यक यक पंछि दुहूँ के होए। मिलि कै उठहिं उटेरे सोए ॥
कुफनु पंछि सम यह रितु नाहीं। नित तन बिरह अगिनि निकसाहीं ॥
अपने मुख तें पावक छारा। अपने अगिन होय जरि छारा ॥
होय चकई निसि जागि बितावे। जस बूड़त महँ थाह न पावे ॥
बाढ़ा बिरह रैन जस बाढ़े। अरुझे पेम फाँस हिय गाढ़े ॥
निसि हेवंत पहाड़ भय, बिन पिउ कटै न रैन।
जागि बिहाऊँ रैन दिन, जाड़ करै बेचैन ॥

कबित्त

छाय गयो सब सेत 'निसार', लगे खग खग घिर सरसों।
कैसे कटे यह रैन पहाड़ सों, बँधे जो हिया हिया सरसों ॥
देखिए कौन बसंत समय जब, थाँक सती से बसें सरसों।
हेवंत गये अपने बिन संगहिं, अब आँखिन भूलि गई सरसों ॥

सोरठा

हेवँत ऋतु उत गाढ़, बिरह जनावे आन तन।
घटा दिवस निसि बाढ़, जागे बिरह बिहाय तब ॥
लाग सिसिर ऋतु चित बैरागी। पवन उदास भए अब लागी ॥
लाग बसन सो लाग सुहावे। सिरी पंचमी चाह जनावे ॥
राग हिएँ अँग कीन्ह अलसाहा। नर नारी हिय उपजे थाहा ॥
भए हरख डफ बाजन लागे। कामिनि काम आय तन जागे ॥
चहुँ दिसि उड़ें गुलाल अबीरा। केहि बिधि धरैं सुहियरैं धीरा ॥
पुरब जनम कर पाप कमावा। जो यह समय बिरह दुख पावा ॥
पहिरहिं सखिहिं वसंती बागा। परगट भयो प्रेम अनुरागा ॥
खेलहिं फाग जो साँवरि गोरी। हम तन लाय लीन्ह जस होरी ॥
बौरें आँब बास महकाने। फूले कुसुम चाह अधिकाने ॥
तिय से तैसे अउर भए, बौरे आँब लतान।
मैं बौरी दौरी फिरौं, सुनि कोयल की तान ॥

सवैया

लाग तुषार परै चहुँ ओर, सखी तेहि अंबुज देह डहै को।
पिउ बिन रैन दुहेली बिहाय, कैसे अकेली ह्वै दुःख सहै को॥
आवे जाड़ जनावे तुषार, हिए बिरहानल जुआब भए को।
बौरी सभै दौर फिरे ललिता सखि, बौरी लता फिर कैसे रहै को॥

सोरठा

चहुँ दिस बेल निसान, हिएँ आन जागा मदन।
केहि विधि रहे परान, बिरह बान बेधे सदा॥

यूसुफ जुलेखा मिलन खंड

यूसुफ भयो मिसिर कर भूपा। न्याव दान नित करै अनूपा॥
यक दिन हिये कीन्ह अस ज्ञाना। मो कहँ दई कीन्ह सुलताना॥
बिन मंत्री जो होय महीपा। जैसे सदन होय बिन दीपा॥
पै कोइ ऐस दिष्ट नहिं आवे। जाह सचिव कै कोरे चढ़ावे॥
जबराइल तेहि अवसर आवे। सचिव कुरी कहँ अरथ जनाये॥
भोर मँदिर तें बाहर आवहु। पहले मिले सो सचिव बनावहु॥
यूसुफ़ भोर जो बाहर आवा। लकड़ी लिये जो मुख देखरावा॥
उत दुरबल औ नृप बल हीना। महा दुखी औ जीरन दीना॥
तब मन महँ निज कीन्ह बिचारा। कत उठावे यह जग कर भारा॥
भये सोच महँ डाह तबाँई। जबरैल़ तब आइ सुनाई॥

कौन सोच हिरदै करो, औ मन होहु अधीर।
सचिव करहु यह पुरख कहँ, दुरबल दीन्ह सरीर॥

इन तुम्ह तें बहु कीन्ह भलाई। दई चहैं तोहिं उरिन कराई॥
यूसुफ कहा बहुत गत कीन्हा। दियो अरथ मैं ताह न चीन्हा॥
कहा कि है बालक यह सोई। ताकर मरम न जानै कोई॥
मिसिर सचिव तोहिं चहा सँघारा। दै साखी तोर प्रान उबारा॥

तैं मानुस कर बालक अहा। जिन मुख बचन न्याव को कहा ॥
सो बालक यह दुरबल दीन्हा। जहाँ नाहि ओ रूप बिहीना ॥
सचिव ज्ञान कर चाहै आगर। सो यह होय बुद्धि कर सागर ॥
तब यूसुफ तेहि हियें लगावा। ओ ता कहँ हम्माम भेजावा ॥
करि असनान पन्हावा जोरा। ताँस बादला जोत अँजोरा ॥
कँलगी ओ नवरतन पेन्हावा। ताह सचिव कै कोरि चढ़ावा ॥

अलख निरंजन न्याव कर, एकहिं एक बिचार।
काहू कै सेवा नृ-फल, करै न तनिक 'निसार ॥

अब बरनौ वह बिरह बियोगिन। यूसुफ लाय भई जो जोगिन ॥
चालिस बरस जोग जिन्ह कीन्हा। दरब भँडार खोय सभ दीन्हा ॥
जेहि दिन नाँव लिये कोउ आए। तेहि दिन खंजन भोग कराए ॥
जेहि नाँव सुनै तहिं नारी। रोय रोय काटै निस सारी ॥
कुछ न रहा तब जोग कमाई। दरब अरथ सभ दीन्ह लुटाई ॥
रोवत नैन भये अँधियारे। रोम रोम तन बिरहिन जारे ॥
जब लहि नैन हुते वह केरे। तब लहि दरस प्रीतमहि हेरे ॥
गये नयन भइ रंक भिखारी। बिरह स्वरूप भई वह नारी ॥
कूबर निकसि पीठ महँ आवा। वक्र अंग मा सूध सोहावा ॥

लै लकुटी हेरत फिरै, नित यूसुफ कै बाट।
जो कोइ नाँव सुनावे, भुइँ महँ धरे लिलाट ॥

बालक झूँठि सुनावहिं आई। यूसुफ़ नाँउ सुनत बौराई ॥
कहैं कि निकसी आज सवारी। धाई फिरै होत बलिहारी ॥
जब लहि हत्यौ दरब ओ दाना। दीन्ह नाँव सुनि कौटि समाना ॥
यूसुफ काज सबहि कुछ दीन्हा। कुछ न रहा तब काहु न चीन्हा ॥
तब सब लोग सो बाउर कहैं। विपत परे कोउ संग न रहैं ॥
पावहिं अरथ दरब पहिरावा। खाहिं भोग लै नाम सोहावा ॥
जब न रहा कुछ सभ अलगाना। हत्यौ नेत्र सभ भये बेगाना ॥
जेहि तें कहै बात पर नारी। सो रिस खाय देइ तेहि गारी ॥

लगुटी लिये गली गली, फिरैं मंत्रि के आस।
सुनत सवारी मंत्रि कै, धाइ फिरै चहुँ पास॥

गईं निकसि सभ दासी चेरी। अपने यक प्रीतम कहँ हेरी॥
सेवक दासी रहा न कोई। बिपत पड़े कोइ साथ न होई॥
रहै बहुन महँ अकसर दुखी। होय अदरार रहै बिक मुखी॥
जो कुछ रहा सो सबहै गँवावा। पिया प्रेम बिन अवर न भावा॥
हर्‌यो भोग सुख नींद बिलासा। हरयो चैन औ हरयौ हुलासा॥
जोबन हर्‌यो रूप हरि गयो। बिरध स्वरूप सभै तन भयो॥
भयो अंग सबह ढील समाना। पै न गयो तेहि प्रेम को बाना॥
भये तेज तन पौरुख हारा। नैनन मेटि गयो उँजियारा॥

नास कीन बिधि, सब गयो, खोये सुख अरु चेन।
जोबन रूप न थिर रहा, रहा बिरह तन मैन॥

एक दिन एक नारि पहँ जाई। रोवे लागि सँवरि सुख दाई॥
तेहिके चरन सीस लै आवा। आवा पुनि सभ भेख देखावा॥
यूसुफ़ नबी कै मोंहि सवारी। देहु दिखाय होहुँ बलिहारी॥
सँवर नार पाछिल दिन सोई। लाखन दरब लीन्ह सब कोई॥
उठै मया भइ तेहि के संगा। जो दीपक सँग भई पतिंगा॥
चहुँ दिसि फिरै संग लै नारी। अकस्मात मिलि गई सवारी॥
उठै धूम तिल ऊपर भयऊ। चहुँ दिस अरध अवध होय गयऊ॥
लै सो पाट पर ताहि बैठावा। कहा चेत अब यूसुफ़ आवा॥
ओ यूसुफ तें कहा पुकारी। बैठे पाट ज़ुलेखा नारी॥

नाम ज़ुलेखा नार मुख, पड़ा जो यूसुफ कान।
मया मोह जब उपजै, हियें प्रेम कर मान॥

देखा बिरिध भई वह बाला। ना वह रूप न रंग न हाला॥
कंठा एक करै महँ सोहै। पूछें लोग कि यूसुफ को है॥
नैन नाह जो देखै नारी। पौरुख नाह जो होय बलिहारी॥
लगुटी लियें बाट पर ठाढ़ी। बक्र पंथ मँह चिंता गाढ़ी॥

रोवत ठाऊँ ठाठ जो कोरी। जोबन रतन लीन्ह क्यों छोरी ॥
हर गये जोत नैन से पानी। माँस झुरान नसैं अरुझानी ॥
अंबुज रंग हरिद रँग भयऊ। रती माँस सभ झूरा भयऊ ॥
जो देखै सो निकट न जाये। देखि बिरिध मुख जाय हेराये ॥
जो सवार आये तेहि पासा। कहे न आव मंत्र कै बासा ॥

सब्ह सवार के पाछैं, यूसुफ नबी जो आय।
कहा भये हैं यूसुफ। जिन मोहि ऐस बनाय ॥

लखि यूसुफ मन भयो दुखारी। कौन हाल तुम्ह कीन्हों नारी ॥
औ कैसे मोहिं छीन्यहु बाला। नैन अंध औ हाल बेहाला ॥
सब्ह सवार आये तुम्ह पासा। काहू देखि न किह्यो हुलासा ॥
कहा नारि सुन प्रेम पियारे। चालिस बरस बिरह दुख जारे ॥
जब तुरंग हम सौंह चलावा। चारिव घरी सो हियें चढ़ावा ॥
तुम्ह दौड़ाय तुरीं लै आये। हम ऊपर खुर खंद कराये ॥
चालिस बरस बिरह कै आगी। मोरे हिये रैन दिन जागी ॥
कठिन बिरह को ताह सँभारे। छिन मँह अगिन जागत कँह जारे ॥
जो यह अगिन समुद्र मँह डारैं। सोख समुद्र मघवानल जारैं ॥

डारौं अगिन समीर पर, तो अंजन होय जाय।
धन सो हिया अति मूरख, जेहिं यह आगि समाय ॥

जस सो अगिन महँ रहै समुंदर। औ समुद्र महँ बसै जलंधर ॥
तस होऊँ यह समुंदर माहाँ। जीवन मोर अगिन कै माहाँ ॥
जो यह अगिन न हिय महँ होती। जस घट महँ वह पूरन जोती ॥
तो कत जीवन होत हमारा। बिरह अगिन मोर प्रान अधारा ॥
निस दिन अगिन हिये सुलगावै। हिय पसीज चख आँसू आवै ॥
बड़वानल तस प्रान हमारा। जिन यह अगिन प्रेम संभारा ॥
चित डौंडीं बुधि फेरी लावै। मन दूनौ कै भीड़ उठावै ॥
वह सो अगिन कर अहै पसीना। धरहिं नैन तैं तेज बिहीना ॥
बिरह बुद्धि दोउ करहिं लराई। जस पारा लखि अगिन हेराई ॥

बसै समुँदर अगिन महँ, ताको जीवन सोय।
छिन बिछुड़ै तन लागे, पुन सो निजीबन होय॥

यूसुफ कहा कि बात अपारा। हियें अगिन को राखै पारा॥
राखि न सकै आगि यह कोई। दगधै तनु जरि छार सो होई॥
तुम्ह महँ हाल रहा कछु नाहीं। एक सो झूठ रहा तन माहीं॥
झूठ प्रेम कर का फल पावै। झूठ बात कहि धरम नसावै॥
कहा नारि सोचहु मन माहीं। जग महँ अगिन कहाँ है नाहीं॥
अगिन धुंध जेहि ओर न छोरा। पूरन वहै अगिन चहुँ ओरा॥
देखहु अगिन बीच कै छारा। सूरज अगिन जगत सब्ह जारा॥
अगिन भार जरत होय लोका। गरज गरज महँ देख भभूका॥
मधवानल वहि अगिन समानी। अगिन अगस्त सोखावत पानी॥

आगिन सरग रबि ससि, चन्दन घन नखत निहार।
कत मानुख वहि अगिन तें, रहा न लोह 'निसार'॥

अगिन तरुन नित लावत दाऊँ। अगिन बिरिछ महँ लावहिं ठाऊँ॥
अगिन बिपत तें करै प्रकासा। भूमि अगिन चढ़ि जात अकासा॥
सब महँ अगिन परघट परचंडा। गूदर बाँस सरहर सरकण्डा॥
जो नाहीं आगे दुख देखहु। काह माँह वह अगिन बिसेखहु॥
का कि तुम सब्ह पढ़ा औ जाना। प्रेम अगिन तेहि हियें समाना॥
सुन यह बात जुलेखा रोवै। परघट अगिन हिये जो गोवै॥
तोरे हाथ कुछ यूसुफ आहै। कहा कि जाकहँ ताजिना कहै।
कहा कि मोह देहु पकराई। बिरह अगिन तब देहुँ दिखाई॥
फुंदन लीन्ह कोंड़ कर हाथाँ। लै लायो ताकहँ हिय साथाँ॥

फुंदन जरा तजियाना जारा, दस्ता जरै जो लाग।
डार दीन्ह तब यूसुफ, देखि बिरह कै आग॥

कहा जुलेखा सुन नर नाहा। राख्यों अगिन जो हिरदैं माँहा॥
जबहीं बुध मानुख उपराजा। चार तत्त कर पंजर साजा॥
यहै अगिन जो आद सँवारा। आद जोत वह अगिन सँचारा॥

तेहि छुट दूत होय ससि सूरू। कोउ न सकेहु रखि प्रेम अँकूरू॥
चकमक तें जस पथरी झारै। उठा भभूका हियें परचारै॥
आद पिता कहँ अगिन सो दीन्हा। जेहि ते सभ नर परगट कीन्हा॥
सब्ह तेहि सकेउ न आग सँभारी। पेमै हियें रख्यो पर चारी॥
सो पावक मैं हिये निचोवा। चालिस बरस बीस जस गोवा॥
तेहि सो आग कै एक चिंगारी। जगनायक यक सकेहु सँभारी॥
पूरन चहुँदिस अगिन बिसाला। खाल माँह वदिह अगिन कै ज्वाला॥

देख अवस्था नारि कै, औ हिरदैं कर आग।
सभै लोग अचरज करहिं, प्रेम हिये महँ जाग॥

धन यह नार आग जिन बोई। बिरह बीज जस हियें निचोई॥
अहै अगिन वह प्रेम कै थाती। दीपक माँह जरै जस बाती॥
धनि वह हिया अगिन जिन राखा। धनि वह नारि प्रेम रस चाखा॥
पीठि औ पेट सरापन लागा। अबहुन मिटेहु बिरह बैरागा॥
ज्यो ज्यों बिरध होय सरीरा। लाजन बढ़ै औ होय अधीरा॥
यह मन कबहूँ मरे न मारा। जब वहि पड़े न तन पर भारा॥
मन मारै सोई बड़ साईं। धाय निसार पड़ैं तेहि पाईं॥
भयो अँग सब्ह ढील समाना। निकसन तेहि तें प्रेम को बाना॥

नैनन रूपन देखहुँ, कानन सौंह न बात।
केहि कारन पछिता करौं, भयौ रैन परभात॥

धन संबत औ शब्द सुख साजा। बिनु पौरख सभ कौने काजा॥
अब तन नैन गये सब्ह खोई। तबहुँ न दरस परायत होई॥
तो कहँ देखि आय कहँ रोवा। मोरे लिखत सबै तुम खोवा॥
कहाँ रूप वह जोबन जोरा। कहाँ नैन जस समुंद हिलोरा॥
कहाँ अधर सुरंग अमोला। कहाँ मदन वह सिहर कमोला॥
कहाँ कंठ वह कोकिल बोली। कहँ कठोर गुजराती चोली॥
कहाँ लंक जो बारमूबारा। लचि लचि जायँ बार कै भारा॥

कहाँ चरन वह कँवल सोभावा। कहाँ अँग वह सूध सोहावा॥
कहाँ कपोतहि जोबन बाला। सदा जो सौतिन कै तन साला॥
कहाँ सरवर कहँ हँस, वह मोती चुन चुन खाय।
लाग चुनै अब काँकर, भूरे में मरि जाय॥
का भा तोर सरूप सोहावा। चाँद सुरज जेहि देखि लजावा॥
कहा कि रूप तुम्हें सब्ह दीन्हा। तोरे बिरह अगिन हर लीन्हा॥
कहा कि तैं जो कीन्ह निठुराई। मैं जोबन ओ जोर गँवाई॥
कहा कि वह जीवन औ जोरा। जाके सौंह न काहुन जोरा॥
कहा कि नैन कटाच्छ सोहाये। कहा गये कोऊ हियें न लाये॥
कहा कि रोय रोय मैं खोवा। गये नैन तोर बिरह बिछोहा॥
कहाँ गये वह अमिरित बानी। जेहि तें भये आग ओ पानी॥
तोरे प्रेम सभै हरि लीन्हा। सभै बात मैं तोंहि कहँ दीन्हा॥
कहाँ गये लाल जवाहर मोती। लेइ तेहि झलक सो रब कै जोती॥
सुनेउँ नाँउ तोर मैं, दीन्हों सभै लुटाय।
सभ कुछ गयो न कुछ रहा, रहा प्रेम चित छाय॥
कहाँ गये वह दासी चेरी। रूपवंत जो काहून हेरी॥
तास बादला रंग हरीरा। असावरी कर करै को चीरा॥
कहा कि टूक टूक करि डारा। तोरे बिरह बसन सब फारा॥
अब तन पर कामरी टूका। हियें फिरावहिं बिरह भभूका॥
तेहि कमरी पर देसी सोहै। प्रेमै लोग देखि तेहि मोहै॥
कहाँ गयो वह गरब तुम्हारा। जेहि तें न काहुक ओर निहारा॥
दरब गरब औ जोबन जोरा। सब्ह यह अहै हरा मन तोरा॥
नैन अधीन औ रंग नियावा। गरूड़ै कोऊ बैरन खावा॥
तोरे प्रेम सभै कुछ खोवा। एक प्रेम निज हिरदैं गोवा॥
तोरे बिरह हरयो सभै, नैन बैन गुन ज्ञान।
सब कुछ गयो न रहा कुछ, रहा एक तोर दगान॥
लागै कहै रोय पर नारी। चालीस बरस बीत कै सारी॥
निस दिन अगिन सो हियें निचोई। सुलगत रहै न चाँपा कोई॥

यहि सो अगिन कै तेहि कर साना। थाँभहि निकरयो जगत सुलताना ॥
तुम्ह सुलतान करो सुख भोगू। का जानहु दुख बिरह ओ सोगू ॥
चालिस बरस अगिन पर चारा। छुट तोर बिरह और सब्ह जारा ॥
जो कुछ दुःख सह्यो दिन राती। का कोउ सहै बज्र कै छाती ॥
कागद सात अकास बनावै। सात समुंद्र भियानी लावै ॥
लिखनी बिरिछ होय जग सेरे। तीन लोक सब्ह होहिं लिखेरे ॥
चारिव जग बीतहिं तेहि माहीं। दुख हमार लिखि जाय सो नाहीं ॥
बारह मास बियोग दुख, यूसुफ सो भयो हमार।
चालीस बरस बन जारे, तेहि सभ दुखद अपार ॥
चालीस बरस जो आग निजोई। बारह मास कहुँ दुख रोई ॥
यक यक दिन जुग होय बीता। कहँ लौं कहौं अहै सुनीता ॥
दिन यक दुख जो सुनहु हमारा। तुम्हो राज जुग जुग अधिकारा ॥
तोहिं बुध कीन्ह छत्र पुत भारी। सुनहु दुःख जो अहै दुखारी ॥
जा कहँ दई बड़ा कर देई। सो दुखिया दुख कहा करेई ॥
कबहुँ मोर कहा न माना। ब्याह न भयो गवन नियराना ॥
कबहूँ दिष्ट न मो तन फेरे। भयों अंध तब देखहुँ हेरे ॥
भयऊँ बिरिध अब मरत सँघाती। सुनहु बिरह दुख हुलसै छाती ॥
जो दुख सुनहु करो तुम दाया। मानहु दीन्ह अनेकन माया ॥
मैं तुम तें माँगहु यहै, सुनहु बिथा दुख मोर।
होय मीच सुख सो मरौं, रिझौं सो अवगुन तोर ॥
चैत मास तपि गयो बिछोये। तब ते रकत आँसु मैं रोये ॥
सब्ह जग होय बसंत धमारी। मो कहँ बिरह आगि ते जारी ॥
बन उनये हरियर होय फूला। केतक भिरँग तबस्ता फूला ॥
भँवर भुलान फिरै चहुँ ओरा। कुहकै कोकिल चातक मोरा ॥
पिय कर नाउ पपीहा लेई। बिरह हियैं अधिकौं दुख देई ॥
सीतल पवन अंग कहँ भावे। बिरहिन के तन आगि लगावै ॥
रित बसंत सोहै सखी, काह लगै बिन पंथ।
जग तरूर फूलै फलै, बिरहिन बेल उदंत ॥

कवित्त

चैत तरुवर फूल फूले भँवर सब्ह भूले फिरैं।
पवन सीतल तन सेराने कवित के प्रानन करैं॥
रित अनूप लखि स्याम सुँदिल सुख सज्जा करैं।
आँसु की सरिता बढ़ै, निठुर बिरहिन बूड़ै मरैं॥

बारहु मास सोहावन आवा। रित बसंत संजोगिन भावा॥
तन बसाय औ हिया भिंगाये। भूले भँवर पवन महकाये॥
कुंज छाँह बन लाग सोहावा। सीतल पवन हियें कहँ भावा॥
उपजै सुभग समै अनुरागा। कामी आय काम तन जागा॥
चितै सती तन गँधरय छावा। रित बसंत सब के मन भावा॥
तैसे आग लाग मन माहीं। हरीं कहाँ भाग अब जाहीं॥
अब अवगुन महँ भरे अँगारा। बिरहिन हिया सरागन जारा॥
फूले फूल सुरंग कचनारन। लागे आग अनार के डारन॥
कर माया मैं बसी चहुँ ओरा। बोलहिं कोकिल चातक मोरा॥

सुख सोहाग के समय नहि, लोग कहैं रबराज।
हमहि बसंत दुख दइ यह, सर पंजर सम साज॥

कवित्त

मास माधो सनेह सोहावन, जगत सुख छायो सभै।
बिटप फूलत फलत तरुवर, अंब सों बौरन भये॥
बहुन सीतल छाँह सुंदर, सुख सँयोगिन कै रहे।
कौन हरियर करै पिउ बिन, बेल बिरही से डहे॥

सोरठा

सीतल छाँह गँभीर, अंग सोहाय सोकालिनी।
सुख औ भोग सरीर, सदा उसीर सोहाय अब॥

लाग चैत अब तपै करेजा। कामी काम करे सुख सेजा॥
फल पाके अमिरित रस पाके। काम आय कामिन तन जागे॥

रैन घटी दिन बहुत बढ़ावा। बिरहिन आग अंग लै लावा ॥
कठिन धाम तन जरैं हमारा। भूखन मंदिल औ सपर सँवारा ॥
सीसी लै गुलाब डरवावहिं। औ कुमकुम कहिं अंग लगावहिं ॥
रोवँ रोवँ औ सुख अधिकाये। बिसै करत अंग सुख पाये ॥
बात कहत निसि जाय बिहाई। दिन कहँ भोग भगत अधिकाई ॥
चैत मास बिरहिन कहै जारा। दीन्हा आग लाय संसारा ॥
बरखा हितु अब तपै करेजा। करेज भयो रंगरेज क रंजा ॥
ग्रीषम रितु अगिन बैठ, ढूँढहि सीतल छाँह।
ऐसे समय बियोगिन, भाग सोख दस जाँह ॥

कबित्त

जेठ ग्रीषम विषम आगम पान भोग बिना करैं।
'निसार' वियोगी छाँह तपिहै अंग कै सीतल करैं ॥
भुवन सीतल पवन आवै रोवँ रोवँ मैं चित धरैं।
गुपुत परघट एक पिव बिन बिरहिनै निसि दिन जरैं ॥

सोरठा

जेठ जरावे देह, नेह माहँ मारै सखी।
चहुँ दिस उठै सनेह, बिरहिन कै दारुन सभै ॥
लाग असाढ़ सो गाढ़ जनाई। घन गरजै दामिन चमकाई ॥
उमड़ घमंड घन घोर बिराजै। काम बिसाल नवो खँड बाजै ॥
कूँधत माँह चकूँधत जीऊ। केहि के कंठ लगै बिन पीऊ ॥
पँछिय पतिंग सबहि घर साजा। जगत काम कर बाजन बाजा ॥
मोर कुटी को छावै पीऊ। केहि विधि दय देह मोहिं जीऊ ॥
दादुर मोर जो करहि अँदोरा। नार कंथ छिन तजहिं न कोरा ॥
बिछुड़े मुये सो दुओ दुखारी। बिकल जरा भा सभ नर नारी ॥
कोकिल कूक लूक हिय लावे। कुकनू सम भभूक रचावै ॥
कैसे कटै सो यह रितु भारी। बिन पिव घमँड़ घोर अँधियारी ॥
माँस असाढ़ सोहावें, पिव भावे निज सेज।
देख घटा औ दामिनी, काँपै मोर करेज ॥

कवित्त

रितु असाढ़ घन घेर आयो, लाग चमकै दामिनी।
रितु सोहावन देख मन, महँ हरख बैठ भामिनी॥
रितु घमंड सों मेघ धाये, दिवँस भई जस जामिनी।
रैन दिन करुना करैं, घर में अकेले सामिनी॥

सोरठा

बीतो जात असाढ़, कंत भूल सुख महँ रहे।
बिरहिन यह दिन गाढ़, पिव बिन कहु कैसे कटैं॥

आयो सखी सोहावन सावन। भावन रैन बिना मन भावन॥
घर घर कामिन साज हिंडोला। देख समै सरगुर चित डोला॥
जोगी जती को आसन छूटा। साध संत को मंका टूटा॥
काहु को चित रहा थिर नाहीं। हरषित चित यहै रित माहीं॥
भवन बियोगिनि काटै खाई। देखि देखि यह समै सोहाई॥
परहिं जो आँसु भूमि पर टूटी। रेंग चली जस बीर बहूटी॥
जुगनू चमक चमक देखराहीं। बरसे अगिन जो सावन माहीं॥
सावन मास सोहावन बीना। तन तन काम अपरबल बीना॥

सावन मन भावन नहीं, जोवन बिरथा जाय।
काल न आवे यह समै, कैसे रैन बिहाय॥

कवित्त

भा सावन रितु सोहावन भावन मन भावे नहीं।
काम कला पावा सखी छिन यक कल्पावे नहीं॥
बैस बीती जात सजनी सेज सुख पावा नहीं।
जाहु सावन बहुर आवन कंत घर आवहिं नहीं॥

भादौं भुवन बेहावन भयो। देखत घटा प्रान हरि गयो॥
दिन ओ रैन जाय नहिं जानी। उनई घटा रहे भरि पानी॥
जल थल पूर सो नीर अपारा। होय गये एक नदी ओ नारा॥

जल परवाह जगत माँ बाढ़ा। बिरही बिरह परा दुख गाढ़ा ॥
घन गरजत लरजत तन मोरा। दामिन दमक चहै पिव कोरा ॥
गरजै कूँध लखि मरि मरि जाई। बिना कंत को लेइ जियाई ॥
ऐसे समय सो नारि अकेली। निठुर कंत जिन दुख परहेली ॥
घन अकेलि औ भादौं राती। घन सो अहै बजर कै छाती ॥
घन भादों कै मास सँवारा। तासो नार औ पुरुष सँचारा ॥

भादौं रैन बिहावन केहि बिधि रहौं अकेली।
धृक जीवन तेहि नार का जेहिं सामी परहेली ॥

कवित्त

मास भादों रैन कारी देख कर दूभर भई।
कंत बिन सखि सेज सोई नीद नैनन सें गई ॥
मन हमार निपट व्याकुल स्याम बिन सब दुख हिये।
बिरह सरिता उमड़ि आई कैस कै बचिये दई ॥

सोरठा

भादों केहि रँग भीर, धरै धीर केहि बिधि हिया।
बाढ़ै बिरह-क पीर, कंथ न पूछै बात मोहिं ॥

लाग कुआर सरद रितु आए। घटा जुनीर सब अंग सुखाए ॥
जहँ तहँ पंथी तुरी पलाना। पीय प्रान बाहर बेहराना ॥
जो कहु छाय रहे बंजारा। सो फिर कै परदेस सिधारा ॥
हम पंछी तेहि सोच हमारे। ऐसे समय सो दीन्ह बेसारे ॥
रहे नगर महँ लाल हमारा। नैनन मोंह कोट पहारा ॥
जो निरदई करे नहिं दाया। का भो निकट रहे निरमाया ॥
सहस कोस तेहि पाछे आवे। माया मोह हिया उरजावे ॥
रहे मँदिर महँ करे न दाया। सहस कोस ता कहँ निरमाया ॥
मास कुँआर घटा जल सारा। भय परकास मिटेहु अँधियारा ॥

सारद समय सुहावन, मन भावन नहिं पास।
भय सूरत लखावनी, जो हिय नहीं हुलास ॥

छंद

कुआर मास अब लाग सुंदर, चाँदनी निरमल भई।
सरद रंग बेमाल सोहित, सरद आवत निरभई ॥
जल अंग सब सब सोन लीन्हो, नींद नैनन सो गई।
चख बियोगिन के नहि सूखैं अवर जल सोखै दई ॥

सोरठा

यह रितु सोख्यो नीर, जब अगस्त ऊदित भयो।
नयनन भयो अधार रितु, रात दिवस पूरन रह्यो ॥
कातिक मास महा उँजियारी। संजोगिन सुख समय पियारी ॥
देख चाँदनी करै हुलासा। जिनके कंत रहैं नित बासा ॥
चहुँ दिस होहिं हरष अनुरागा। कामिन काम एक महँ लागा ॥
यह रित महँ सोहै उँजियारी। कैसे जियें बियोगिन नारी ॥
पिय कै लगन हिये अधिकाई। गगन नखत सखि रैन बेहाई ॥
सभै लगन संजोग समाना। काटे खाय न जाय बखाना ॥
बिरहिन बिरह अगिन से जारी। चंद चाँदनी डारै मारी ॥
घायल बिरह बियोगिन बाला। निरख चाँदनी होय बेहाला ॥
सरद समय बहु दुख अधिकारी। बिरहिन प्रान जुआ जस हारी ॥
मोही निदित जगावा, पिय मोही के लाग।
कहँ मोहन अस पावा, मिटै हिये कै आग ॥

छंद

मास कातिक सुठ सहेला, चाँदनी लखि चित हरै।
देख कै यह रितू सुंदर, नार कथ पिव परहरैं ॥
दुओ दिस बिरख फूले, देख कै बिरहिन चरै।
सरद रितु की चाँदनी में, बिरह के मारे मरै ॥

सोरठा

कातिक बेहावन घन बैठ, भोग रजनी बैठ।
बिरहिन बदन मलीन भय, देख रंगै सखी ॥

अगहन दिवस घटा निस बाढ़ै। बिरहिन बेल तुसारन डाढ़ै॥
जाड़ आन तन माँह समाना। घर घर असन बसन अधिकाना॥
साजहिं सौर सपेती नारी। हरियर सब मसियत रतनारी॥
भयो चार ते प्रीतम प्यारी। जेहि तन तें नहिं होय निनारी॥
पवन उदास बहै अब लागी। हम कुकनू सम झारहिं आगी॥
भाँति भाँति कै बसन सोहाये। संयोगिन प्रीतम सँग धाये॥
सरसों फूल रही चहुँ ओरा। लाग तुसार परै निसि भोरा॥
बाढ़ै रैन बढ़ा सँग भोगू। लागे केल करै सब लोगू॥
बिरहिन भई रैन बहु भारी। जगत जाय सो बिरह दुखारी॥

अगहन मास सोहावन, भा दूभर बिन कंत।
सेज अकेले रैन महँ, मिलै न आवत कंत॥

छंद

मास अगहन जाड़ व्यापै, देह लागै थर थरे।
कंत बिना दूभर भये ढहि, रैन होय करवट परे॥
निठुर कंत नहिं बात पूँछे, मास अगहन हर हरे।
सुख सोहागिन सेज सोहैं, एक दम बिरहिन जरे॥

सोरठा

हेवँत रितू अनंग, जाड़ कँपावे देह कहँ।
मोहि प्रीतम की चाह, बात न पूँछे निठुर वह॥

पूस जाड़ अधिकौं तन लागा। घर घर नारि पुरुष अनुरागा॥
बाढ़ै रैन तन काम समाना। घटा दिवस सुख साज हेराना॥
लाग परे जग माँह तुसारा। कँवल बदन हम बिरहिन जारा॥
अंबुज बदन भयो जर कारा। प्रगट जाड़ में काँपहि दारा॥
छिन बिरही जिनके तेहि सामे। उनका यह रित कथ बिसरामे॥
हम का करहिं जाहिं कब भागी। चहुँदिस जारी बिरह की आगी॥
रैन पहाड़ न जाय बेहाई। काँप-काँप तन उठै झुराई॥

है रे निठुर नाह दुख दाता। कबहूँ न पूँछा हम दुख बाता ॥
निठुर नाह नहि दाया आवै। हमहिं जाइ दिन रात सतावै ॥
पूस मास दिन घन अब, आवै जाय न बार।
बिरहिन निस दारुन भये, हाय के परे निहार ॥

छंद

पूस मास भये निस दिन, रैन जग सम होय गये।
तन तुसार सम कवल के जर, छार बिरहिन के भये ॥
कंत तोहिं बिन सेज सूनी, रैन दूभर निरमई।
ऐस रितु में लाल बिन, कैसे जिवैं ललिता दई ॥

सोरठा

पूस भयो दिन छोट, रैन बेहाय न कंत बिन।
बिरहिन लाँग न खोंट, निठुर कंत पूँछे नहीं ॥

माघ मास सोहै सुख साजा। तिल तिल दिन बाढ़ा दुख भाजा ॥
जेहि दिन पवन नीच अधिकाये। तेहि दिन देहि तुसार कराये ॥
कैसे बीते मास सोहावा। निठुर नाह नहिं दरस देखावा ॥
सिरी पंचमी बौर सोहाये। माली बौर देखाये आये ॥
रंग बसंत सो लाग सोहावा। बिरह बियोगिन दुख अधिकावा ॥
यह सो मास बिन कंत बेहावै। प्रेम काज अब हिया जरावै ॥
दारुन बिरह जरावे देहाँ। सून बसंत बिन उपजै नेहाँ ॥
अब कैसे यह दिवस बेहाऊँ। बिना पीउ रँग बसँत गवाऊँ ॥
धावै काम कमान चढ़ाये। बिरहिन हिया बोझ सिर लाये ॥
माघ बिछोहें कंत जेहि, धृक कामिन तन सोय।
ऐसे रितु अकसर रहे, कैसे जीवन होय ॥

छंद

माघ थिर थिर देह काँपे, निस अकेले सोय।
नींद नैनन में न आवे, सँवर प्रीतम रोय ॥

बैस सुंदर जात पिव बिन, आँसु से मुख धोय।
कंत बिन बिरहिन तपै तन, प्रान वर तेहि खोय ॥

सोरठा

मोहन आये नाहि, कवन छाँह हम (कहँ) करै।
कठिन समै अवगाह, कैसे कै धीरज रहै ॥

फागुन मास कीन्ह परगासा। घर घर उपज्यो रंग हुलासा ॥
बाजे डफ मृदंग सोहाये। काम आय निज रूप देखाये ॥
लागे पवन बहे हरिहरा। तरुवर पात सभै खसि परा ॥
निस बिरहिन पुन भा पतभारा। रोम रोम तन बिरहिन जारा ॥
संजोगिन सभ खेलहिं होरी। रंग गुलाल सो भर भर भोरी ॥
डारहिं रंग सोरंग हँकारहिं। दुख दारिद कहँ मार निसारहिं ॥
जिवँ जिवँ पवन तेज अधिकाई। बिरहिन हिये न रंग समाई ॥
धृक जीवन जेहि कंत नियासा। मरे बियोगिन दरस के आसा ॥
यह रित माँ भा सुख परगासू। बिरहिन जेर बिरह दुख बासू ॥

फागुन सभे सोहावने, मन भावन नहिं सेज।
रन तुरंग अरंग कहि, बिरहिन जरै करेज ॥

छंद

मास फागुन सुठ सहेला, आन सुख परघट भयो।
काम पूरन जगत छावा, सोग दुख जग से गयो ॥
यह समै पिव बिन सखी, यह देह बिरहिन के तयो।
दुख पुराये रह गयो यह, मास सभ सत कुछ गयो ॥

सोरठा

खेलहिं लाल सु फाग, केसर बीर उड़ावहीं।
जरहिं बियोगिन भाग, फागुन सुक्ख न पावहीं ॥

एक बरिस दुख बरन सुनावा। यहि बिधि चालिस बरिस बितावा ॥
सदा बसंत औ पावस आवे। मोहिं कहँ उठि बिरह जरावे ॥

निस दिन लाग रहै जस होरी। दिये जराय बिरह तन कोरी ॥
बहै रैन वह दिन नित आवे। मास मास रितु अवर दिखावे ॥
मोंहि कहँ सदा गिरीषम रहा। बिरहानल दुख जाय न कहा ॥
चालिस बरस बिरह अधिकाना। नित उठ हिये लाग जस बाना ॥
दिन दिन बिरह तेज अधिकाई। चालीस बरस सो रोय गँवाई ॥
वहै भोर साँझहिं सो आवै। निस दिन बिरहिन हिये जरावै ॥
तुम प्रीतम कुछ कीन्ह न दाया। अस तुम्ह भूल गयो निरमाया ॥

प्रीतम बिरथा जाय जग, मैं सो जर्‌यौं जेहि लाग।
तुम्हरे मन उपज्यो नहीं, धिरिग मोर बैराग ॥

कहा जुलेखा प्रेम कहानी। नैन भरे जस पावस पानी ॥
रोय रोय सभ बरन सुनावा। सुन यूसुफ मन उठ्यो छोहावा ॥
सेवक सँघ कै मँदिल पठावा। आय अहेर खेल लहरावा ॥
आयो मँदिर सेज पर गयऊ। हिये जुलेखा सो रत भयऊ ॥
कहा बोलाय चहो का नारी। सो अब देऊ जो होहुँ सुखारी ॥
जो माँगहु सो देऊँ मँगाई। सोन रूप नग बसन सोहाई ॥
कहा जुलेखा एक न चाहौं। धन लच्छमी सभ झार बहावों ॥
मँदिर गाँव मोर बाग सोहाये। जो माँगै तेहि देउँ मँगाये ॥
लेउ गाँव औ मँदिल सोहावा। चेरी दास लेउ चित भावा ॥
महा सिद्ध कै सुत कहलावहु। औ तुम्ह सिद्ध सदा सुख पावहु ॥
कीन्हों बहुत तपस्या जोगू। अलख तृसा तुम कीन्ह न भोगू ॥

माँगहु तुम्ह करतार तें, देहिं नैन कर जोत।
जेहि तें देखहुँ तोर मुख, चहौं न हीरा मोत ॥

तब याकूब यूसुफ तें कहा। जो कुछ अरथ भेद सब रहा ॥
सुना जुलेखा नबी कर नाऊँ। परे जाय याकूब के पाऊँ ॥
महा सिद्ध औ पर उपकारी। सुनहु कान दै बिथा हमारी ॥
जेहि का अंग बिरह दुख भेजे। सो दुखिया दुख दीन्ह पसीजे ॥
तुम्ह जस जरयो सो बिरह के आगी। तेहि तें अधिक जरयो वहि आगी ॥

तुम्ह समुझ्यो मोरे दुख कै पीरा। पुत्र बिरह तुम डह्यो सरीरा ॥
वह निरदई न जाने प्रेमा। जानहिं सो जेहि धरम श्रो मेमा ॥
तुम्ह सभ कुछ तेहि पंथ न पावहु। कस तेहि तें तुम प्रेम छिपावहु ॥
चालीस बरस जरायो देहाँ। वहि के हियें न उपज्यो नेहाँ ॥
तुम्ह अब न्याव हमार करेऊ। निरदाई सुन कहँ सुख देऊ ॥
सबहिं गरथ तेहि देहु सिखाई। प्रेम के अच्छर न देहु पढ़ाई ॥

जेहिं ते जानहि प्रेम वै, बेग पढ़ावहु सोय।
देहु असीस उठाय कर, नैन जोत जेहि होय ॥

अब कुछ और न चाहूँ नाथा। रहौं सदा चेरी के साथा ॥
पाऊँ नैन दरस जो देखहुँ। जब लगि जिवों सरूप बिसेखहूँ ॥
किह्यों जनम भर मूरत पूजा। तेहि छुट अवर न जान्यों दूजा ॥
अब तेहि पर कीन्हों अनखानी। फोरयों सीस रोय बिलखानी ॥
यूसुफ अलख सो अहै सोहावा। जेहि सेवक से भूप बनावा ॥
मैं सो जन्म भर सीस नवावा। तुहँ दर दर मोंहिं भीख मँगावा ॥
तुहँ मोर अलख किये यहि हाला। दर दर माँगहु भीख बेहाला ॥
जब मोर आस पुराई नाहीं। भयो क्रोध मोरे हिय माहीं ॥
तब रिसाय मैं मूरत फोरा। टूक टूक फेंक्यों चहुँ ओरा ॥
यूसुफ अलख तें अव मन लायों। औ मूरत ते हाथ उठायों ॥

वह दाता करतार जिन्ह, सभ यूसुफ कहँ दीन्ह।
तेहि सो अलख आनंद कहँ, ग्यान ध्यान मैं कीन्ह ॥

तव याकूब सो हाथ उठावा। तेहि अवसर जबरैल सोहावा ॥
कहा जुलेखा कहँ लै जाहीं। कहो तखिन हम्माम कराहीं ॥
नार अनेक संघ कै दीन्हा। तब बरबस हम्माम सों कीन्हा ॥
मंजन श्रो अस्नान करावा। ईंगुर अँग चंदन तन भावा ॥
जब अस्नान कीन्ह वह नारी। चौदह बरस-क भई कुमारी ॥
आइ रूप जस इत्यो सुहावा। तेहि तें अधिक रूप छबि पावा ॥
चौदह बरस क भई कुमारी। नैन कटाच्छ तेज अधिकारी ॥

लाय सखी यक आरसि दीन्हा। देखत रूप सो अचरच कीन्हा॥
धन करता हरता सुखदाई। तुइँ सभ हीन्ह सो कहत नियाई॥
प्रेमी प्रेम न निरफल गयऊ। कस सो निरास जुलेखा भयऊ॥

मैं तो तोहिं न जान्यो, जनम अकारथ खोइ।
धन्य गरीब नेवाज तुइँ, को अस दूसर होय॥

ई गुर अँग मंजन असनाना। हरिहर मानख सुघर सुजाना॥
लागे षट्-दश होय सिंगारा। चोटी गूँध सो माँग सँवारा॥
तेल फुलेल लाय के साजा। पाटी पार माँग उपराजा॥
बार बार गूँधे गज मोती। सेंदुर दीन्ह सुरज कै जोती॥
गुल गेसुत कपोलन लावा। दै अंजन खंजनै बढ़ावा॥
मेंहदी कर पग सोहाग सँवारा। बीर बहूटी कै रंग धारा॥
दाँतन स्याम सो मसी जमाए। चमक सोभाग मो बरन न जाए॥
मुख तँबोल गह्यो अपने पाना। अतर लगाय कीन्ह अरगाना॥
फूल सो लाय पेन्हावें जोड़ा। पुहुप माल तन सोहे कोरा॥

आयसु रहा सिंगार के, बारह अभरन लाय।
दीन्ह नार कुमार कहँ, सभ अभरन पहिराय॥

बारह अभरन साज बनावा। सहस फूल औ मंडन भावा॥
बेसर औ कनफूल सोहावा। करन भूखन सब्हन पहिनावा॥
कंठा भूखन सोहें जेहि ताईं। गर भूखन उर पास सोहाईं॥
कंठ माल बाजूबँद साजा। कर भूखन सो पहुँची बिराजा॥
अँगुरी मुँदरी उत छबि देहीं। नेवल बंद गुन ज्ञान हरेहीं॥
साज सिंगार सखी सब्ह मोहैं। रूप अपछरा तासों सोहैं॥
धन वह अलख रूप जिन दीन्हा। भर के बार कुमार सो कीन्हा॥
लाय सेज पैटारहिं कोरी। मिले न तीन भुवन महँ जोरी॥
उर केसर फिर अधिक सोहाए। मंगल बूंद सो रंग बनाए॥

बैठीं सेज सुनार, भूखन साज सिंगार।
अब नख सिख का बरनौं, सभ सुंदर सुघर निसार॥

अब माथे गूँधे गज मोती। राहु केत मनों चंद के जोती॥
दुओ दस घन बाद जस छावा। मध्य कौंध चमके देखरावा॥
दामिन अस वह माँग सोहाये। केस घमंड घटा जस छाये॥
जस जमुना कै नदी अपारा। माँग बाँध जस सुघर सँवारा॥
सेत बंद जस माँग सोहाए। बिरहिन रैन परे तेहि पाए॥
जो न होत अस माँग अनूपा। डूबत नैन स्वरूप सरूपा॥
चमके माँग माँग के बानी। सेंदुर रकत रंग तहँ सानी॥
पहले कहूँ माँग के रेखा। जमुना बीच सरसुती देखा॥
खरग धार वह माँन सोहाए। सेंदुर तहाँ रकत रँग लाए॥

माँग सोहावन सुख भरे, भाग अधिक तहँ दीन्ह।
राहु केत दुओ दस तहाँ, रबि-कि किरन अस कींन्ह॥

केस सीस का करौं बखाना। नागिन देख सो ताह लजाना॥
मुख पर परे जो होय बेकरारा। तपा सदा करै संसारा॥
कोऊ कहै अहै तुम राजा। सोहै तहाँ जीत चँद राजा॥
कोउ कहै सो दई सोहावा। ... ...॥
कोऊ कहै स्याम अति मोहा। पुहुप परान आय तहँ सोहा॥
पुहुप छत्र महँ मग मद तारा। खींचें चतुर चित्र तहँ मारा॥
केस सीस मानो निसि कारी। सोहैं परत काल उजियारी॥
सो प्रभात पर भयो दिखाये। स्याम लाय नित हाथ छिपाये॥

बेनी गूंध लिलाट तें, मनो नागिन मन लीन्ह।
मूँगा चोकी पीठ पर, तहाँ छाँड़ तेहि दीन्ह॥

अब लिलाट बरनौं सुख कारी। रबि, ससि, निसि औ उँजियारी॥
केसर खोर... ...। ...
तब जबरैइल कहा तेहि बाता। रूप नैन तेहि दीन्ह बिधाता॥
देखहु जाय जुलेखा सोई। प्रेम न सकत अबिरथा होई॥
को अस पुरुष प्रेम करेई। सुफल प्रेम पग दिन दुख हरई॥
दूसर जनम जुलेखा लीन्हा। सो दयाल अब तुमकाँ दीन्हा॥

तुम पूरुख वह नार तुम्हारी । दूजै बार सो दई सँवारी ॥
जेहि तें रहै सो मुरत हुलासा । रहहु जुलेखा के नित पासा ॥
वह के सुख दयाल सुख मानै । दुखी भये परभू दुख मानै ॥
वह अज्ञा तज किह्यो न काजू । वह समान यह जगत न राजू ॥
ना अस रूप न प्रेम न ज्ञाना । दई दीन्ह सब्ह ताह सुजाना ॥

सुन यूसुफ सिर नाइ के, कीन्ह व्याह कै चार ।
बाजै लाग जो नौबत, नाच गौड़ झंकार ॥

जो कुछ होत ब्याह कै चारा । सो सब्ह कीन्ह राग रँग सारा ॥
सुफल घरी भा ब्याह सोहावा । दुखिया दान दरब बहुपावा ॥
आन्यो भोग छतीसो जाती । भये किनआँ के लोग बराती ॥
तब याकूब निकाह पढ़ावा । देख जुलेखा बहु सुख पावा ॥
बाढ़ा प्रेम धन नार सोहागिन । धन्य अलख जिन कीन्ह सोहागिन ॥
सेज्ज सँवार सो रंग सोहाए । दुलहिन ब्याह दुलह पहँ आये ॥
यूसुफ देख हिए हुलसाना । धन वह अलख दीन्ह जिन दाना ॥
जस मैं रूप आदि निरमाया । तेहि तें जोबन रूप सोहावा ॥
रहस नार कहँ कँठ लगावा । जनम जनम दुख बिरह नसावा ॥

प्रेम जुलेखा कहँ मिट्यो, यूसुफ कहँ दुख दाह ।
भई जुलेखा भगत अब, यूसुफ कहँ दुख दाह ॥

दिन दुइ चार कीन्ह रस भोगू । लागी करै जुलेखा जोगू ॥
मैं बिरथा यह जनम गँवावा । प्रेम विपत मानुख सो लावा ॥
काहे न प्रेम अलख तें लाऊँ । जेहिं तें मोख मुगत पुन पाऊँ ॥
का मानुख मानुख का चाहै । चाहै अलख मुगत कर लाहै ॥
निस दिन लाग तपस्या करै । जब जोगित ते प्रीत छबि धरै ॥
अलख काज छुट अवर न काजू । यूसुफ देख बाढ़ डर लाजू ॥
निस बासर जप पत कै माहीं । एको छिन प्रभु बिसरै नाहीं ॥
यूसुफ प्रेम हिये तें भागा । अलख पेम आठौ अँग जागा ॥
कुछ यूसुफ कै चिंता नाहीं । कबहूँ न सोच करै मन माहीं ॥

निसि दिन वह तप जप करैं, सँवरै अलख सुजान ।
जेहि की दाया तें मिला, अब रूप बैस गुन ग्यान ॥

यूसुफ नबी सो रहे अधीरा । बाढ़े हिये प्रेम कै पीरा ॥
जब लहि दरस देइ नहिं नारी । तब लहि यूसुफ रहें दुखारी ॥
वह निस दिन राखै तेहि प्रीती । भई जुलेखा आन सो रीती ॥
कहै कि सँवरो वह करतारा । अंत काल जो लावै बारा ॥
मैं मानुख का प्रीत हमारी । जोबन रूप रहै दिन चारी ॥
बहुर न यहि जोबन नहिं रूपा । सँवरहु पुरुख अकाल अनूपा ॥
यूसुफ नबी करैं मनुहारी । होय न सुन्वित जुलेखा नारी ॥
कहा जुलेखा मोहिं न सतावहु । जाय सो ध्यान अलख महँ लावहु ॥
मैं जोबन अरु रूप उतंगा । देख लीन्ह कुछ रहे न संगा ॥

जाय फूल कुँभिलाय, जब रहै रंग न बास ।
तेहिं ते सँवरहु एक वह, जेहि के दुओ जग आस ॥

यूसुफ कहा सुनो अब प्यारी । जतन नाह नित रहौं दुखारी ॥
बिन देखे मोहिं कल न परई । दारुन बिरह कठिन दुख धरई ॥
दया करो औ दरसन देहू । मोहिं दुखित जिन रार करेहू ॥
प्रान तें अधिक तुम्हें मैं जानहु । रूप तुम्हार हिये महँ आनहु ॥
निस दिन रहे सो ध्यान तुम्हारा । मन अधीन जस ब्याकुल पारा ॥
जस तुम्ह बिरह अगिन ते जारा । तस अब करहु भोग सुख सारा ॥
मोहिं दुखित जिन राख्यो प्यारी । छया मोख दुख देहु निनारी ॥
दई बढावा हम तुम प्रीती । राखहु दया प्रेम की रीती ॥
दई देह यह रूप सोहावा । मोहिं कारन तुम्ह फिर कै पावा ॥

मोहिं तें होद न निठुर अब, हिये लखहु अब ओर ।
कहै जुलेखा नाम सुनहु, दास तुम मोर ॥

एक दिन बहुत कहा नहिं माना । कहा जान मोहिं दास समाना ॥
जस आगे तुम्ह राखब प्रीती । राखहु दया हियें तें रीती ॥
अब सो अलख कर दीन्ह सँजोगू । देहु मिटाय बिछोह बियोगू ॥

जस दुख सबहि करै अब प्यारी। जाय भुलाय बिरह दुख भारी ॥
चालीस बरस कीन्ह तप जोगू। रात दिवस तुम छोह बियोगू ॥
करहु सेज सुख भोग बिलासा। निस दिन होय सो दुख कै पासा ॥
कोट बिनति कै यूसुफ़ हारा। चाहा हाथ गले माँ डारा ॥
कहा जुलेखा मोंहि ना भावै। अलख ध्यान छुट आन न भावै ॥
मोंहि को एक अलख कै आसा। बिरथा यह सुख भोग बिलासा ॥
दिना पाँच का रूप सिंगारा। होइह अंत देह तेहि छारा ॥

जोबन रूप सिंगार सब, संघ जाय तेहि खोय।
काहें न सँवर सो अलख कहँ, जानो मुकत कब होय ॥

अब मोंहि का सुख भोग न भावै। मृत्यु भये कुछ काज न आवै ॥
यहि जग मा छुट जीवन थोरा। अब जिन करहु खोज तुम मोरा ॥
निसि दिन लेहु अलख कर नाऊँ ; जेहि तें मिलै सरग माँ ठाऊँ ॥
मैं अब निजु जान्यो तेहि साईं। जिन सब्ह दीन मोंहिं बरियाईं ॥
सो साईं तज अवर न भावे। बिरथा सुक्ख भोग चित लावै ॥
यूसुफ नबी बहुत समुझावा। एक जुलेखा कान न लावा ॥
तब बरबस उठि हाथ चलावा। भागि जुलेखा यूसुफ धावा ॥
दामन फार रहा तेहि हाथाँ। गई भाग वह दार के हाथाँ ॥
धन चरित्र वह अलख देखावा। यह कर करा सो वह कर पावा ॥

एक दिन हत्यो जुलेखा, फारा यूसुफ पाट।
अब यूसुफ के हाथ तें, धन कर दामन फाट ॥

यह बिधि रहै जुलेखा भागी। यूसुफ लगन रहै नित लागी ॥
निसि दिन रहै नार से ध्याना। नार हिये उपज्यो अब ज्ञाना ॥
राज काज कुछ ताहि न भावे। नित चित हित बनिता तें लावै ॥
बरबस करै नारि से भोगू। आवै ताह जाय ओ जोगू ॥
यूसुफ कहैं भयो तोहि काहा। का भा तोर प्रीत ओ चाहा ॥
कहा सुनो सामी सब बाता। तब सों मोर मन तोहँ सो राता ॥
मूरत तोर हिये महँ आन्यो। छुट तोर प्रीत आन नहिं जान्यो ॥

तब सो अलख कहँ जान्हों नाहीं। मूरत तोर रहै हिय माहीं॥
अब सों अलख हिये तर बासा। तेहि कर ध्यान हिये परकासा॥

एक हिये हुई प्रेम अब, कैसे कहो समाय।
जग सामी कै प्रीत अब, रहै हिये महँ छाय॥

बरबस करै भोग सुख सारा। सुत नित दिये तेहिं करतारा॥
पाँच पूत दुई दुहिता भयो। जब तप करै प्रान पर छयो॥
दुहिता सुत सामी नहिं भावै। नित उठ चित्त अलख से लावै॥
धाई कोर रहे सुत बारा। औ प्रतिपाल करै करतारा॥
करै जुलेखा निसि दिन जोगू। भावै न तेहिं सुख औ भोगू॥
धन करता कहँ खेल सोहावा। करै सोय जो वह मन भावा॥
कबहुँ पुरुष कहँ नारि कैं चेता। कबहुँ नार कहँ पुरुष कै मीता॥
वहिक पास यह मन नित आवै। जेहि... ...सोहावै॥

बारह बँधु के बंस पुन, भये बहुत अधिकार।
करै राज सुख भोग सब, बढ़ै बहुत परिवार॥

भये याकूब सुखी मन माहाँ। निसि दिन करै पुत्र पर छाहाँ॥
सब सुख देख कुटिल परिवारा। तब लहि आय पुन काल हमारा॥
बिरथा तेज नबी जब भयो। सेवा का यूसुफ चलि गयो॥
सभै पुत्र का पास बोलावा। कीन्ह बहुत उपदेस सोहावा॥
औ यूसुफ कहे सब परिवारा। सो तब आप सिवलोक सिधारा॥
जब याकूब देह तजि दीन्हा। तब यूसुफ बहु रोदन दीन्हा॥
औ रोवैं सगरो परिवारा। बारह पुत्र ... सारा॥
रोवैं सभै सुतन की नारी। औ रोवैं दुहिता पुन सारी॥
दुहित पुत्र कै बंस सोहाये। रोय रोय सिर छार चढ़ाये॥

भा अँदोर सभ नगर महँ, रोवैं नर औ नार।
ऐसे पुरुष सो चलि बसे, को दूसर संसार॥

रोई बहुत जुलेखा नारी। सँवर मुरत तज भई दुखारी॥
यूसुफ पिता अन्हवावा। औ पुत्रन सभ साज बनावा॥

चले साज कै पिता जनाजा। दुख बाजन घर-घर महँ बाजा॥
मिसिर नगर महँ परै अँदोरा। नारिन करै रोट चहुँ ओरा॥
औ यूसुफ का भा दुख भारी। रोवैं बहुत सो छाँड़ डफारी॥
छाड़ सो लोग कुटँब परिवारा। होय अकेल अब पिता सिधारा॥
बहुत बंस कुछ काज न आए। अकसर पिता सो सरग सिधाए॥
सुत बिन बंधु पुत्र ओ नारी। सबहू तजि गयो गयो पैयारी॥
कोऊ न सँघ जाय तोहि गैला। गयो अकेल छाड़ सबहू खेला॥
छिन बिछुरे दुख होई। छिन-छिन राख सकै नहिं कोई॥

... ... सभ साथ।
... ... राख न सकै कोऊ हाथ॥

गयों समूल छाड़ कै नाऊँ। रहा सूख सबहू ठावें ठाऊँ॥
यूसुफ नबी साज सब साजा। स्याम देस लै गये जनाजा॥
अयस नाम याकूब कै भाई। एक सँग बिधि जनम गँवाई॥
तेहि दिन अयस मरे तेहि देसा। ओ याकूब पहुँच परबेसा॥
एकै संग वै दूनौं भाई। रहै सोय दुओ खुमार समाई॥
एकै संग जनम वै लीन्हा। एकै संग प्रान तजि दीन्हा॥
एकै संग रहै यक पासा। एकै संग गये कैलासा॥

जगत धन्ध सब छाड़ कै, गय अकेल निज धाम।
लोग कुटुँब परिवार सबहू, कोऊ न आयो काम॥

दोउ पिता कै गत पत कीन्हा। मुरत अमोल छार रख दीन्हा॥
खावा भोग ओ भूल अँदेसा। धंधा लाग करै सब देसा॥
फूल चढ़ाय फिरे सभ लोगू। लागे खाय अन्न ओ भोगू॥
महा सिद्ध जग रहै न कोई। दूसर कौन अमर जग होई॥
यूसुफ नबी बहुत दुख माना। बेद भेद को करे बखाना॥
अब न पिता देखब जग माँहीं। कवन करै हमहि अब छाँहीं॥
कहि तें दुख सुख बरन सुनाऊँ। केहि तें अपरम मरम सो पाऊँ॥
कवन करै हम कौ उपदेसा। कवन सुनाइह अलख सँदेसा॥

काटिय गाढ़ सो कवन हमारी। कूट बतन बरनै को भारी ॥
गाढ़ परे केहि सँवरब, कूट साँच उपदेस।
अब ना पिता को देखियब, गये सो कौने देस ॥
तब जबरैल सरग तें आए। यूसुफ कहँ सुठ बचन सुनाए ॥
करहु पिता कर अब संतोखा। जेहि दें होय दुओ जग मोखा ॥
पैठी तुम सो पिता के ठाऊँ। सँवरहु सदा अलख कर नाऊँ ॥
औ सुख देहु करहु सुख सारा। पूजै तुम्हें सभै संसारा ॥
तुम का नबीं अलख अब कीन्हा। बुद्धि सुद्धि सभ तुम कौ दीन्हा ॥
तब यूसुफ सभ नगर बोलावा। अलख सँदेस सो वरन सुनावा ॥
सभ जग आय सो सीस नवावा। औ सुख भयों मंत्र सभ पावा ॥
तुम सो अहो याकूब के ठाऊँ। हम आधार सो राउर नाऊँ ॥
जस वे बेद भेद बतलावहिं। हिन्दु तुरुक कहँ राउर नाऊँ ॥
सभ जग सीस नवावा, दीन्ह नबी कहँ हाथ।
दीन्हा सभ सुख पूजा, अवर भये सब साथ ॥
भयो बिरिध बालक घट्यो राहा। घट्यो चाह और घट्यो परहारा ॥
रूप रंग बल बुध सुख खाँगा। यूसुफ मीच देवतन्ह माँगा ॥
उपज्यो क्रोध औ काम हेराना। कामिन देख सो नैन लजाना ॥
रह्यो न रूप सो सभ जग चाहा। रह्यो न बल जेहि करब बेसाहा ॥
रह्यो न केस भँवर अस कारी। रह्यी न दसन दाड़िवँ जेहि हारी ॥
रह्यो न सरवन सुरत अमोला। रह्यो न सुंदर स्वभाव कपोला ॥
रह्यो न द्रग मृग खंजन भंजन। रह्यो न बानी कोकिल गंजन ॥
नार पुरुष नहिं आदर करहीं। नारि बिरिध कर नाउँ सो धरहीं ॥
जेहि के ओर आहे चख हेरा। देख बिरिध सो अब मुख फेरा ॥
रहै न हाथ पावँ के सोभा। जेहि का देख सभे जग लोभा ॥
रह्यो न रंग रूप वह, जेहि चाहे संसार।
कवल बदन कुँभिलात, नित मनसा तब गा हार ॥
जो मन चाहत रँग सोहागा। सो सब... ... ॥
जो मन चाहत उड़न खटोला। लागे ... नहिं ... डोला ॥

हंस अमोल जो सरवन सोहा। जा कहँ देख सती जग मोहा ॥
बिन पानी अब हंस पियासा। लखि सरवर मन भयो उदासा ॥
कहाँ गये बे दिवस सोहाये। रूप रंग दिन दिन अधिकाये ॥
अब दिन दिन वह रोब घटाहीं। बल बुध जाह सो जात हेराई ॥
रहे न सुंदर मुरत न मानी। ठौर ठौर रह गये निसानी ॥
गये रैन भूला सुख चाहू। भयो भोर उठ गयो बटाऊ ॥
मोती लर जस चमक बतीसी। सो सँग चाड़ भयो परदेसी ॥

रूप भाव नहिं रह गये, डार कंठ ले हाथ।
भूल बात सब चल बसे, गये झाड़ कै हाथ ॥

हँस हँस झूल झुम्म खसि परैं। देख सकामिन रोदन करैं ॥
फूले फुल भये पत झारा। यहै हाल अब होय हमारा ॥
तब लहि मोर बात नहिं मानै। जब पत झार होय तब जानै ॥
औ दयाल तुई सबहू कुछ दीन्हा। सब दाता सोई मोहिं कीन्हा ॥
दीन्ह जनम मोर नबी के बारा। नबी के सुन नहिं मोर अधारा ॥
वहै रूप सबहू जग उपराही। वहै... ... जग माहीं ॥
भाइन मोहिं कूप महँ डारा। नबी कृपा कर मोहिं निसारा ॥
बहू देस सब गाहक मोरा। बंद डार तुम कीन्ह बहोरा ॥
भये राज बाढ़ा सभ भोगू। मात पिता कीन्हे संयोगू ॥
भाई लोग सभ भये अधीना। पिता मिलाय सभै दुख दीन्हा ॥
दीन्हा नार जगत उमराहीं। दीन्हा सुख संतति जग माहीं ॥

सभ कुछ दीन्ह दयाल तोहिं, कछु हींछा अब नाँह।
करौ कूच अब जगत सें, करो सो महि पर छाँह ॥

यहि जग मा जस कीन्हे दाया। वह जग करो अभय निधि माया ॥
मुनि रिखि सिद्ध रहें जेहि ठाऊँ। तहँ मोर अलख कहावहु नाऊँ ॥
अब मोहिं अवर न इंछा मोहे। यही जगत मन व्याकुल होये ॥
अब तहँ चलूँ जहाँ कै आसा। रहौं सदा जेहि मँदिल उदासा ॥
अब यह जग मोहिं तनिक न भावै। चलौं अंत जहँ सब कोउ जावै ॥

अब दिन दिन अवगुन अधिकाई । गयो रूप जेहि जगत लुभाई ॥
अब जीवन से भला सो मरना । रस धावन ... ... ॥
तेहि तें बेग उठावहु मोहीं । देखहु पिता जो कियो बिछोही ॥
भोर आय नियराया, लेउँ न रैन बसेर ।
ज ... ... , चलना तहाँ सबेर ॥
पुन दस बरस जो यूसुफ जिया । सत्त सोभाव जगत महँ किया ॥
धरम नीति सें कीन्ह सो काजू । दीन्ह सुधार दुखी कर काजू ॥
दरव दान दुखिया कौ कीन्हा । नीत छाँह परजा पर कीन्हा ॥
धरम नीत औं न्याव करेहीं । बेद भेद सब्ह कौ सुख देहीं ॥
पुत्र सयान हिये सुख माहीं । मात पिता के सर परछाहीं ॥
बेद भेद सब सुख निरमावा । बंधु बंस कहँ बेद पठावा ॥
यूसुफ नबी कौ अमर न बारा । जेहि घर माँ मूसै अवतारा ॥
ता कों अलख नबी अस पावा । आद गरंथ तुरंत भेजावा ॥
दीन्हा अलख बंस अधिकारा । बारह कुटी बैठ संसारा ॥
बारह पुत्र के बंस वै, इसराईल कहाहिं ।
मिसिर नगर, लों बसा अधिकाहिं ॥
पातसाह सब के सुत आवा । सो फिरोज जग माँह कहावा ॥
इबन अमी सुत कै सुत मूसा । डार दीन्ह जग जान मँजूसा ॥
सो पुन कथा अहै बिस्तारा । कहौं कथा यूसुफ कर सारा ॥
दसमें बरस आय जमराजू । यूसुफ नबी प्रान कै काजू ॥
कहा अलख जो आशा कीन्हा । चहौं प्रान तोर मैं लीन्हा ॥
यूसुफ कहा जो आशा होई । तो सम लेउँ सीस पर सोई ॥
देख लेउ मैं दरस जुलेखा । तब हम करहु जो अवगुन लेखा ॥
तब जमराज कहा यह बाता । आशा नाह लखो मुख राता ॥
अब तुम तजो प्रेम वहि केरा । करहु प्रेम जो करहि निंबेरा ॥
बहुत भाँति बिनती कै हारा । पाव न जुलेखा रूप निहारा ॥
यूसुफ चाहा बहुत मन, लखै जुलेखा रूप ।
पै जमराज न माना, अज्ञा अलख अनूप ॥

जब लहि आय जुलेखा पासा। तब लहि फूल गयो तजि बासा ॥
आय नार जो पीव के तीरा। दखै परा सो सून शरीरा ॥
पुन निहार यूसुफ कहँ देखा। रह्यो न रूप रंग न रेखा ॥
मूँदे नयन खुलैं अब नाहीं। बैन हरे मुख बोलत नाहीं ॥
हाथ पाँव मुख सरवन नासा। सब तें हरत गए जस बासा ॥
सून सरीर परा बिन जीऊ। ठहकं मार देखहि मुख पीऊ ॥
घँसक अहे हिय माँह समाना। गयो छाँड़ देहँ सें प्राना ॥
मुरझ रहै नार बस फिरै। ... ... ॥
नार देख पिउ कर तन सूना। बिना प्रान सभ पिंड बिहूना ॥

कौन हंस सरवर हत्यो, केहि दिस गयो हेराय।
जेहि पुन सून सरीर भै, काहु न कहा सोहाय ॥

परी जुलेखा होय बिन जीऊ। बहुर न देखा आपन पीऊ ॥
तब नहलाय साज सभ कीन्हा। लै गये सौंप घर कहँ दीन्हा ॥
छार मिलाय सो छार उड़ावा। थाती सौंप लोक फिर आवा ॥
जो जाकर तेहि सौंपा सोई। साथी संग रहा नहिं कोई ॥
तीन दिवस दुख रह्यो अपारा। रहीं जुलेखा अतिहि बेकरारा ॥
पिव गवनब कछु जानत नाहीं। रहै सोनार सूख़ पट माहीं ॥
तिसरे दिवस भोर होय गयो। तब पुन चेत जुलेखा भयो ॥
देखा खोल नैन चहुँ ओरा। कहा कि आज भयो कस भोरा ॥
पिउ जागत सब मोहिं जगावै। आज सखी कहुँ दिस न आवै ॥
अब मैं आज भोर कैं जागी। अयो पीऊ कस अकसर भागी ॥
पिऊ कर मुख नहिं देखहु आजू। मोहिं तज अजहूँ करत न काजू ॥

जब लगि रहौं सेज पर, कंत न छाँड़हि मोंह।
अब राज त्याज कहाँ गयो, लाल सो मोहिं बिछोह ॥

कहा सखी उन सरग सिधारे। हम कौं बिरह आग महँ जारे ॥
सुन यह बात सो खाई पछारा। फिर फिर सीस भुम्म पर मारा ॥
जहाँ सो पीउ होय निहि चिंता। तहँ लै चलो जहाँ मोर मिंता ॥

चलै सखी सँग व्याकुल नारी। जहाँ कंथ सोवै सो नारी ॥
तेहि के ठहर जाय सिर नावा। परथम केस तोर छितरावा ॥
छितराइस मोतिन कै हारा। जूड़ा टूक टूक कर डारा ॥
बार खसोट तुरंतहि डारा। अभरन तोर बहु सह सिंगारा ॥
चूरी फोरा सीसन तब फोरा। झार मिलाय दीन्ह वह चूरा ॥
परे ढेर पर झार उड़ावहिं। बिपतायिपत मुख बैन सुनावहिं ॥

नैन काढ़ दोउ लिहिस, दीन्हेसि ढेर पर डार।
जेहि नैनन पिउ तोहिं लखौं, देखौं काह निहार ॥

कहा कंत तुम कहँवा गयऊ। नैन बैन मुख सून सब भयऊ ॥
गात गुलाब देख मुरझाई। सो तन झार लीन्ह अब खाई ॥
जेहि मुख बोलत अमिरित बानी। अमृत बोल वे कहाँ हेरानी ॥
नित मो प्रीतम करत जो दाया। कस अब लाल भयो निर्माया ॥
मैं पापी तुम्ह सँग न लागी। अहौं करम की सदा अभागी ॥
मोहिं छाड़ कत कंत सिधारे। नैन ओट न करत बयारे ॥
जब जमराज प्रान तोर लीन्हा। निठुर लाल मोहि खबर न दीन्हा ॥
मैं जम तें अस करत निहोरा। लिह्यो लाल सँग प्रान सो मोरा ॥
एकहु छिन न मोहिं बिसारेहु। चलत बार मोहिं कसन पुकारहु ॥

नैन ओट कहुँ होत रहु, मोहिं ते आज्ञा लेहु।
एसे कंत बितेस कहँ, मोर न खोज करेहु ॥

चालिस बरस जो जोग कमावा। तब प्रीतम हम तुम कौ पावा ॥
दरब अरथ सब देहु लुटाई। जोबन रूप अनूप गँवाई ॥
कीन्ह दया तब अलख गोसाईं। दीन्हा रूप सोय सुख माहीं ॥
तब महिमा मैं तोर न जानी। निसि-दिन रह्यों हिये अभिमानी ॥
सो अब कंत कहाँ तोहिं पाओं। चरन लाय सिर तोहिं मनाओं ॥
तुम्ह नित करो मोर मनुहारी। मैं न करौं कुछ कान तुम्हारी ॥
का अब करहुँ मनाऊँ कैसे। बिनती करहुँ कीन्ह तुम्ह जैसे ॥
तुम्ह साईं मैं चेरी मोरी। का अब करहुँ अहौं मति थोरी ॥

नित सिर पर राख्यो तोर चरना । का अब करहुँ दई कर करना ॥

सात बरस बँद राख्यो, लायो दोख न मोहिं ।
औगुन मोर छिपायो, कह्यो न तुम कछु मोहिं ॥

सात बरस राख्यो बँद माहीं । मन महँ रोस कियो कुछ नाहीं ॥
चलत बार तोर रूप न देख्यों । बचन न सुन्यों न बयन बिसेख्यों ॥
सो लालन तजि रहे अभागी । गई लाल मैं सोय न जागी ॥
जब तोहिं का बाहर बहिराए । बैरिन नींद कहाँ ते आए ॥
देख्यों जाग मँदिर तोर सूना । नगर कोट घर भयो बिहूना ॥
आयो फूल छाँड़ फुलवारी । काँटा रह्यो बाग महँ झारी ॥
गवो कंत सो बेग सुभागा । पाछे रह्यो कलंक सो लागा ॥
दिह्यो उत्तर मोहि कंत सोहाई । फाटै भुम्भ अब जाऊँ समाई ॥
यह कलंक अब दिह्यो मिटाई । उठ कै लाल लिह्यो सँग लाई ॥

ऐसो रतन मिला जग, छार समान्यो आय ।
धृक जीवन जो लाल बिन, जग माँ जियत रहाय ॥

यह घर बार सो देस तुम्हारा । भयो सून सब जग अँधियारा ॥
कवन बताइहि भेद करम था । भूलै कवन देखाइहि पंथा ॥
को तुम बिन यह भार उठाई । नेम धरम दिन-दिन अधिकाई ॥
अब तुम अस जग उपजा नाहीं । कौन सो करै दुखी परछाहीं ॥
तुम्ह समान जग फेरि न आई । को अस रूप ज्ञान बुध पाई ॥
भरम नींद रह्यो पिउ सोई । नार सो उत्त चेत न कोई ॥
तुम निहचिंत भयो पिव जाई । सोच हमार तज्यो सुखदाई ॥
सभै लोग हैं यह संसारा । तुम्ह बिन कोऊ न अहै हमारा ॥
केहि-क देख मन हुलसैं पीऊ । तृखा बुझाय पियासै जीऊ ॥

वह बसंत वह पावस, वहै फूल फल सोय ।
सब अपने रितु देखब, तुम्हें न देखै कोय ॥

वहै मंदिर औ सरवर तीरा । करहिं धमार सदा वह तीरा ॥
वहै फूल फूले चहुँ ओरा । वह चातक रँग खंजन मोरा ॥

वहै पवन जो फिर फिर आवै। वहै दिवस वह रैन दिखावै ॥
एक न तुम जेहि बिन संसारा। होयगा तीन भवन अँधियारा ॥
वह तरुवर वह पात सुहावन। भाव न एक बिना मनभावन ॥
एक दिन हत्यो सो भाग सोहावा। जेहिं दिन तोहि नायक लै आवा ॥
भये धूम सम मिसिर के देसा। उठ धावा सभ रंग नरेसा ॥
बैठ्यो नील करै असनाना। नर-नरेस सबूह देख लोभाना ॥
यक दिन आज सो देख्यों, सो मुख छार छिपान।
का भा रूप अनूप वह, जेहि संसार लुभान ॥
सपने देख बिमोह्यों तोहीं। उपजा बिरह तेज लखि तोहीं ॥
आयो मिसिर कंथ तोहि लागी। कह्यों कि का गुन कीन्ह अभागी ॥
प्रेम हमार साँच बिधि कीन्हा। पाहन रूप सो हम काँ दीन्हा ॥
जब प्रीतम हम सें मुख मोरा। जीवन भयो दरस लखि तोरा ॥
चालिस बरस जोग मैं कीन्हा। सुन कै नाँव सबै कुछ दीन्हा ॥
जब तोर नाउँ सुनावै कोई। पावै लाख देऊँ जो होई ॥
बीस बरस रह्यों दरस आधारा। बीस बरस सुन नाम सँभारा ॥
अब तोर दरस हरा भुव माहीं। नाऊँ तुम्हार सुनब अब नाहीं ॥
देखहुँ दरस सुनहुँ नहिं नाऊँ। केहि आधार रहौं यह ठाऊँ ॥
ना पिउ बोल सुनावहु, न अब दरसन देहु।
करहु दया पति राखहु, यह जीवन आपन लेहु ॥
अब पत रहै जो जाय पराना। धृक जिव तुम बिनपुन छिन माना ॥
जिवन भला जब लहि पिउ होई। बिना पीव धृक जीवन सोई ॥
पिव बिन सून सभै संसारा। सुख संपत सभ पिव बिन जारा ॥
बिन पिव कोई सँघाती नाही। केहि बिधि रहै प्रान घट माँही ॥
जरै जाय सुख संपत साजा। बिना पीउ आवै नहिं काजा ॥
पिव लै सँग जो होय भिखारी। बिन पिउ सुख संपत बलिहारी ॥
पिव के सँग... ... । बिना पीव सुख बिलसै नाहीं ॥
तुम बिन कंत जगत अँधियारा। भयो उजार सभै संसारा ॥
निठुर प्रान जो अब लहि रह्यो। पाहन हिया निठुर दुख सह्यो ॥

खाय पछार लो छार पर, करै आह एक बार।
पंछी प्रान सो उड़ गयो, रहे छार महँ छार॥

यूसुफ निकट राख तेहि दीन्हा। बिरहिन प्रेम समापत कीन्हा॥
धन वह सती प्रेम चितलावा। आद अंत लहि प्रेम लगावा॥
जब लहि जियै प्रेम रस चाखै। पिव सँग गये प्रान पुन राखै॥
जो कुछ अहै जो जीवन माहीं। मरै प्रांत निठुर कुछ नाहीं॥
रिखि मुनि सिद्ध तपा ओ जोगी। प्रेम पुरुष ओ बिरह बियोगी॥
पंडित कबी और सज्ञाना। मीर अमीर राव सुलताना॥
रूपवंत गुनवंत सोहाई। तेजवंत बलवंत बनाई॥
ऐसे लोग रहै न पाये। केहि कारन यह जग माँ आये॥

सब आए यहि जगत महँ, कीन्ह सो गुन बिस्तार।
कोउ रहे पुनि आवा, खाय लीन्ह यह छार॥

उपसंहार

उन लोगन कहै सँवर 'निसारा'। उठा रोय मनमहँ एकबारा॥
जब ते जनम लीन्ह जग माहीं। छुट दुख और सो देख्यों नाहीं॥
जब लहि जिऊँ पिऊँ दुख नीरा। माथहिं दीन्ह सो दुख कै पीरा॥
अवर दुःख मैं सब कुछ सहा। भयो एक दुख बाउर महा॥
पुत्र अनूप दई मोहिं दीन्हा। रूप अनूप बुध आगिर कीन्हा॥
बाइस बरस रहा जग माँहीं। छुट विद्या उन जान्यों नाहीं॥
नाम लतीफ अनूप सोहावा। सब गुन ज्ञान दई अधिकावा॥
बात भुलात नहिं पुत्र सोहावा। सायर सुधर सो ग्रंथ बनावा॥

बाइस बरस के बयस महँ, छाड़ दीन्ह उन देह।
मुरत अनूप गुलाब से, जाय मिले पुन खेह॥

तब मैं भयऊँ सो बाउर भेसा। करे सदा अपकाल अँदेसा॥
सब्ह औषध कीन्हा उपचारा। बिनति किह्यों सो बारम बारा॥

जब तें लतीफ कर मरम बिसेख्यों। तब संपत अबिरथा देख्यों ॥
तब मैं कहा पुत्र से रोई। किरत सोहाय नहीं अब कोई ॥
मोहिं का जान पड़ा जग माहीं। कोइ ठाकुर ओ सूरत नाहीं ॥
तब उन कहा कहै का ताता। हमकाँ दोख होय यह बाता ॥
अहै सो सत्त एक करतारा। वह कर खेल सो अहै अपारा ॥
तुमको दोख होब अब ताता। दइ सुखिया कहँ दोख बिधाता ॥
जो कुछ ... ... मारा। सो पुन अहै को मेटन हारा ॥
जेहि दुख ते अकुलाव तुम, करहु पिता संतोष।
बड़े लोग सब दुख सहै, होय मुगत गत दोख ॥
जेहि लहि नबी भये जग माहीं। छुट दुख और सो देखा नाहीं ॥
काहुँ कहै कविलास निसारे। रोवत आद बीन कै सारे ॥
काहुँ बाँध अगिन महँ डारा। काहु अँध कीन्ह अँधियारा ॥
काहु कहँ आरसी चीरा। काहु कहँ सर तज्यो सरीरा ॥
काहु मीन के मुख महँ डारा। काहू कूप डार निसारा ॥
जेहिं के लाग रच्यो संसारा। तेहि का दुख वार न पारा ॥
ओ श्याम दुख सब्द जगजानी। जब लग वै सो दुख निभानी ॥
जहिं लहिं भये सिद्ध अवतारा। सभ का दुख दीन्हों करतारा ॥
कोउ न यह जग दुख तें बाँचा। सहै आँच सो कुंदन साँचा ॥
रामचंद्र जो दुख सह्यो, सो जान्यो सब कोइ।
मानुष देह धर सभ, दुख तें ब्याकुल होइ ॥
तेहि तें दुखित होइह जिन ताता। करहु न अब रोय अपघाता ॥
सत साधु कहँ वह दुख दई। कनक जराइ खरा कर लई ॥
अब तुम करहु मोर संतोखा। देहु असीस जो पाऊँ मोखा ॥
यह जग मा सुठ जीवन थोरा। अंत काल सुठ होइय मोरा ॥
कोउ दिन दस आगे कोउ पाछे। है नित काल सो काछे-काछे ॥
उन लोगन कै मेट न होना। होने हुए, सो हुए न होना ॥
देखउ यह जग को गत ताता। दई जनम भर मरन बिधाता ॥
जें कोइ जनम लीन्ह जग माहीं। सो जान्यो एक दिन है नाहीं ॥

जनम साथ यह मरन है, मरन साथ गत मोंख।
हिये बोल न माँठहु; करहु पिता संतोख॥

कहि यह बात जियन मुख मोरा। गयो प्रान तजि प्रान सो मोरा॥
सब सँवरहुँ वह लाल अमोला। हिया फाट मुख आव न बोला॥
जस याकूब सो पुत्र बिछोहा। रह्यो प्रान सो निठुर बिछोहा॥
तस यह प्रान निठुर अब रहे। यूसुध बिरह नेह निर्दहे॥
यूसुफ सभ कहँ पुत्र सोहावा। कहँ अस पुत्र सो जग भा आवा॥
निसि दिन करै तपस्या जोगू। जब तप करै चहै सुख भोगू॥
जाय जोग महँ रैन बहाई। तरुन बंस महँ बिरिध सोहाई॥
कई ग्रंथ अनूप बनावा। जिन देखा चख नीर बहावा॥
सँवर रूप गुन ज्ञान सोहावा। रात-दिवस जल चख बरसावा॥
हिया बजर का भयो हमारा। को लै गयो सो लाल हमारा॥

गयो लाल केहि देस कहँ, जेहि कै मिलै न खोज।
हो सोइ निहिचिन्त, सो देइ हमें दुख रोज॥

सबै गये हौं रहा अकेला। पहिले पढहिं मोह पर हेला॥
तेहि पाछें मोहिं छाड़ सिधारा। ... ...॥
यह जग छाड़ सोइ निहचिंता। गये पैठ और सागर मीता॥
जब सँवरौं वह सभै सोहाये। छाती फाट बेहर न जाई॥
कहाँ गये औ कहाँ ते आये। जान न परे भेद निरभाये॥
सँवर सँवर वै लोग सुजाना। रोवें निस दिन होयँ अज्ञाना॥
अपने मीत्र सँवर सुख पायहु। होय बोंध मनका समुझावा॥
वै सभ गये तुम्हीं यह देसा। केहि दिन वर अक करहुँ अँदेसा॥
तुम का अंत वहै नहिं जाना। तेहि का कौन सोच पछिताना॥

जेहि पंथ सिधारें, सभैं बटाऊ लोग।
चलहु सुचित जेहि मारग, और न जोग न भोग॥

रोय रोय यह बिरह बखानी। कोऊ न रहा जग रहै कहानी॥
यह जग तें मन रहै उदासा। सँवरो जहाँ सदा कर बासा॥

देखि जगत कर कूकत हाला। होय सदा मन हाल बेहाला॥
जान न परैं भेद अवगाहाँ। जग जीवन उपज्यों भुव काहाँ॥
देहु दयाल भोरहिं कर मोखूँ। दरद मोर अब अवगुन दोखूँ॥
पैठ प्रेम कै अंवर कोई। दिहेन असीस मोहिं मन होई॥
हम न रहे अनकर रह जाई। सँवर हियों लोग हिये सुख पाई॥
सात दिवस महँ कथा सोहाई। कीन्ह समापत दीन्ह बनाई॥
सभ लोकन कहें लाऊँ सीसा। लावहु दोख न देहु असीसा॥

गुन आखर ... , ...जहाज।
जनय ... ... , ...लाज॥